श्रीगंगा-आदर्श-ग्रंथ-माला का द्वितीय पुष्प

(द्वितीय भाग)

[सचित्र और सटिप्पण]

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥

(शार्ङ्गधरकविः)

काव्य-ग्रंथ-कर्त्ता तथा, कीर्तित-काव्य-पुमान ;
चन्द्रलोक में अमर जग, पाते सुयश महान ।

'शङ्कर'

सम्पादक—

पं० गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

प्रकाशक—

श्रीरामेश्वरप्रसाद द्विवेदी 'रमेश'
श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रंथ-माला
टीकमगढ़ (बुंदेलखण्ड)

प्रथमावृत्ति १०००

फाल्गुन-पूर्णिमा
सं० १९९० वि०

मूल्य २॥)
सजिल्द ३)

विषय-सूची

प्राक्कथन

प्रथम खंड

कवि-नामावली—

द्वितीय खंड

पृष्ठांक

तृतीय खंड

चित्र-सूची—

अनुक्रमणिका

कवि-नामावली—

पृष्ठांक

प्राक्कथन

सु कवि-सरोज का 'द्वितीय भाग' पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है। सहृदय महानुभाव देखेंगे कि 'प्रथम भाग' से भी इस 'द्वितीय भाग' में कितनी ही विशेषताएँ कर दी गई हैं।

द्वितीय भाग की कुछ विशेषताएँ

कविताएँ प्रचुर मात्रा में तथा शब्दार्थ और टिप्पणियों-सहित दी गई हैं। जितने भी कवियों के चित्र प्राप्त हो सके हैं, उनके चित्र भी दिए गए हैं। छपाई और सफ़ाई की ओर भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। इस भाग में ९८ कवियों के संबंध में चर्चा की गई है और जहाँ तक बन पड़ा है, प्रत्येक कवि की सभी कृतियों का वर्णन करके उनकी प्रतिभा को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत कवियों के अतिरिक्त इसी समय के और भी कितने ही कवि ऐसे होंगे, जिनका मुझे पता नहीं चल सका है, अतः यदि कोई सुकवि महोदय इस संग्रह में सम्मिलित होने से रह गए हों, तो वे दया कर मुझे सूचित करें। यह न समझें कि जान-बूझकर उनकी उपेक्षा की गई है। उनको तृतीय या चतुर्थ भाग में सहर्ष स्थान दिया जायगा।

कवियों का नामोल्लेख और उपाधियाँ

कवियों का नामोल्लेख करते समय 'श्रीपं०' नाम के पूर्व और आस्पद नाम के अंत में लिख दिया गया है। उपाधियाँ नाम के साथ शीर्षक में नहीं लिखी गई हैं। संभव भी नहीं था। यदि

ऐसा किया जाता, तो पाँच-पाँच और सात-सात पंक्तियों के शीर्षक हो जाते। हाँ, चरित्र प्रारंभ करते समय उनका पूरा-पूरा उल्लेख कर दिया गया है।

कवियों का क्रम

कवियों का क्रम प्रथम भाग ही की तरह जन्म-संवत् ही के अनुसार रक्खा गया है। यदि ऐसा न किया जाता, तो संभव है, एक दूसरे के आगे-पीछे स्थान पाने में कवियों को आपत्ति होती; वैसे तो सभी कवि माननीय और शिरोमणि हैं और अपने-अपने स्थान से अपनी-अपनी अलौकिक प्रतिभा प्रस्फुटित कर रहे हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी

इस भाग में गोस्वामी तुलसीदासजी शुक्ल का जीवन-चरित्र संगृहीत किया जा रहा है और यह एक ऐसा विषय है कि जिस पर हिंदी-संसार में कुछ हलचल उत्पन्न हो सकती है, किंतु उसके लिये मैंने अपने पूर्व लेखों और सूचनाओं में नम्रता-पूर्वक यह निवेदन कर दिया था कि गोस्वामीजी के संबंध में अमुक-अमुक बातें मालूम हुई हैं। 'माधुरी' आदि पत्रों द्वारा भी जन-साधारण को मैंने अपने खोज-संबंधी विचार लिख दिए थे और यह इच्छा प्रकट की थी कि सोरों में जाकर या पत्र-व्यवहार करके जिन्हें शंका हो, अपनी शंका का निवारण कर लें। तीन वर्ष मैं यह प्रतीक्षा करता रहा कि संभव है, मेरे उस लेख का कहीं से कोई प्रतिवाद करे, किंतु ऐसा नहीं हुआ। तब मैंने उस लेख को ज्यों-का-त्यों इस भाग में उद्धृत कर दिया है और जब तक मेरे लेख के विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता, तब तक मुझे अपना ही कथन ठीक जान पड़ता है। आशा है, हिंदी-भाषा-भाषी महानुभाव उदारता-पूर्वक इस पर विचार करके समुचित प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

'सुकवि-सरोज' के प्रथम भाग की विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी और अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन, अलीगढ़ ने शीघ्र ही उसे 'हिंदी-साहित्य-प्रथमा परीक्षा' के तृतीय पत्र, हिंदी-साहित्य-विशारद के द्वितीय पत्र और हिंदी-साहित्य-भूषण के द्वितीय पत्र की परीक्षाओं में सम्मिलित कर लिया था ; प्रथम भाग की सफलता को देखते हुए यही जान पड़ता था कि उसी वर्ष ही 'द्वितीय भाग' प्रकाशित करना पड़ेगा। सामग्री भी सब तैयार थी, किंतु 'मन चेती होती नहीं, प्रभु चेती तत्काल'। अस्तु, इसके पूर्व यह न छप सका।

विद्वत्सम्मेलन द्वारा सुकवि-सरोज का सम्मान

'प्रथम भाग' के प्रचार और प्रसार में कतिपय मित्रों से भरपूर सहयोग मिला था। उनमें से कुछ महानुभावों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जैसे श्रीपं० रामगोपालजी मिश्र बी० एस् सी०, एम्० आर० ए० एस्० डिपुटी-कलेक्टर, श्रीपं० भद्रदत्तजी त्रिवेदी, श्रीपं० जमुनाप्रसादजी गोस्वामी साहित्यरत्नाकर और पं० गणेशप्रसादजी चौबे आदि।

प्रथम भाग के प्रचार में मित्रों का सहयोग

जहाँ अनेक मित्रों ने अपने सहयोग से बाधित किया, वहाँ कुछ महानुभावों ने अपनी कृपा का दूसरे रूप में परिचय देने में कसर नहीं रक्खी। उन्होंने 'सरोज' की तीस-तीस, चालीस-चालीस प्रतियाँ मँगाकर फिर बार-बार रुपए भेजने का वचन देकर भी न तो रुपए ही भेजे और न पुस्तकें ही लौटाईं। उनका नामोल्लेख करना मैं उचित नहीं समझता, किंतु सहृदय पाठकों को मेरी कठिनाइयों का इससे कुछ-न-कुछ आभास अवश्य मिल जायगा। एक तो वैसे ही, इस विचार से कि पुस्तक सर्वसाधारण तक पहुँच सके, उसका मूल्य केवल

प्रथम भाग में आर्थिक हानि और कुछ कठिनाइयाँ

लागत-मात्र ही रक्खा गया था, फिर प्रायः दो सौ प्रतियाँ मित्रों के पास भेंट में और प्रायः २०० प्रतियाँ पत्र-पत्रिकाओं में समालोचनार्थ तथा नमूने आदि में चली गईं। अवशेष प्रतियों में से कुछ की यह दशा हुई। यही कारण है कि अधिक आर्थिक हानि हो जाने के कारण इसके अन्य भाग प्रकाशित करने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी, किंतु मित्रों के निरंतर अनुरोधों के कारण विवश हो इसके प्रकाशन की व्यवस्था करनी ही पड़ी और यदि सहृदय महानुभावों का थोड़ा-सा भी सहयोग प्राप्त हो सका, तो इसके अन्य दो भाग और भी अधिक सुंदर शीघ्र ही पाठकों को भेंट करने का प्रयत्न करूँगा।

प्रेस, प्रकाशक और लेखक के सहयोग से लाभ

यहाँ पर गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ के अध्यक्ष मित्रवर श्रीपं० दुलारेलालजी भार्गव को बिना धन्यवाद दिए नहीं रहा जाता। उन्होंने पुस्तक को सर्वांग-सुंदर बनाने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी है। कुछ चित्र भी अपने ही ब्लाकों से आपने छाप दिए हैं और जितनी भी शीघ्रता संभव थी, वह इसको छाप देने में आपने की है; यदि अन्य प्रेसवाले भी आपका अनुकरण करें, तो लेखकों की बहुत-सी झंझटें दूर हो जावें। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन तथा अन्य संस्थाओं में, लेखकों और प्रकाशकों के संबंध को उत्तरोत्तर सुदृढ़, विश्वस्त और मैत्री भाव से परिपूर्ण बनाने के लिये प्रस्ताव किए जा रहे हैं, किंतु केवल प्रस्तावों ही का अब युग नहीं है, क्रियात्मक ठोस कार्य करनेवाले व्यक्ति ही अब श्रद्धा और सम्मान के पात्र बन सकते हैं। मुझे यह लिखते हर्ष होता है कि श्रीभार्गवजी ने उसका योग्यता-पूर्वक श्रीगणेश किया है। अन्य प्रेसवालों और प्रकाशकों को भी श्रीभार्गवजी का अनुकरण करना चाहिए। इससे अर्थ-लाभ, यश-लाभ और हिंदी-हित-साधन आदि कार्य बड़ी ही सुगमता से हो सकते हैं।

धन्यवाद तथा कृतज्ञता-ज्ञापन

'सुकवि-सरोज' के द्वितीय भाग को प्रस्तुत करने में अनेक मासिक पत्र-पत्रिकाओं, हस्त-लिखित और मुद्रित ग्रंथों से सहायता मिली है, अतः जिनके लेखों और ग्रंथों से किंचिन्मात्र भी सहायता मुझे मिली है, उनका मैं हृदय से उपकार मानता हूँ और उन्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ। 'मिश्रबंधु-विनोद', 'व्रज-माधुरी-सार' और 'शिवसिंह-सरोज'-नामक ग्रंथ-रत्नों के माननीय लेखकों का मैं अति ही आभारी हूँ। इन ग्रंथों से बहुत कुछ सहायता मिली है।

कतिपय मित्रों ने कुछ कवियों के प्रामाणिक जीवन-चरित्र और कविताएँ आदि भेजकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया है; तथा श्रीपं० सच्चिदानंदजी उपाध्याय 'आशुतोष', श्रीपं० गंगासहायजी पाराशरी 'कमल', श्रीपं० ठाकुरदासजी जैन बी० ए० और श्रीमोहनलालजी शास्त्री ने भी समय-समय पर अपने सहयोग से उपकृत किया है, अतः उन्हें भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

आशा है, 'संत हंस गुण पय गहहिं, परिहरि वारि विकार' के अनुसार विज्ञ पाठकों का कुछ-न-कुछ मनोरंजन इससे अवश्य ही होगा और इसी में मुझे संतोष भी है।

विनयावनत

टीकमगढ़ (बुंदेलखंड)
व्यास-पूर्णिमा,
शुक्रवार सं० १९९०
ता० ७। ७। १९३३

प्रथम खंड

सं० १५८६ वि० से सं० १६४० वि० तक

के

गोलोकवासी कविगण

गोस्वामी तुलसीदासजी

सुकवि-सरोज

[द्वितीय भाग]

श्रीपं० गोस्वामी तुलसीदासजी शुक्ल
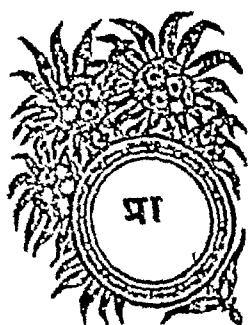
तःस्मरणीय, शक्ति-वेधित, मृतप्राय हिंदू-धर्म के सुषेण वैद्यवत् चिकित्सक महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी शुक्ल आस्पदीय सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपके पूज्य पिताजी का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। गोस्वामी-जी का जन्म अनुमानतः सं० १५८९ वि० मे सोरों (शूकर-क्षेत्र) में हुआ था। आपके जन्म-स्थान के संबंध में तरह-तरह की बातें हिंदी-संसार में प्रचलित हैं। कोई आपका जन्म-स्थान राजापुर बतलाता है, तो कोई हाजी-पुर और सोरों। इसी प्रकार कोई आपको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखता है, तो कोई सरवरिया और सनाढ्य। मुझे बहुत अनुसंधान करने पर आपके संबंध की जो बातें मालूम हो सकी थीं, वे मैंने तुलसी-संवत् ३०५ की आषाढ़-मास

की माधुरी द्वारा हिंदी-संसार के समक्ष रक्खी थीं। जब तक उनके विरुद्ध मुझे कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता, तब तक मुझे अपना ही कथन ठीक मालूम होता है। पाठकों की जानकारी के लिये अपने उस लेख को मैं ज्यों-का-त्यों यहाँ उद्धृत किए देता हूँ—

"मनोरमा के नवंबर-मास के अंक में बाबू श्रीशिवनंदन-सहायजी का एक लेख गोस्वामी तुलसीदासजी के संबंध में निकला है। आपका यह लिखना सचमुच ठीक है कि गोस्वामी-जी के किसी विशेष जीवन-चरित्र पर सर्वथा सत्यता की छाप देने में बहुत कुछ सावधानी और सोच-विचार की ज़रूरत है।"

"सच तो यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-चरित्र के संबंध में जितनी खींचा-तानी हो रही है, उतनी और किसी भी कवि के संबंध में नहीं हुई है, फिर भी निश्चयात्मक रूप से अब तक कोई बात ठीक नहीं हो सकी है।

"बाबा वेणीमाधवजी के 'मूल-गोसाईं-चरित्र' की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका आदि में यथेष्ट आलोचना हो रही है, और उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर भी समुचित प्रकाश डाला जा रहा है। अतः उस पर कुछ और लिखकर इस लेख का कलेवर बढ़ाना अभीष्ट नहीं। प्रस्तुत लेख में तो उन नवीन ज्ञातव्य बातों पर जो अब तक हिंदी-संसार के सामने नहीं आई हैं, प्रकाश डालना है।

श्रीपं० गोस्वामी तुलसीदासजी शुक्ल

"गत वर्ष सोरों-निवासी श्रीपं० गोविंदवल्लभजी शास्त्री का एक लेख देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसमे शास्त्रीजी ने बड़े ही अच्छे रूप में तुलसीदासजी के संबंध की बहुत-सी ज्ञातव्य और प्रामाणिक बातें लिखी है। आपने उस लेख में लिखा है—'गोस्वामीजी का जन्म सोरों के योग-मार्ग मुहल्ले में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम था। ये दोनो माता-पिता तुलसीदासजी को जन्म देकर अल्प समय ही मे स्वर्गवासी हो गए थे। तब अनाथावस्था में नगर के चौधरी, सनाढ्य-कुल-रत्न, सर्वशास्त्रज्ञ श्रीपं० नरसिंहजी ने इनको पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया और गृहस्थ बनाया था।'

"गोस्वामीजी के एक भाई और थे, जिनका नाम अब भी पुष्टमार्गीय वैष्णवों (गोकुलिया गोसाइयों) के प्रति मदिर और प्रति घर में आदर-पूर्वक लिया जाता है। इनका शुभ नाम है नंददासजी। यह महानुभाव गोस्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे।

"श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी का जन्म सं० १५७२ वि० में हुआ था। आप आद्याचार्य श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पुत्र थे। आपको अपने पिताजी की गद्दी १५ वर्ष की अवस्था में, सं० १५८७ वि० में, मिली थी, और आप सं० १६४२ वि० में स्वर्गवासी हुए थे। श्रीवल्लभाचार्य अपने जीवन में ८४ ही शिष्य कर सके थे; परंतु श्रीविट्ठलनाथजी ने २५२ शिष्य किए।

इन आचार्यों ने अपने शिष्यों को अपना संक्षिप्त परिचय, कुछ स्मरणीय घटनाओं-सहित, लेख-बद्ध करते जाने का आदेश दे रक्खा था। उन्हीं लेखों के ये संग्रह '८४ वैष्णवों की वार्ता' और '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के नाम से उस संप्रदाय में आज तीन सौ वर्ष से भी अधिक से सुरक्षित और विख्यात हैं, और धार्मिक दृष्टि से प्रत्येक मंदिर में पूजे जाते हैं।

"इस सम्प्रदाय के श्रीसूरदासजी आदि ८ महाकवि भी शिष्य थे। इनको अष्टछाप कहा जाता था। इन्हीं में हमारे चरितनायक के भाई नंददासजी भी थे।

"यद्यपि नंददासजी और तुलसीदासजी भाई-भाई ही थे, फिर भी हिंदी-संसार में इनके भाई-भाई होने के संबंध में अनेक संदेहात्मक और भ्रमोत्पादक बातें फैली हुई हैं। कोई गोस्वामीजी की जन्म-भूमि तारी, हस्तिनापुर कहते हैं, तो कोई हाजीपुर (चित्रकूट), राजापुर (बाँदा) और सोरों। कोई आपको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहते हैं, तो कोई सरवरिया और सनाढ्य।

"(अ) माननीय 'मिश्रबंधुओं' ने अपनी पुस्तक 'मिश्र-बंधु-विनोद' में नंददासजी को किसी तुलसीदासजी का भाई और ब्राह्मण होना लिखा है।

"(ब) श्रीपं० मयाशंकरजी याज्ञिक उन्हें भाई-भाई तो मानते हैं; किंतु लिखते हैं 'कनौजिया' के स्थान पर 'सनौढ़िया'। शब्द भूल से लिख गया मालूम होता है।

"(स) रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदासजी का कहना है कि '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर यह बात चल पड़ी है कि रासपंचाध्यायीवाले नंददासजी तुलसीदासजी के भाई थे।

"अब निष्पक्ष होकर देखना यह है कि वास्तव में ठीक बात क्या है। पहली शंका (अ) का तो उत्तर यह है कि संभव है, प्रेस के भूतों की कृपा से किसी एक संस्करण में 'सनाढ्य' शब्द छपने से रह गया हो, परंतु तीन सौ वर्ष की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों में वह स्पष्ट रूप से पाया जाता है; जिन्हें संशय हो, वे श्रीनाथद्वारा और श्रीगट्टूलालजी के पुस्तकालय, बंबई मे जाकर तथा उन्हें देखकर अपनी शंका का समाधान कर सकते हैं।

"दूसरी शंका (ब) तो बिल्कुल ही निराधार और हास्यास्पद है; क्योंकि प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों में स्पष्ट सनौढ़िया (सनाढ्य) शब्द लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त सोरों और व्रज में अधिकांश सनाढ्य ब्राह्मणों की ही आबादी है।

"तीसरी शंका(स)वाली वार्ता के आधार पर जो बात चल पड़ी है, वह मिथ्या थोड़े ही है, ठीक ही है। वार्ता को पढ़ने और निष्पक्ष होकर विचार करने से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि नददासजी और तुलसीदासजी भाई-भाई और सनाढ्य ब्राह्मण थे।

"श्रीबिट्ठलनाथजी ने सं० १५६५ वि० से १६४२ वि० तक

अपने संप्रदाय का प्रचार किया था, और इसी समय के भीतर नंददासजी ने भी इनसे दीक्षा ली थी। गोस्वामीजी का भी कविता-काल इसी समय के अंतर्गत माना जाता है। यथा—

संवत सोरहसै इकतीसा ;
करौं कथा हरि-पद धरि सीसा।

(रा० बा० का०)

"अब पाठकों के अवलोकनार्थ वार्ता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं। विचार किया जाय कि इन पंक्तियों से क्या प्रतिध्वनित होता है। क्या यह समस्त वर्णन गोस्वामीजी के अतिरिक्त किसी और तुलसीदासजी का भी हो सकता है?

"(क) 'सो वे नंददास पूर्व मे रहते, सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते, और छोटे भाई नंददास हते, सो वे नंददास पढ़े बहुत हते।'.........

"(ख) 'सो तब कितनेक दिन में वह सग कासी में आन पहुँच्यौ, तब नंददास के बड़े भाई तुलसीदास हते, सो तिनने सुनी, जो यह संग श्रीमथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग में आय के पूछ्यौ, जो वहाँ श्रीमथुराजी मे श्रीगोकुल में नंददास नाम करिके एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो है, सो पहिले वहाँ सुन्यौ हतो, सो काहू ने देख्यौ होय, तो कहो। तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों कही, जो एक सनौड़िया (सनाढ्य) ब्राह्मण है, सो ताको नाम नंददास है, सो वह

पढ़यौ बहुत है, सो वह नंददास तो श्रीगोसाईंजी को सेवक भयो है।'

"(ग) 'और एक समय नंददास को बड़ो भाई तुलसीदास ब्रज में आयौ, ता पाछे श्रीमथुराजो में तुलसीदास आए। सो तब आयके पूछी, जो यहाँ श्रीगुसाईंजी को सेवक नंददास कहाँ रहत है ?......तब तुलसीदास ने नंददास के पास आयके कह्यौ, जो नंददास तू ऐसो कठोर क्यों भयो है ?......तेरो मन होय, तो अजुध्या में रहियो, तेरो मन होय, तो प्रयाग में रहियो, चित्रकूट में रहियो।'

"उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वे गोस्वामी तुलसीदासजी ही से संबंध रखते हैं, किसी दूसरे तुलसीदास से नहीं। तुलसीदासजी का ब्रज में आना, नंददासजी की खोज करना, उनसे प्रीति-पूर्वक अपने साथ चलने का अनुरोध करना और अयोध्या, प्रयाग तथा चित्रकूट का नामोल्लेख करके उन स्थानों में रहने का आग्रह करना आदि अंश उनके भाई-भाई के संबंध को भली भाँति पुष्ट करते हैं।

इस किंवदंती से भी—

> "कहा कहौं छवि आज की, भले बने हौ नाथ,
> तुलसी-मस्तक जब नवै, धनुष-बाण लो हाथ।"

उपर्युक्त कथन ही सिद्ध होता है।

"हाँ, राजापुर को तुलसीदासजी का जन्म-स्थान सिद्ध

करनेवाले महानुभावों के सामने यह कठिनाई अवश्य आती है कि राजापुर (बाँदा) की ओर अधिकांश में सरवरिया ब्राह्मण ही रहते हैं। अस्तु, उनके अतिरिक्त गोस्वामीजी को अन्य ब्राह्मण कैसे मान लें? और यही कारण है कि कल्पनाओं के आधार पर गोस्वामीजी को सरवरिया ब्राह्मण लिख मारा, और 'नंददासजी के भाई तुलसीदास कोई और तुलसीदास होंगे' ऐसा कहकर उनके भाई-भाई होने में संशय उत्पन्न कर भ्रम डाल दिया गया; अन्यथा 'वार्ता' की प्रामाणिकता में संदेह करने का कोई कारण ही नहीं रह जाता है, और सच बात तो यह है कि कल्पनाओं का महत्त्व तभी तक रहता है, जब तक कोई ऐतिहासिक और प्रामाणिक बात नहीं मिलती। प्रमाण मिल जाने पर तो वास्तव में उनका कुछ मूल्य नहीं रह जाता है।

"कुछ महानुभाव यह कहकर भी कि गोस्वामी तुलसीदासजी राम-भक्त और नंददासजी कृष्ण-भक्त थे, उनके भाई-भाई होने में संदेह करते हैं, किंतु यह भी लचर दलील और बेसिर-पैर की बात है। एक भाई का राम-भक्त और दूसरे भाई का कृष्ण-भक्त होना अनहोनी बात नहीं। खोजने से ऐसे एक-दो नहीं, सैकड़ों उदाहरण इतिहास में मिल सकते हैं। और, आजकल भी तो हम एक ही घर में पिता को सनातनधर्मी, एक भाई को आर्य-समाजी और दूसरे को राधास्वामी-मत का प्रत्यक्ष देखते हैं।

किया है। फिर भी गोस्वामीजी की कविता में कहीं-कहीं उनके गुरु, कुल, ग्राम आदि की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। देखिए—

पुनि मैं निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत;
समझी नहिं तसि बालपन, तब हौं रह्यों अचेत।

× × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा;
समुझि परी कछु मति-अनुसारा।

(रा० बा० का०)

× × ×

बंदउँ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नररूपहरि;

× × ×

"कोई-कोई विनयपत्रिका और कवितावली के आधार पर बाल्यावस्था में गोस्वामीजी के माता-पिता के मर जाने अथवा उनके त्यागे जाने की कल्पना करते हैं, और कोई-कोई मूल-नक्षत्र में जन्म होने से माता-पिता द्वारा उनका फेक दिया जाना और वैरागी साधु नरसिंहदासजी को पड़े मिलना तथा उनके द्वारा शूकर-क्षेत्र मे पाला-पोसा जाना बतलाते हैं। यथा—

द्वार-द्वार दीनता कही, काढि रद, परि पाँउ।

(वि० पत्रिका, २७५)

× × ×

जनक-जननि तज्यो जनमि करम बिनु।

(वि० पत्रिका, २२७)

× × ×

जायो कुल मंगन बँधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
(कवितावली, २१९)

"हम कहते हैं, इतनी क्लिष्ट कल्पना किसलिये? जब नंद-दासजी उनके भाई सिद्ध हो चुके हैं, तब वहीं से परंपरा क्यों न मिला लीजिए। देखिए, निम्न-लिखित बातों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि राजापुर गोस्वामीजी की जन्म-भूमि थी या सोरों—

"(अ) राजापुर यदि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान होता और सोरों केवल उनका गुरु-स्थान, तो वैराग्य लेने के पश्चात् गोस्वामीजी सोरों से असहयोग और राजापुर से सहयोग कदापि न करते। दूसरे, यह कैसे संभव है कि राजापुर घर होते हुए भी वह कुटी बनाकर अपनी प्रारंभिक वैराग्या-वस्था मे भी वहाँ आराम से रह सकते और उनके संबंधी—विशेषतः उनकी स्त्री—कुछ भी विघ्न-बाधा न पहुँचाते; क्योंकि गोस्वामीजी विवाहित थे, यह तो सिद्ध ही है। यदि वह घर या घर के नजदीक रहे होते, तो यह कभी संभव न था कि उन पर गृहस्थाश्रम में लौट आने के लिये भरपूर आग्रह न किया जाता, या दबाव न डाला जाता; किंतु इसका विवरण कहीं भी नहीं मिलता।

"(ब) अयोध्या, चित्रकूट, काशी आदि अनेक स्थानों का गोस्वामीजी ने अपने जीवन में अनेक बार और भली भाँति भ्रमण किया था; किंतु अपने जन्म-स्थान (सोरों) से जब

से गए, फिर नहीं आए, और यह है भी स्वाभाविक। इन बातों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि गोस्वामीजी की जन्म-भूमि सोरों ही थी, राजापुर नहीं।

"कहते हैं, एक बार नंददासजी के पुत्र कृष्णदासजी अपने चाचा गोस्वामी तुलसीदासजी को लिवाने राजपुर गए थे, और उनसे अनेक प्रकार अनुनय-विनय भी की थी, किंतु गोस्वामीजी नहीं आए। हाँ, एक पत्र पर एक पद लिखकर दे दिया था, जिसे लेकर कृष्णदासजी लौट आए थे। वह पद यह है—

नाम राम रावरोई हित मेरे ;
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहुँ टेरे।
जननी-जनक तज्यो जनमि कर्म बिनु विधिहूँ सृज्यों हों अब टेरे ;
मोह से कोउ-कोउ कहत रामहिं को, सो प्रसंग केहि केरे।
फिर्यो ललात बिनु नाम उदर लगि दुसह दुखित मोहिं हेरे ;
नाम प्रसाद लसत रसाल-फल, अब हौं मधुर बहेरे।
साधत साधु लोक परलोकहि, सुनि-गुन जतन घनेरे ;
'तुलसी' को अवलंब नामहि को, एक गाँठ बहु फेरे।

"नंददासजी के वंशजों का सं० १८६० वि० तक रहने का शोध मिलता है। इसके पश्चात् वंश-विच्छेद हो जाने के कारण उनकी संपत्ति जिस वश को मिली थी, वह उपाध्याय (हरूके) कहा जाता है।

"सोरों में अब भी जिस किसी को कर्ण-रोग हो जाता है, तो इन्हीं महान् पुरुषों के प्राचीन गृहों के ध्वंसावशेषों (खँड-हरों) की मिट्टी लाकर लगा देते हैं। लोगों का विश्वास है

कि तुलसीदासजी का जन्म-स्थल होने के कारण पुण्य भूमि के प्रताप से रोग दूर हो जाता है।

"गोस्वामीजी के गुरु श्रीनरसिंहजी का स्थान अब भी सोरों में विद्यमान है, और वह नरसिंहजी के मंदिर के नाम से विख्यात है। लोगों ने भ्रम-वश उन्हें वैरागी (रामनंदी) लिख मारा है, किंतु यह ठीक नहीं। वह गृहस्थ सनाढ्य ब्राह्मण थे, और उनके वंशज अभी विद्यमान हैं, तथा चौधरी की उपाधि से विभूषित हैं।

"श्रीनरसिंहजी धन-संपन्न होने के साथ-ही-साथ सहृदय और विद्वान् भी थे, अतएव मातृ-पितृ-हीन अपने सजातीय बालक (गो० तुलसीदासजी) की रक्षा, दीक्षा, पालन-पोषण आदि का उन्होंने समुचित प्रबंध किया था। इसके अतिरिक्त यह भी एक बात ध्यान देने की है कि यदि गोस्वामीजी किसी रामानंदी साधु के शिष्य होते, तो रामायण के प्रारंभ ही में—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ;
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ।
भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ;
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।

"इस प्रकार मंगलाचरण न करते। और श्रीरामानुज स्वामी या रामानंद स्वामी का कहीं-न-कहीं नामोल्लेख अवश्य ही कर जाते; किंतु ऐसा न करके वह अपना स्मार्त वैष्णव-मत प्रतिपादन कर गए हैं, और स्मार्तों की ही रामनवमी वह मनाते भी थे।

"गोस्वामीजी का विवाह सोरों के ही एक उपनगर बदरिया-नामक ग्राम में हुआ था। गोस्वामीजी के ग्रंथों की भाषा में भी व्रज-भाषा का बाहुल्य है। इससे भी उपर्युक्त बात ही पुष्ट होती है। और भी अनेकानेक प्रमाण हैं, जिन्हें संशय हो, वे सोरों-निवासी पं० गोविंदवल्लभजी शास्त्री से पत्र-व्यवहार कर या स्वयं सोरों जाकर तथा अनुसंधान कर अपनी शंकाओं का निवारण कर सकते हैं।

"हिंदी-संसार में फैले हुए भ्रम को दूर करने के उद्देश्य से ही यह लेख लिखा गया है। आशा है, प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी और विशेषकर 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' के अन्वेषण-प्रेमी महानुभाव इस पर निष्पक्ष भाव से विचार करके समुचित प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।"

उपर्युक्त लेख से गोस्वामीजी के जन्म-स्थान, उनके गुरु, उनके माता-पिता और अन्य ज्ञातव्य बातों का भले प्रकार पता चल गया होगा। अब गोस्वामीजी की चिरस्मरणीय घटनाओं को लिखकर मैं अग्रसर होता हूँ।

(अ) गोस्वामीजी का वैराग्य

सुनते हैं, गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर बहुत आसक्त थे। एक बार आपकी स्त्री आपकी अनुपस्थिति में अपने पिता के यहाँ चली गई। जब गोस्वामीजी को यह मालूम हुआ, तो वह भी ससुराल चल दिए। ससुराल में स्त्री से भेंट होने पर आपकी स्त्री ने आपसे कहा—

लाज न लागत आपको, दौरे आएहु नाथ,
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ !
अस्थि-चरम-मय देह मम तामें जैसी प्रीति;
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भव-भीति।

यह सुनकर गोस्वामीजी वहाँ से तुरंत बिना भोजन आदि किए ही चल दिए, और काशी में विरक्त होकर रहने लगे।

(आ) गोस्वामीजी की भक्ति और सफलता

यह प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी शौच के लिये नित्य गंगा-पार जाया करते थे, और लौटते समय लोटे में बचा हुआ पानी एक बबूल के पेड़ की जड़ में डाल देते थे। उनकी इस क्रिया से उस पेड़ पर रहनेवाला एक प्रेत प्रसन्न हो गया, और उसने वरदान माँगने के लिये कहा। गोस्वामीजी ने श्रीरामचंद्रजी के दर्शन करा देने के लिये कहा। उसने कहा—"यह तो मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है, किंतु युक्ति मैं अवश्य बतलाए देता हूँ।" उसने एक मंदिर बतलाया, जिसमें नित्य रामायण की कथा होती थी। उसने बतलाया कि उस मंदिर में एक बहुत ही मैला-कुचैला कोढ़ी सबसे पहले कथा सुनने आता और सबसे पीछे जाता है। वे साक्षात् हनुमानजी हैं। उनसे प्रार्थना करो, यदि वे प्रसन्न हो गए, तो संभव है, आपकी मनोकामना पूरी हो जाय। गोस्वामीजी ने ऐसा ही किया; और एक दिन अकेले में उनके चरण

पकड़कर जब तक उन्होंने यह न कह दिया कि "जाओ, चित्रकूट में दर्शन होंगे।" तब तक पैर न छोड़े। तत्पश्चात् उन्हें चित्रकूट में श्रीरामजी के दर्शन हो ही गए।

× × ×

अपने इष्ट के गोस्वामीजी इतने दृढ़ थे कि श्रीकृष्ण भगवान् ने भी इनकी प्रार्थना पर मुरली त्यागकर धनुष-बाण हाथ में ले लिया था। उस समय तुलसीदासजी ने यह दोहा कहा था। ऐसा कहा जाता है—

का बरनउँ छवि आज की, भले बिराजेउ नाथ,
तुलसी-मस्तक तब नवै, (जब) धनुष-बाण लेउ हाथ।

× × ×

सुनते हैं, कोई ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री सती होने जा रही थी। मार्ग में उसने गोस्वामीजी से प्रणाम किया; गोस्वामीजी ने "सौभाग्यवती हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। पीछे जब गोस्वामीजी को उसके पति के मर जाने का हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने गंगा-स्नान करके तीन दिन स्तुति की, जिससे वह ब्राह्मण जी उठा।

× × ×

ब्राह्मण जीवित करने की बात जब बादशाह ने सुनी, तो उसने गोस्वामीजी को बुलाकर कुछ करामात दिखलाने के लिये कहा। गोस्वामीजी के यह कहने पर कि मैं सिवा राम-नाम के और कोई करामात नहीं जानता, बादशाह ने उन्हें दिल्ली

के क़िले में बंद कर दिया और कह दिया कि जब तक करामात न दिखलाओगे, क़ैद से न छूटने पाओगे। गोस्वामीजी को क़ैद देखकर बंदरों के समूह ने क़िले को विध्वंस करना आरंभ कर दिया और ऐसी दुर्गति की कि बादशाह गोस्वामीजी के पैरों पर गिरकर रक्षा करने के लिये प्रार्थना करने लगा। तब गोस्वामीजी ने हनुमानजी की प्रार्थना की और उपद्रव शांत हुआ। गोस्वामीजी ने बादशाह से यह भी कहा कि अब इस क़िले में हनुमानजी का वास हो गया है। तुम दूसरा क़िला बनवाओ, जिसे बादशाह ने स्वीकार कर लिया।

कानन भूधर वारि बयारि दवा विष-ज्वाल महा अरि घेरे ;
संकट कोटि परो तुलसी तहँ मातु-पिता-सुत-बंधु न नेरे।
राखहिं राम कृपा करिकै हनुमान से पायक हैं जिन केरे ;
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे।

इत्यादि आठ पद्य क़ैद होने पर और कुछ पद्य उपद्रव-शांति के लिये बनाए थे, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी ;
इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न विचारी।
लोक-रीति देखी सुनी व्याकुल नर-नारी ;
अति बरषे अनबरषेहु देहिं दैवहिं गारी।

इत्यादि

× × ×

यह प्रसिद्ध है कि 'भक्तमाल'-नामक ग्रंथ के कर्ता नाभादासजी गोस्वामीजी से मिलने काशी गए थे, किंतु गोस्वामीजी

उस समय ध्यान में थे, अतः नाभाजी से कुछ बातचीत न हो सकी। नाभाजी उसी दिन वृंदावन चले आए, जब गोस्वामीजी को यह मालूम हुआ, तो वह बहुत पछताए और नाभाजी से मिलने वृंदावन पहुँचे। दैवयोग से जिस दिन गोस्वामीजी वहाँ पहुँचे, नाभाजी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था। गोस्वामीजी विना बुलाए ही उसमें पहुँच गए, और बैरागियों की पंक्ति के अंत में बैठ गए। परोसने के समय खीर के लिये कोई पात्र न होने के कारण आपने चट एक साधु का जूता उठा लिया और कहा कि इससे अच्छा बर्तन और क्या हो सकता है। इस पर नाभाजी ने उन्हें गले से लगा लिया और कहा कि आज मुझे भक्तमाल का सुमेरु मिल गया।

गोस्वामीजी का परिचय और मान

बड़े-बड़े पंडितों के अतिरिक्त सम्राट् अकबर, अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना, महाराज मानसिंह, महाराज बीरबल, कवींद्र केशवदासजी से आपका अच्छा परिचय था। अकबर के दरबार में भी आपका अति ही अधिक मान होता था। अकबर प्रायः आपको आदर-पूर्वक बुलाकर आपके सत्संग से लाभ उठाया करता था। इसी प्रकार की एक घटना सुकवि-सरोज के प्रथम भाग में पृष्ठ ९, १०, ११ पर लिखी जा चुकी है, और भी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

× × ×

अब्दुलरहीम खानखाना 'रहीम', जो अकबर के प्रसिद्ध मंत्री थे, गोस्वामीजी को बहुत ही मानते थे। एक बार किसी दीन ब्राह्मण ने अपनी कन्या के विवाह के लिये गोस्वामीजी से द्रव्य माँगा। गोस्वामीजी ने कागज़ का एक पर्चा उसे देकर कहा कि इसे खानखाना के पास ले जाओ, इच्छा पूरी हो जायगी। उस पर्चे पर दोहे का आधा चरण गोस्वामीजी ने लिख दिया था। वह यह है—

सुर-तिय, नर-तिय, नाग-तिय, सब चाहत अस होय;

खानखाना ने ब्राह्मण को पर्याप्त धन देकर बिदा किया और उसके हाथ उत्तर में दोहे का दूसरा चरण इस प्रकार लिख भेजा—

गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी-सो सुत होय।

× × ×

आमेर के महाराज मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह गोस्वामीजी के पास प्रायः आया करते थे और भी बड़े-बड़े प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा आपका सदैव ही सम्मान होता रहता था। एक दिन किसी ने आपसे पूछा—"महाराज! पहले तो आपके पास कोई नहीं आता था, अब तो बड़े-बड़े लोग आपकी सेवा में आते हैं।" तब गोस्वामीजी ने कहा—

लहै न फूटी कौड़ि हूँ, को चाहै केहि काज;
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीबनिवाज।

× × ×

घर-घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय ;
ते तुलसी तब राम बिनु, ये अब राम सहाय ।

इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे हमें अमूल्य शिक्षाएँ मिल सकती हैं। आपके संबंध में विशेष जाननेवालों को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रंथावली' और मेरे 'बुंदेल-वैभव' अथवा 'बुंदेलखंड के हिंदी-कवियों का सांगोपांग इतिहास' तथा 'तुलसी-केशव'-नामक ग्रंथों को देखना चाहिए।

गोस्वामीजी ने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की है—

(१) दोहावली
(२) गीतावली
(३) विनयपत्रिका
(४) कवित्त-रामायण
(५) रामाज्ञा
(६) रामचरित-मानस
(७) बरवै-रामायण
(८) रामलला नहछू
(९) पार्वती-मगल
(१०) जानकी-मंगल
(११) कृष्ण-गीतावली
(१२) वैराग्य-संदीपनी
(१३) राम-सतसई

(१४) छप्पय-रामायण
(१५) झूलना-रामायण
(१६) कुंडलिया-रामायण
(१७) रोला-रामायण
(१८) कड़खा-रामायण
(१९) राम-शलाका
(२०) संकट-मोचन
(२१) हनुमान-बाहुक
(२२) छंदावली

(१) दोहावली

५७३ दोहों का इसमें संग्रह है।

उदाहरण—

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान ;
भगति निरूपहिं भगत कलि, निदहिं वेद-पुरान।

× × ×

श्रुति-सम्मत हरि-भक्ति-पथ, संजुत बिरति-विवेक ;
तेहि परिहरहिं बिमोह-बश, कल्पहिं पंथ अनेक।

× × ×

गौंड़ गँवार नृपाल महि, जमन महा महिपाल ;
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल।

× × ×

तुलसी पावस१ के समय, धरी कोकिलन मौन ;
अब तौ दादुर२ बोलि हैं, हमहि पूछि है कौन।

× × ×

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहियतु साँच ;
काम जो आवै कामरी, का लै करै कुमाच ?

(२) गीतावली

ब्रजभाषा में श्रीरामचंद्रजी की बाल-लीलाओं आदि का सुंदर वर्णन किया है।

उदाहरण—

जननी निरखत बान धनुहिआँ ;
बार-बार उर नयननि लावति प्रभुजु की ललित पनहिआँ ३।
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सकारे ४ ;
उठहु तात, बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे।
कबहुँ कहत यह बार भई ज्यों जाहु भूप पै मैया ;
बंधु बोलि जेंइए जो भावै गई नेछावरि मैया।
कबहुँ समुझि बन-गमन राम को रहि चकि चित्र-लिखी-सी ;
तुलसिदास या समय कहे ते लागत प्रीति सिखी-सी।

(३) विनयपत्रिका

इस ग्रंथ को लिखने में गोस्वामीजी ने बड़ा ही कौशल दिखलाया है। श्रीरामचंद्रजी के नाम यह पत्रिका लिखी गई

---

१ पावस = वर्षा-काल। २ दादुर = मेंढक। ३ पनहिआँ = पदत्राण, जूता। ४ सकारे = प्रातःकाल, सवेरे।

है और अपने पक्ष मे रामचंद्रजी के द्वारपाल, सभासद् आदि सभी को पक्ष में करने के लिये प्रथम आपने उनकी प्रार्थनाएँ की हैं और अंतिम पद में रामचंद्रजी से हस्ताक्षर करवाकर अपनी प्रार्थना स्वीकार करवा ली है।

(राग नट)

उदाहरण—

कैसे देउँ नाथहि खोरि ;
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भक्ति परिहरि तोरि ।
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ;
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ।
किए सहित सनेह जे अघ, हृदय राखे चोरि ;
सँग बश किए शुभ सुनाए, सकल लोक निहोरि ।
करौं जो कुछु धरौं सचि पचि, सुकृत शिला बटोरि ;
पैठि उर बर बस दयानिधि, दंभ लेत अँजोरि ।
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आशा डोरि ;
बात कहौं बनाय बुध ज्यों, बर विराग निचोरि ।
इतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई[1] घोरि ;
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहि छोरि ।

(४) कवित्त-रामायण

वीर-रस-पूर्ण कवित्तों में श्रीरामचंद्रजी का इसमें यश वर्णन किया गया है।

---

1 अँचई=आचमन कर की।

उदाहरण—

पुर ते निकसी रघुबीर वधू, धरि धीर दए मग में पग द्वै;
झलकी भरि भाल कनी जल की पट सूखि गए मधुराधर वै।
फिर बूझति हैं चलनोऽबकितो, पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै;
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।

× × ×

सीस जटा उर बाहु विशाल, विलोचन लाल तिरीछी-सी भौंहैं;
तून सरासन बान धरे 'तुलसी' बन मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिंबार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं;
पूँछत ग्राम-बधू सिय सों, कहौ साँवरो-सो सखि, रावरो को है।

(५) रामाज्ञा

३४३ दोहों का शकुन आदि देखने के लिये सुंदर संग्रह है। ४६-४६ दोहों के सात अध्याय इसमें हैं।

उदाहरण—

सुदिन साँझ पोथी नेवति पूजि प्रभात सप्रेम;
सगुन बिचारब चारु मति सादर सत्य सनेम।

× × ×

मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि दोहा देखि बिचारि;
देस, करम, करता बचन, सगुन समय अनुहारि।

× × ×

मन मलीन मानी महिप, कोक कोकनद बृंद;
सुहृद समाज चकोर-चित, प्रमुदित परमानंद।

(६) रामचरित-मानस

सात कांडों में श्रीरामचंद्रजी का विस्तार-पूर्वक इसमें वर्णन किया गया है। गोस्वामीजी का यह सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। राजाओं के राजप्रासादों से लेकर दीन-हीन की झोपड़ियों तक में इसका समान रूप से आदर और प्रचार है। भारतवर्ष में विरला ही कोई ऐसा होगा, जिसने इसकी वाणी से अपने कान पवित्र न किए हों। अन्य अनेक भाषाओं में भी इसके अनुवाद निकल चुके हैं, और दिनों-दिन निकलते ही जाते हैं। जितनी ख्याति इस ग्रंथ की हुई है, संसार में उतनी ख्याति अब तक किसी भी अन्य ग्रंथ को नहीं हो सकी है। इस ग्रंथ-रत्न ने सर्वोच्च सिंहासन पर बिठलाकर आपको सर्वदा को अमर कर दिया है। यद्यपि यह ग्रंथ घर-घर प्रस्तुत है, फिर भी प्रसंग-वश इसके दो-एक उदाहरण दे देना अनुपयुक्त न होगा।

देखिए, निम्न-लिखित चौपाइयों में साहित्य के नवरसों का कैसी सुंदरता से आपने वर्णन किया है —

देखहिं भूप महा रणधीरा ;
मनहुँ वीर रस धरे शरीरा १।

डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी ;
मनहुँ भयानक मूरति भारी २।

---

१ देखहिं...शरीरा=वीर रस। २ डरे...भारी=भयानक रस।

रहे असुर छल जो नृप वेषा ;
तिन प्रभु प्रगट काल-सम देखा १ ।
पुरवासिन देखे दोऊ भाई ;
नर-भूषण लोचन-सुखदाई ।
नारि विलोकहिं हर्ष हिय, निज-निज रुचि अनुरूप ;
जनु सोहत श्रृंगार धर, मूरति परम अनूप २ ।
विदुषन प्रभु विराटमय दीशा ;
बहु मुख कर पग लोचन शीशा ३ ।
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे ;
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ।
सहित विदेह विलोकहिं रानी ;
शिशु-सम प्रीति न जाय बखानी ४ ।
योगिन परम तत्त्वमय भाषा ;
शांत शुद्ध सम सहज प्रकाशा ५ ।
हरिभक्तन देखे दोऊ भ्राता ;
इष्टदेव इव सब सुखदाता ६ ।
रामहिं चितव भाव जेहि सीया ;
सो सनेह सुख नहिं कथनीया ७ ।

संसार-सागर को पार करने का कैसा सरल उपाय आप उत्तरकांड में लिखते हैं । देखिए—

---

१ रहे.. देखा=रौद्र रस । २ पुरवासिन...अनूप=श्रृंगार रस । ३ विदुषन.. शीशा=बीभत्स रस । ४ सहित...बखानी=करुणारस । ५ योगिन...प्रकाशा=शांत रस । ६ हरि.. सुखदाता=अद्भुत रस । ७ रामहिं.. कथनीया=हास्य रस ।

कृतयुग त्रेता द्वापरहु पूजा मख अरु योग;
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।

कृतयुग सब योगी - विज्ञानी;
करि हरि-ध्यान तरहिं भव प्रानी।
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं;
प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं।
द्वापर करि रघुपति-पद-पूजा;
नर भव तरहिं उपाय न दूजा।
कलि केवल हरि-गुण-गण गाहा;
गावत नर पावहिं भव थाहा।
कलियुग योग-यज्ञ नहिं ज्ञाना;
एक अधार राम-गुण गाना।
सब भरोस तजि जो भज रामहिं;
प्रेम-समेत गाव गुण ग्रामहिं।
सो भव तरु कछु संशय नाहीं;
नाम-प्रताप प्रकट कलि माहीं।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा;
मानस पुण्य होय नहिं पापा।

कलियुग-सम युग आन नहिं, जो नर करु विश्वास;
गाय राम गुण-गण विमल, भव तरु बिनहिं प्रयास।
प्रकट चारि पद धर्म के, कलि महँ एक प्रधान;
येन केन विधि दीन्हें, दान करै कल्यान।

(७) बरवै-रामायण

इस ग्रंथ में रामचरित-मानस ही की तरह सात कांडों और ६९ बरवै छंदों में राम-यश वर्णन किया है।

उदाहरण—

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच ;
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ।
अब जीवन की है कपि आस न कोय ;
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होय ।
सिय-मुख सरद-कमल जिमि किमि कहि जाय ;
निसि मलीन वह निसि-दिन यह बिगसाय ।

× × ×

कोउ कह नर-नारायन हरि-हर कोउ ;
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ ।

(८) रामलला नहछू

सोहर छंद में यह छोटा-सा ग्रंथ श्रीरामचंद्रजी के यज्ञोपवीत के समय पर लिखा गया प्रतीत होता है ।

उदाहरण—

रामलला कर नहछू अति सुख गाइय हो;
जेहि गाए सिधि होय परम निधि पाइय हो ।
दशरथ राउ सिंहासन बैठि बिराजहिं हो;
तुलसिदास बलि जाहि देख रघुराजहिं हो ।
जे एहि नहछू गावहिं गाइ सुनावहिं हो;
रिद्धि-सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावहिं हो ।

(९) पार्वती-मंगल

इस ग्रंथ में शिव-पार्वती का विवाह-वर्णन है । १४८ तुक सोहर छंद के और १६ छंद हैं ।

उदाहरण—

सुख-सिंधु मगन उतारि आरति,
करि निछावरि निरखि कै;
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ—
चली मंडप हरषि कै।
हिमवान दीन्हेउ उचित आसन—
सकल सुर सनमानि कै;
तेहि समय साजि समाज सब—
राखे सुमंडपु आनि कै।

(१०) जानकी-मंगल

इस ग्रंथ में श्रीसीतारामजी का विवाह-वर्णन है। १९२ तुक सोहर छंद के और २४ छंद हैं।

उदाहरण—

बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु, भइ अवध सुख सोभामई;
एहि जुगुति राजविवाह गावहिं सकल कबि कीरति नई।
उपवीत ब्याह उछाह जे सिय-राम मंगल गावहीं;
तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिनु पावहीं।

(११) कृष्ण-गीतावली

इस ग्रंथ में ६१ पदों में श्रीकृष्ण-चरित्र का मनोहर वर्णन किया है।

उदाहरण—

देखु, सखी हरि - बदन - इंदु पर ;
चिक्कन कुटिल अलक १ अवली २ छवि कहि न जाय शोभा अनूपवर ।
बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर ;
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहि उर ।
अरुन वनज लोचन कपोल सुभ श्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर ;
मनहुँ सिंधु निज सुतहिं मनावन पठए जुगल बसीठि बारिचर ।
नँद-नंदन मुख की सुंदरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमावर ;
तुलसिदास त्रैलोक्य विमोहन रूप कपट नर त्रिविध शूलहर ।

हरि को ललित बदन निहारु ;
निपट हीं डाटति निठुर ज्यों लकुट करते डारु ।
मंजु ३ अंजन-सहित जलकन चुवत लोचन चारु ;
श्याम सारस मगन मनो शशि, स्रावत सुधा सिंगारु ।
सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपो वारु ;
मनहुँ मरकत ४ मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु ।
कान्ह हूँ पर सतर भौंहें महरि मनहिं बिचारु ;
दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमारु ।

(१२) वैराग्य-संदीपनी

यह ग्रंथ तीन प्रकाशों में, दोहा-चौपाइयों मे, संत-महात्माओं के लक्षण, प्रशंसा और वैराग्य के उत्कर्ष वर्णनों में लिखा गया है । इसमें कुल मिलाकर ६२ छंद है ।

---

१ अलक=घुँघरवाले बाल । २ अवली=लकीर । ३ मंजु=शुद्ध, सुंदर । ४ मरकत=पन्ना, हरिन्मणि ।

उदाहरण—

(सोरठा)

को बरनै मुख एक तुलसी महिमा संत की;
जिन्हके बिमल बिवेक, सेष-महेस न कहि सकत।

(दोहा)

तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैनि-दिन राम;
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम।

अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान;
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख, अन्न अरु पान।

(१३) राम-सतसई

सात सौ से भी अधिक दोहों का इसमें संग्रह है। यह ग्रंथ सं० १६४२ वि० की वैशाख-शुक्ल नवमी गुरुवार को बना था। दोहे बड़े ही मार्मिक और भक्ति, प्रेम, ज्ञान और उपदेशों से भरे हुए हैं।

उदाहरण—

राम-नाम मणि-दीप धरि, जीह देहरी द्वार;
तुलसी भीतर बाहिरउ, जो चाहेसि उजियार।
सोइ ज्ञानी, सोई गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि;
तुलसी जाके चित भई, राग-द्वेष की हानि।
स्वारथ-परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर;
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर।

(१४) छप्पय-रामायण

छप्पय छंदों में श्रीराम-यश का वर्णन किया है।

उदाहरण—

कतहुँ विटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत ;
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करष्षत।
चरन चोट चटकन चोंकोट अरि उर सिर बज्जत ;
विकट कटक विहरत वीर वारिद् जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि महि, जयति राम जय उच्चरत ;
तुलसीस पवन-नंदन अटल, जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत।

(१९) राम-शलाका

उदाहरण—

राम-राज राजत सकल, धर्म-निरत नर-नारि ;
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि १।

(२०) संकट-मोचन

इसमें हनुमानजी के संकट-मोचनार्थ आठ सवैया हैं।

उदाहरण—

बाल समय रवि भक्ष कियो तब तीनिहुँ लोक भयो अँधियारो ;
तेहि ते त्रास भई सबको अति संकट काहु ते जात न टारो।
देवन आनि करी विनती तब छाँड़ि दियो रवि कष्ट निवारो ;
को नहिं जानत है जग में यह संकट-मोचन नाम तिहारो।

(२१) हनुमान-बाहुक

कवितावली का अंतिम अंश हनुमान-बाहुक के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में हनुमानजी की स्तुति तथा प्रार्थनाएँ हैं।

---

१ पदारथ चारि=चारो पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

उदाहरण—

कहौं हनुमान सों सुजान राम राय सों,
कृपानिधान शंकर, सावधान सुनिए ;
हरष विषाद राग रोग गुन दोषमई,
बिरची बिरंचि[1] सब, देखियत दुनिए।
माया जीव काल के करम के सुभाव के—
करैया राम वेद कहै, ऐसी मन गुनिए ;
तुम्ह तें कहा न होइ, हाहा सो बुझैए मोहि,
हौं हूँ रहौ मौन ही बयो[2] सो जानि लुनिए[3]।

(२२) छंदावली रामायण

इस ग्रंथ में श्रीरामचंद्रजी का यश छोटे-छोटे ललित छंदों में वर्णन किया है।

उदाहरण—

(सुदरी छंद)

राजत[4] मेचक[5] अंग महा छवि ;
गावत हैं श्रुति सेस सबै कवि।
पाल विनोदक देव करैं कल ;
जो सुनते जरि जाहि महामल[6]।

इत्यादि

(१५) झूलना-रामायण, (१६) कुंडलिया-रामायण,

---

१ विरंचि=ब्रह्मा। २ बयो=बोया है, किया है। ३ लुनिए=काटिए, भोग कीजिए। ४ राजत=शोभित होता है। ५ मेचक=श्याम। ६ महामल=महा मैल, घोर पाप।

(१७) रोला-रामायण और (१८) कड़खा-रामायण के उदाहरण नहीं दिए जा सके हैं, क्योंकि ये ग्रंथ मुझे देखने को नहीं मिल सके हैं।

भारतवर्ष में गोस्वामीजी की कविता का जितना प्रचार है, उतना प्रचार किसी और कवि की कविता का नहीं है। पढ़े-लिखे लोग तो आपकी कविता का रसास्वादन करते ही हैं, किंतु बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति भी आपकी कविताओं को लोकोक्तियों आदि में कहते-सुनते देखे जाते हैं। हिंदी-कविता में कथा प्रासंगिक रूप में और भक्ति-पक्ष में कविता लिखने में आप सर्वश्रेष्ठ कवि हुए हैं। आपकी अमर कृतियाँ हिंदी-साहित्य की स्थायी और अद्वितीय संपत्ति हैं।

श्रीपं० नंददासजी शुक्ल

पं० नंददासजी शुक्ल का जन्म सं० १५६४ वि० के लगभग सोरों (शूकरक्षेत्र) में हुआ था। आप गोस्वामी तुलसीदासजी (शुक्ल) के अनुज थे। भक्तमाल के कर्ता श्रीनाभादासजी ने आपके लिये यह छप्पय लिखा है—

लीला पद रस रीति-ग्रंथ रचना में नागर;
सरस उक्ति युत युक्ति भक्ति-रस गान उजागर।
प्रचुरय पधलौं सुजसु रामपुर-ग्राम-निवासी;
सकल सुकल संबलित भक्त-पद-रेनु-उपासी।
चंद्रहास-अग्रज सुहृद्-परम प्रेम-पथ में पगे;
श्रीनंददास आनंद-निधि-रसिक सुप्रभु हित रँगमगे।

आपके जन्म-स्थान आदि की बातें गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-चरित्र में लिखी जा चुकी हैं, अतः उनको यहाँ फिर लिखकर हम पाठकों का समय नहीं लिया चाहते। अस्तु।

२५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि आप द्वारिका जाते हुए सिंधुनद-ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गए थे, और उसके घर की फेरी दिया करते थे। उस स्त्री के घर-वालों ने आपको हटाने के अनेक प्रयत्न किए, किंतु वे सब

निष्फल हुए। विवश हो उस स्त्री के घरवाले इनसे पिंड छुड़ाने के लिये गोकुल आए। नंददासजी उनके पीछे-पीछे चलते हुए गोकुल आ पहुँचे। गोकुल में गुसाईं विट्ठलनाथजी के सदुपदेश से आपका सब मोह दूर हो गया, और आप गुसाईंजी के शिष्य हो गए। पश्चात् आपकी गणना अष्टछाप में होने लगी।

श्रीनवनीतप्रियाजी के आगे नंददासजी कीर्तन करते हुए अपनी भक्ति-भाव-भरी पदावलियों में विह्वल हो जाते थे। वास्तव में अष्टछाप में यदि सूरदासजी सूर्य हैं, तो आप साहित्य-गगन के चंद्रमा हैं। आपके लिये यह लोकोक्ति अधिक प्रसिद्ध है—"और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया।"

आपकी रचनाएँ बड़ी ही चित्ताकर्षक और मनोहारिणी हैं। शब्दों का क्रम आपने ऐसी उत्तमता से अपनी रचनाओं में रक्खा है कि पढ़ते-पढ़ते हृदय गद्गद हो जाता है। सरल और सच्चे भावों का बड़ी ही खूबी से आपने समावेश किया है। माननीय मिश्रबंधुओं ने आपको पद्माकर की श्रेणी में माना है, किंतु आपकी भाव-पूर्ण सुकविताएँ ही इसका निर्णय स्वयं कर देंगी कि आप किस श्रेणी के कवि थे। हम क्या लिखें, पाठक स्वयं ही पढ़कर अनुभव कर लेंगे।

वैसे तो आपकी सभी कविताएँ बड़ी ही मार्मिक और सजीव हैं, किंतु आपकी रासपंचाध्यायी बड़ी ही मनोरम

और सुंदर रचना है। श्रीवियोगीहरिजी ने रासपंचाध्यायी को हिंदी का गीतगोविंद माना है, जो वास्तव ही में ठीक है।

आपने अनेकार्थनाममाला, रासपंचाध्यायी, रुक्मिणी-मंगल, हितोपदेश, दशमस्कंध भागवत, दानलीला, मानलीला, ज्ञानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, रूपमंजरी, नाममंजरी, नाम-चिंतामणिमाला, रसमंजरी, विरहमंजरी, नाममाला, नासकेतु-पुराण गद्य और श्याम-सगाई आदि ग्रंथों की रचना की है। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकर पद भी आपके मिलते हैं।

आपकी सुकविताओं में से कुछ अंश यहाँ दिए जाते हैं—

(रासपंचाध्यायी)

बंदन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी;
सुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुंदर अविकारी।
हरि-लीला-रस मत्त१ मुदित नित बिचरत जग में;
अद्भुत गति कहुँ नहीं अटक ह्वै निकसे मग में२।
नीलोत्पल३-दल४-स्याम अंग नव जोबन भ्राजै५;
कुटिल६ अलक मुख कमल मनो अलि-अवलि बिराजै।
सुंदर भाल बिसाल दिपति जनु निकर निसाकर;
कृष्ण-भक्ति-प्रतिबिंब-तिमिर७ को कोटि दिवाकर।

---

१ हरि - लीला-रस-मत्त=भगवान् की लीला के रस में मतवाले। २ मग में=मार्ग में। ३ नीलोत्पल=नीला कमल। ४ दल=पत्ता। ५ भ्राजै=शोभित होवे। ६ कुटिल=टेढ़ा। ७ तिमिर=अँधेरा, अज्ञान।

कृपा - रंग - रस - श्रयन नयन राजत रतनारे१ ;
कृष्ण - रसामृत - पान - अलस कछु घूमघुमारे२ ।
सघन कृष्ण - रस - भवन - गंड - मंडल भल दरसै ;
प्रेमानंद - मलिंद मंद मुसकनि मधु बरसै ।
उन्नत नासा अधर - बिंब सुक की छबि छीनी ;
तिन बिच अद्भुत भाँति लसत कछु इक मसि भीनी ।
कंबु - कंठ की रेख देखि हरि धर्म प्रकासैं ;
काम - क्रोध-मद - लोभ - मोह जिहि निरखत नासैं ।
उरबर पर अति छबि की भीरा३ बरन न जाई ;
जेहि भीतर जगमगत४ निरंतर५ कुँवर कन्हाई ।
सुंदर उदर उदार रोमावलि राजति भारी ;
हिय - सरवर रस-भरी चली जनु उमगि पनारी६ ।
ता रस७ की कुंडिका८ नाभि सोभित अस गहरी ;
त्रिबली तामें ललित भाँति जनु उपजत लहरी ।

---

१ रतनारे=लाल । २ घूमघुमारे=मस्त, उनींदे । ३ भीरा=भीड़, पुंज, समूह । ४ जगमगत=जगमगाते हैं, झलकते हैं । ५ निरंतर= सदैव । ६ पनारी=नाला, छोटी नदी । ७ रस=प्रेम रूपी रस, जल । ८ कुंडिका=गड्ढा, कुंडी । नयनों के आपने बहुत-से वर्णन पढ़े होंगे, किंतु 'कृपा-रंग...श्रयन' और 'कृष्ण-अलस' में जो कोमलता, जो भावों की प्रौढ़ता है, वह शायद ही और कहीं मिले । 'प्रेमानंद मलिंद' और 'उन्नत नासा', 'अधर-बिंब' की भी कितनी सुंदर उपमा है, 'मसि-भीनी'=रेख निकलना, मसें भीजना, होठों पर मूँछों का कुछ-कुछ आभास होना । 'कंबु-कंठ' की उपमा के भीतर कितना सुंदर भाव छिपा है, पढ़कर हृदय उछलने लगता है ।

अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस ;
जोबन - मद आकरषत - बरषत प्रेम - सुधा - रस ।
गूढ़ जानु आजानु बाहु मद-गज गति लोलैं[1] ;
गंगादिकन पवित्र करन अवनी में डोलैं ।
सुंदर पद अरविंद मधुर मकरंद मुग्ध जहँ ;
मुनि-मन-मधुकर-निकर[2] सदा सेवत लोभी तहँ ।
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगन में दूरि भए दुरि ;
पसरि परयो अँधियार सकल संसार घुमड़ घुरि ।
तिमिर - ग्रसित सब लोक श्रोक दुख देखि दयाकर ;
प्रगट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर[3] ।
जे संसार अँधियार अगर में मगन भये वर ;
तिन हित अद्भुत दीप प्रकट कीनो जु कृपाकर ।
श्रीभागवत सुनाम परम अभिराम परम मति ;
निगम-सार[4] सुकुमार[5] बिना गुरु कृपा अगम अति ।
ताही में मणि अति रहस्य यह पंचाध्यायी ;
तन में जैसे पंच प्रान अस सुक मुनि[6] गाई ।
परम रसिक इक मित्र मोहिं तिन आज्ञा दीनी ;
ताही ते यह कथा जथामति भाषा कीनी ।

× × ×

---

१ लोलैं = हिलती-डुलती हैं। २ निकर = समूह। ३ विभाकर = प्रकाशित करनेवाले । ४ निगम-सार = वेदों का तत्त्व, निचोड़ । ५ सुकुमार = अति किशोर, श्रीशुकदेवजी से तात्पर्य है । ६ सुक मुनि = श्रीशुकदेवजी । "परम रसिक इक मित्र" = मित्र का नाम स्पष्ट आपने नहीं लिखा है, किंतु कहते हैं, नंददासजी का मित्र से गंगाबाईजी से आशय है। गंगाबाई श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजी की शिष्या थीं। कविता में ये अपना उपनाम 'श्रीविट्ठल गिरिधरन' लिखा करती थीं ।

छाही छिन उड़राज उदित रस - रास - सहायक ;
कुमकुम-मंडित बदन प्रिया जनु नागरि-नायक।
कोमल किरन अरुन मानो वन व्याप रही त्यों ;
मनसिज१ खेल्यो फागु घुमड़ घुरि रह्यो गुलाल ज्यों।
फटिक२ छटा-सी किरन कुंज-रंध्रन३ जब आई ;
मानहुँ वितन४ वितान सुदेस५ तनाव तनाई।
मंद-मंद चल चारु चंद्रमा अति छवि पाई ;
झलकत है जनु रमारमन६ पिय कौतुक आई।
तब लीनी कर-कमल जोगमाया७-सी मुरली ;
अघटत घटना चतुर बहुरि८ अधरन सुर जु-रली९।
जाकी धुनि तें निगम अगम१० प्रगटित बड़ नागर ;
नाद ब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुख-सागर।
पुनि मोहन सों मिली कछू कल गान कियो अस ;
वाम-विलोचन-बास तियन मन हरन होय जस।
मोहन - मुरली - नाद स्रवन कीनों सब किनहूँ ;
जथा-जथा बिधि रूप तथा बिधि परस्यो तिनहूँ।
तरनि११ किरन ज्यों मनिपषान१२ सबहिन के परसे ;
सुरजकांति मणि बिना नहीं कहुँ पावक दरसे।

---

१ मनसिज = कामदेव। २ फटिक = स्फटिक, बिल्लौरी पत्थर। ३ रंध्र = छेद। ४ वितन = कामदेव। ५ सुदेस = सुंदर। ६ रमारमन = विष्णु भगवान्। ७ जोगमाया = पराप्रकृति, परमेश्वर की आदि शक्ति। ८ बहुरि = फिर। ९ रली = मिली हुई। १० अगम = आगम, शास्त्र। ११ तरनि = सूर्य। १२ मनिपषान = सूर्यकांत मणि (कहते हैं, सूर्य की किरणों से यह पत्थर अपने आप पिघलने लगता है)।

सुनत चलीं ब्रजवधू गीत-धुनि को मारग गहि ;
भवन भीत द्रुम कुंज पुंज कितहूँ अटकी नहि ।
नाद अमृत को पथ रँगीलो सुच्छम[१] भारी ;
तेहि मग ब्रज-तिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी ।
शुद्ध प्रेममय रूप पंचभूतिन[२] ते न्यारी ;
तिन्हैं कहा कोउ कहै ज्योति-सी जगत उजारी ।

× × ×

तब बोलीं ब्रजबाल लाल मोहन - अनुरागी ;
सुंदर गद्गद गिरा गिरधरहिं मधुरी लागी ।
हे मोहन, हे प्राणनाथ, सुंदर सुखदायक ;
निठुर बचन जनि कहौ नाहिं ये तुम्हरे लायक ।
जब कोउ बूझै धर्म तबहिं तासों कहिए पिय ;
बिन पूछे ही धर्म कतक[३] कहिए दहिए हिय ।
नेम-धर्म जप-तप ये जब कोऊ फलहिं बतावैं ;
यह कहुँ नाहिन सुनी जु फल फिर धर्म सिखावैं ।
अरु तुम्हरो यह रूप धर्म के भर्महिं मोहै ;
घर में को तिय धर्म मर्म[४] या आगे को है ।
तैसिय[५] पिय की मुरली जुरली अधर सुधा-रस ,
सुनि निज धर्म न तजैं रुकनि त्रिभुवन में को अस ।
नग[६] खग और मृगन कौ कैसो धर्म रह्यो है ;
छाने ह्वै रहौं पिया अब न कछु लाल कह्यो है ।

---

१ सुच्छम=सूक्ष्म, थोड़ा । २ पंचभूति=पाँच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश । ३ कतक=किसलिये से तात्पर्य है । ४ मर्म=भेद । ५ तैसिय=तैसे ही । ६ नग=नाग, पहाड़ ।

अरु तुम्हरे कर-कमल महादूती यह मुरली ;
राखे सबके धर्म प्रेम अधरन रस जु रली।
सुंदर पिय को बदन निरखि के को नहिं भूलै ;
रूप-सरोवर माँझ१ सरस अंबुज जनु फूलै।
कुटिल अलक२ मुख कमल मनो मधुकर मतवारे ;
तिनमें मिलि गए चपल३ नैन पिय मीन हमारे।
चितवनि मोहन मंत्र४ भौंह जनु मन्मथ-फाँसी५ ;
निपट ठगौरी आहि६ मंद मुस्कनि मृदु हाँसी।
अधर-सुधा के लोभ भई हम दासि तुम्हारी ;
जो लुब्धी पद-कमल चंचला कमला७ नारी।
जो न देउ यह अधरामृत तौ सुनि सुंदर हरि ;
करिहैं यह तन भस्म विरह-पावक में गिरि-गरि।
पुनि पद पिय के पाय बहुरि धरिहैं सुंदर अँग ;
निधरक ८ ह्वै यह अधरामृत पैहैं फिरिहैं सँग।
सुनि गोपिन के बचन प्रेम आँच-सी लगी जिय ;
पिघलि चल्यो नवनीत ९ मीत सुंदर मोहन हिय।

× × ×

(दोहा)

कुंज-कुंज ढूँढ़त फिरीं, खोजत दीनदयाल ;
प्राणनाथ पाए नहीं, बिकल भई ब्रज-बाल।

---

१ माँझ = में। २ कुटिल अलक = टेढ़ी अलकें, घूँघरवाले बाल। ३ चपल=चंचल। ४ मोहन मंत्र=मंत्रशास्त्र की मोहिनी विद्या। ५ मन्मथ-फाँसी=कामदेव की फाँसी। ६ आहि=है। ७ कमला=श्रीलक्ष्मीजी। ८ निधरक=निधड़क, निःशंक। ९ नवनीत=मक्खन।

(रोला)

बिरहाकुल ह्वै गईं सबै पूछत बेली बन ;
को जड़ को चैतन्य न कछु जानत बिरही जन।
हे मालति, हे जाति१, जूथके२, सुनि हित दे चित ;
मान-हरन मन हरन लाल गिरिधरन लखे इत।
हे केतकि३, इततें कितहूँ चितए पिय रूसे४ ;
कै नँदनंदन मंद मुसुकि५ तुम्हरे मन मूसे६।
हे मुक्ताफल, बेल धरे मुक्ताफल-माला ;
देखे नैन बिसाल मोहना नँद के लाला।
हे मंदार७, उदार बीर करबीर८ महामति ;
देखे कहुँ बलबीर९ धीर मन-हरन धीर गति।
हे चंदन, दुखदंदन सबकी जरन जुड़ावहु१० ;
नँद-नंदन जगबंदन चंदन हमहिं बतावहु।
पारिधि११ हू में तुम जु कठिन सुन हो मोहन पिय ;
वेनु१२ बजाय बुलाय मृगी-सी मोहि हतीं१३ तिय।

---

१ जाति=जुही। २ जूथिका=यूथिका, पुष्प विशेष। ३ केतकि=केतकी। ४ रूसे=रूठे हुए। ५ मंद मुसुकि=धीरे मुसक्याय के। ६ मूसे=चुराए, हरे। ७,८ मंदार, करबीर=वृक्ष विशेष। ९ बलबीर=बलभद्रजी के भाई, श्रीकृष्ण। १० जरन जुड़ावहु=जलन जुड़ाते हो, शीतल करते हो। ११ पारिधि= बहेलिया। १२ वेनु=वंशी, मुरली। १३ हतीं=मार डालीं।

"हे चंदन...बतावहु"=तुम सबकी जलन दूर करते हो। हमें भी श्रीकृष्णरूपी चंदन को बतलाकर हृदय शीतल करो। खूब! कितने सच्चे और प्रौढ़ भावों से भरे हुए पद्य हैं, देखिए।

मात-पिता पति-बंधु सबै तजि तुम ढिग१ आईं ;
जान-बूझि अधरात२ गहर३ बन महँ फिरि आईं ।
अजहूँ४ नहिं कछु बिगरयो रंचक५ तुम पै आवौ ;
मुरली को जूठौ अधरामृत आय पियावौ ।
फनी६-फनन पर अरपे७ डरपे नाहिं नेक तब८ ;
छतियन पर पग धरत डरत क्यों कान्ह कुँवर अब ।
जानति हैं हम, तुम जु डरत ब्रजराज दुलारे ;
कोमल चरन-सरोज उरोज९ कठोर हमारे ।
हरैं-हरैं१० पिय धरौ हमहुँ तो निपट पियारे ;
कित११ अटवी१२ में अटत१३ गड़त तृन कूर्प१४ अन्यारे१५ ।
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस ;
रत्नावलि१६ मधि नीलमनी अद्भुत झलकै जस ।

---

१ ढिग = पास । २ अधरात = आधीरात । ३ गहर = सघन । ४अजहूँ = अब भी ।५ रंचक = ज़रा-सा भी । ६ फनी = कालिया नाग । ७ अरपे = रक्खे, सौंपे । ८ डरपे नाहिं नेक तब = तब आप बिल्कुल न डरे । ९ उरोज=स्तन । १० हरैं-हरैं=धीरे-धीरे । ११ कित=कैसे । १२ अटवी = वन । १३ अटत = घूमते हो । १४ कूर्प = एक प्रकार की कटीली घास । १५ अन्यारे = अनियारे, नुकीले । १६ रत्नावलि = रत्नों की राशि, रत्नों के समान गोपियाँ ।

"फनी फनन ..कान्ह कुँवर अब" की कोमलता और तन्मयता को देखिए । स्वयं ऐसा कहकर सखियाँ जो अनुमान करती हैं, वह तो और ही ग़ज़ब का है, "जानति हैं...हमारे" ख़ूब, न आने के डर को सखियाँ भली प्रकार जानती हैं । कितनी अनोखी सूझ है, कवि की चतुरता का सजीव चित्र है ।

नव मरकत१ मनि श्याम कनक२ मनिगन ब्रजबाला ;
वृंदावन को रीझि मनो पहिराई माला।
नूपुर कंकन किंकिनि३ करतल४ मंजुल मुरली ;
ताल मृदंग उपंग५ चंग ऐकै सुर जु रली।
मृदुल मधुर टंकार ताल झंकार मिली धुनि ;
मधुर जंत्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि।
तैसिय मृदु पद पटकनि-चटकनि६ करतारनि७ की ;
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।
साँवल पिय के संग नृतति यों ब्रज की बाला ;
जनु घन - मंडल मंजुल खेलति दामिनि - माला।
छबिलि तियनि के पाछें आछें८ बिलुलित९ बेनी ;
चंचल रूप लतानि संग डोलति अलि - सेनी१०।
मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोर - मुकुट की ;
सदा बसौ मन मेरे फरकनि११ पियरे पट की१२।
बदन-कमल पर अलक छुटी कछु श्रम की झलकनि१३ ;
सदा रहौ मन मेरे मोर - मुकुट की ढलकनि।

× × ×

---

१ मरकत=नीलम मणि। २ कनक=सुवर्ण, सोना। ३ किंकिनि=तगड़ी। ४ करतल=हथेली। ५ उपंग=नस तरंग, एक प्रकार का बाजा। ६ चटकनि=चट-चट ध्वनि। ७ करतारनि=हाथों की तालियों से। ८ आछें=अच्छी तरह से। ९ बिलुलित=हिलती हुई। १० अलि-सेनी=भँवरों की श्रेणी, भँवरों की पंक्ति। ११ फरकनि=फहराना। १२ पियरे पट की=पीले कपड़े की। १३ श्रम की झलकनि=पसीने की बूँदें।

यह उज्ज्वल रस-माल[1] कोटि जतनन करि पोई[2] ;
सावधान होइ पहिरौ[3] इहि तोरो मति कोई।
स्रवन कीरतन ध्यान सार सुमिरन को है पुनि ;
ग्यान सार हरि ध्यान सार स्रुति-सार-गुथी[4] पुनि।
अघहरनी मनहरनी सुंदर रस बिस्तरनी ;
'नंददास' के कंठ बसौ नित मंगल - करनी।

× × ×

(भँवर-गीत)

ऊधव को उपदेस सुनो ब्रज-नागरी ;
रूप सील लावण्य सबै गुन आगरी[5] ।
प्रेम-धुजा रस रूपिनी, उपजावत सुख - पुंज ;
सुंदर स्याम बिलासिनी, नव बृंदाबन कुंज।
सुनो ब्रज-नागरी ॥ १ ॥

कहन स्याम संदेस एक मैं तुम पै आयो ;
कहन समै संकेत[6] कहूँ अवसर नहिं पायो।
सोचत ही मन में रह्यो, कब पाऊँ इक ठाउँ ;
कहि सँदेस नँदलाल को, बहुरि मधुपुरी जाउँ।
सुनो ब्रज-नागरी ॥ २ ॥

जो उनके गुन[7] होयँ, वेद क्यों नेति[8] बखानैं ;
निरगुन-सगुन आतमा, रचि ऊपर सुख सानैं।

---

१ रस-माल=प्रेम-रस की माला, अर्थात् रासपञ्चाध्यायी। २ पोई=पिरोई, गूँथी, बनाई। ३ पहिरौ=अपनाओ, स्वीकार करो। ४ स्रुति- सार-गुथी=श्रुतियों के सार से गुथी। ५ आगरी= बड़ी। ६ संकेत=एकांत स्थल। ७ गुन=सत्त्व, रज और तम। ८ नेति=न इति, अर्थात् ऐसा नहीं।

वेद-पुराननि खोजि कैं, पायो कितहुँ न एक;
गुन ही के गुन होहि ते, कहौ अकासहि टेक।
सुनो ब्रज-नागरी ॥ ३ ॥

तरनि१ अकास प्रकास, तेजमय रह्यो दुराई२;
दिव्यदृष्टि को रूप, भले वह देख्यो जाई।
जिनकी वे आँखें३ नहीं, देखें कब वह रूप;
तिन्हैं साँच क्यों ऊपजै, परै कर्म के कूप।
सखा सुन स्याम के ॥ ४ ॥

जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईस्वर सारे;
ये सब इनतें वासुदेव४ अच्युत५ हैं न्यारे।
इंद्री दृष्टि विकार तें, रहत अधोक्षज६ जोति;
सुद्ध सरूपी जान जिय, तृप्ति७ जु तातें होति।
सुनो ब्रज-नागरी ॥ ५ ॥

नास्तिक जेते लोग कहा जानैं हित-रूपै८;
प्रगट भानु को छाँड़ि गहै परछाँही धूपै।
हमरे तुम्हरे रूप ही, और न कछू सहाय;
ज्यों करतल आभास को, कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के ॥ ६ ॥

ताही छिन इक भँवर कहूँ तें ही उड़ि आयो;
ब्रज-बनितन के पुंज माहि गुंजत छवि छायो।

---

१ तरनि = सूर्य। २ दुराई = छिपाकर। ३ वे आँखें = दिव्य नेत्र। ४ वासुदेव = वसुदेवजी के पुत्र, श्रीकृष्ण भगवान्। ५ अच्युत = विष्णु का एक नाम। ६ अधोक्षज = विष्णु का एक नाम। ७ तृप्ति = आत्म-तुष्टि, संतोष। ८ हित-रूपै = प्रेम-स्वरूप को।

चढ़यो चहत पग पगनि पर, अरुन१ कमल-दल जानि ;
मन मधुकर ऊधो भयो, प्रथमहिं प्रगट्यो आनि ।
मधुप को भेष धरि ॥ ७ ॥

कोइ कहै रे मधुप, भेस उनही को धारयो ;
स्याम-पीत२ गुंजार बैन किंकिनि३ कनकारयो ।
बापुर४ गोरस५ चोरि कै, फिरि आयो यहि देस ;
इनको जनि मानहुँ कोऊ, कपटी इनको भेस ।
देखि लै आरसी ॥ ८ ॥

कोउ कहै रे मधुप, कहा तू रस को जानै ;
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै ।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद ;
दुबिध६ ग्यान उपजाय कै, दुखित प्रेम आनंद ।
कपट के छंद सों ॥ ९ ॥

कोउ कहै रे मधुप, तुम्हैं लज्जा नहिं आवै ;
सखा तुम्हारो स्याम, कूबरी नाथ कहावै ।
यह नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाय ;
अब जदुकुल पावन भयो, दासी जूठन खाय ।
मरत कह बोल को७ ॥ १० ॥

कोउ कहै हो मधुप स्याम जोगी तुम चेला ;
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला८ ।

---

१ अरुन = लाल । २ स्याम-पीत = श्रीकृष्णजी का श्याम वर्ण और पीला पीतांबर, भ्रमर भी श्याम और पीत वर्ण का होता है, दोनो में समानता रही । ३ किंकिनि = तगड़ी, कंधौनी । ४ बापुर = बाप का । ५ गोरस = मक्खन । ६ दुबिध = दुबिधा, भ्रमात्मक । ७ कितना स्वाभाविक और मीठा व्यंग्य है । ८ "कुबजा......मेला" = दासी के साथ भोग-विलास किया ।

मधुबन सुधि बिसरायकै, आए गोकुल माहिं;
इहाँ सबै प्रेमी बसैं, तुम्हरो गाहक नाहिं।
पधारो रावरे॥ ११॥

जो ऐसी मरजाद मेटि मोहन को ध्यावैं;
काहि न परमानंद प्रेम-पद पी१ को पावैं।
ध्यान जोग सब करम ते, प्रेम परे ही साँच;
यों यहि पटतर देत हौं, हीरा आगे काँच।
विषमता बुद्धि की॥ १२॥

धन्य-धन्य जे लोग भजत हरि को जो ऐसे;
अरु जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान को, उर मद कह्यो उपाध२;
अब जान्यो ब्रज प्रेम को, लहत न आधौ-आध३।
वृथा स्रम करि थके॥ १३॥

करुनामई रसिकता है तुम्हरी सब झूठी;
जब ही ज्यों नहिं लखो तब हि लौं बाँधी मूठी४।
मैं जान्यो ब्रज जाय कै, तुम्हरो निर्दय रूप;
जो तुमको अवलंब ही, ताको मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है॥ १४॥

पुनि-पुनि कहैं जु जाय चलौ वृंदावन रहिए;
प्रेम-पुंज को प्रेम जाय गोपिन सँग लहिए।

---

१ पी को = पिय को; अर्थात् परमेश्वर का। २ उपाध = उपाधि-सहित। ३ आधौ-आध = आधा भी। ४ "जब ही ज्यों—मूठी" जब तक आपके प्रेम का साक्षात्कार नहीं होता, तब तक कोरा भ्रम है, हाथ में कुछ आने का नहीं।

और काम सब छाँड़िकै, उन लोगन सुख देहु ;
नातरु[1] दूब्यो जात है, अब ही नेह सनेहु ।
करौगे तो कहा ॥ १५ ॥

सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोऊ ;
बिबस प्रेम - आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ ।
रोम-रोम प्रति गोपिका, ह्वै रहे साँवत-गात ;
कल्पतरोरुह साँवरो, ब्रज - बनिता भईं पात ।
उलहि अँग-अंग ते[2] ॥ १६ ॥

अब अनेकार्थ-माला की भी कुछ बानगी देख लीजिए। इसमें आपने एक नाम के अनेक शब्दों का छंदोबद्ध वर्णन किया है, देखिए—

'भव' शब्द

भव शंकर संसार भव, भव कहिए कल्यान ;
भव सुंदर जस जगत फल, जब भजिए भगवान ।

'कं' शब्द

कं सुख कं जल कं अनल कं शिर कं पुनि काम ;
कं कंचन ते प्रीति तजि, सदा कहो हरिनाम ।

---

१ नातरु = नहीं तो । २ भावार्थ—जब श्रीकृष्णजी ने ऊधो का उपर्युक्त अनुरोध सुना, तो दोनो नेत्रों में आँसू आ गए, और प्रेम में विह्वल हो जाने से उन्हें तन-बदन की कुछ ख़बर न रही, किंतु ऊधो वहाँ क्या देखते हैं कि उनके साँवरे शरीर के रोम-रोम में गोपियाँ हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान् का शरीर कल्पवृक्ष है, और गोपियों के उसमें स्थान-स्थान पर पत्ते लगे हुए हैं ।

'हरि' शब्द

इंद्र चंद्र अरविंद अलि, कपि केहरि आनंद ;
कंचन काम कुरंग बस, धनुप दंड नभचंद।
पानी पावक पवन पथ, गिरि गज नाग नरिंद ;
जे हरि इनके मुकुट - मनि, हरि ईश्वर गोविंद।

'सारंग' शब्द

पिक चामर कच संख कुच, कर बाहुस अह होय ;
खंजन चंचल मिरग मद, काम बिसन है सोय।
छिती तलाव भुजंग पुनि, को बड़ भानु-समान ;
सारँग श्रीभगवान को, भजिए कृपा - निधान।
सारँग सुंदर को कहत, रात - दिवस बड़ भाग ;
खग पानी अरु धन कहिय, अंबर अबला राग।
रवि ससि दीपक गगन हरि, केहरि कुंज कुरंग ;
चातक दादुर दीप हल, ये कहिए सारंग।

'गुरु' शब्द

गुरु नृप गुरु माता - पिता, गुरु प्रोहित गुरु छंद ;
अरु गुरु दीरघ गुरु कहें, सबके गुरु गोविंद।

पाठकों ने देखा होगा, कोष के साथ-साथ उपर्युक्त दोहों में कुछ और चमत्कार भी है। इस नीरस विषय में भी आपने भक्ति-रस-मंदाकिनी बहा दी है।

'नाम-माला' के भी दो-एक उदाहरण देख लीजिए। पाठक देखेंगे, 'अनेकार्थ-माला' की भाँति यह भी आपकी चातुर्यता से परिपूर्ण है। देखिए—

'मयूर' नाम

नीलकंठ केकी बरहि, शिखी शिखंडी होय;
शिव-सुत-वाहन अहिभषी, मोर कलापी सोय।
नटत मयूर अटन चढ़े, अतिहि भरे आनंद;
निस दिन उनए रहत हैं, नव नीरद नँदनंद।

'लक्ष्मी' नाम

श्रीपद्मा पद्मालया, कमला चपला होय;
सिंधु-सुता मा इंदिरा, विष्णु-वल्लभा सोय।
जाकी नैन-कटाच्छ-छवि रही सकल जग छाय;
सो लछमी वृषभान गृह आपुहि प्रगटी आय।

'कमल' नाम

पुंडरीक पुष्कर जलज, अज अब्जा अंभोज;
पंकज सारस तामरस, कुवलै कंज सरोज।
सतपत्री सौ सहजदल, पदम कुसेसय नाम;
पंकेरुह अरविंद मुख, लखि मलीन तोहि वाम।

'चंद्रमा' नाम

इंदु कलानिधि सुधानिधि, जैवात्रिक ससि सोम;
अब्ज अमीकर छपाकर, विधु कहियत हिम-रोम।
विधु सुधांसु सुभ्रांसु पुनि, औषधीश निसिनाथ;
रजनीकर निसिकर शशी, कुमुद-बंधु हरमाथ।
दुजराजा शशिधर उदधि, तनय ससांक मृगांक;
नक्षत्रेश कलंकधर, तुव मुख उपमा रांक।
बिछुरि चंद्रिका चंद्र तजि, रहि क्यों न्यारी होय;
मैं अवलोकत वाम तोहि, कहु बलि कारन सोय।

इत्यादि।

आपकी फुटकर कविताएँ भी देखिए—

रामकृष्ण कहिए उठि भोर ;

अवध-ईस[1] वे धनुष धरे हैं, यह व्रज-माखन-चोर ।
उनके छत्र चँवर सिंहासन, भरत सत्रुहन लछमन जोर ;
इनके लकुट[2] मुकुट पीतांबर, नित गायन सँग नंदकिसोर ।
उन सागर में सिला तराई[3] इन राख्यो गिरि[4] नख की कोर[5] ;
'नंददास' प्रभु सब तजि भजिए, जैसे निरखत[6] चंद-चकोर ।

---

१ अवध-ईस=अयोध्या के राजा । २ लकुट=छड़ी । ३ सिला तराई=पत्थर तैराए । ४ गिरि=पर्वत, पहाड़ । ५ नख की कोर=नाख़ून के किनारे पर, उँगली पर । ६ निरखत=आराधना करती है, नापती है ।

श्रीपं० हरीरामजी शुक्ल (श्रीव्यासजी)

पं० हरीरामजी शुक्ल का जन्म जगत्प्रसिद्ध कवींद्र केशवदासजी की जन्म-भूमि ही में, ओड़छा में, हुआ था। आप शुक्ल आस्पदीय सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपके जन्म-संवत् आदि का विवरण हमें कहीं भी नहीं मिल सका, किंतु आपका कविता-काल माननीय मिश्र-बंधुओं ने १६१५ वि०, जार्ज ग्रियर्सन ने १६१२ वि० (सन् १५५५ ई०) और श्रीवियोगीहरि ने १६२० वि० माना है। इससे अनुमानतः आपका जन्म १६०० वि० के पूर्व लगभग १५६० या १५६५ वि० के आस-पास हुआ होगा। आपका उपनाम व्यासजी था, और वह यहाँ तक प्रसिद्ध हो गया था कि अधिकांश महानुभावों[१] ने आपको आपके उपनाम ही से अपने ग्रंथों में लिखा है—

---

१ George A. Grierson, in his book "The Modern Vernacular Literature of Hindustan" writes as follows:—

Byas Swami, alias Hari Ram Suk'l of Urchha in Bundelkhand. Fl. 1555 A. D.

शुक्लजी संस्कृत-भाषा के अगाध पंडित थे। पहले आप गौर-संप्रदाय के अनुयायी थे, किंतु पीछे गोस्वामी श्रीहित-

---

माननीय मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्रबंधु-विनोद' में इस प्रकार लिखा है—

नाम (७८)—व्यासजी, ओड़छा, बुंदेलखंड, कविता-काल १६१५

ग्रंथ—बानी, रास के पद, ब्रह्म-ज्ञान, मंगलाचार-पद।

पद—(१०० पृष्ठ छोटे) राग-माला और साखी।

इनकी कविता साधारण श्रेणी की थी।

नाम (२८१) व्यासजी मथुरावाले [प्र० त्रै० रि०] कविता-काल १६८५।

ग्रंथ—श्रीमद्वाणी (१३५ पृष्ठ), पद (४८ पृष्ठ), नीति के दोहे, रागमाल, पदावली और पंचाध्यायी।

वृत्तांत—इनके छंद हज़ारा में मिलते हैं। यह साधारण श्रेणी के कवि थे। इनके एक व दो ग्रंथ छत्रपुर में हमने देखे। इनको हरव्यास-देव भी कहते थे। यह निंबार्क-संप्रदाय के थे। इन्होंने वृंदावन के हरिव्यासी मत को चलाया।

उदाहरण—"भगति बिन अगति जाहुगे वीर" इत्यादि।

श्रीवियोगीहरिजी ने अपनी पुस्तक 'ब्रज-माधुरी-सार' में योग्यता-पूर्वक उपर्युक्त दोनो कथनों को स्पष्ट कर दिया है। देखिए, आप लिखते हैं—

व्यासजी के संबंध में 'मिश्रबंधु-विनोद' में दो स्थानों पर उल्लेख आया है, जो इस प्रकार है—

कवि-संख्या	कवि-नाम	कविता-काल	पृष्ठ-संख्या
७८	व्यास स्वामी, ओर्छा बुंदेलखंड	१६१५	२२७
२८१	व्यासजी ओरछावाले	१६८५	४५०

हरिवंशजी के शिष्य होकर राधावल्लभीय हो गए थे। आपकी श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य होने की घटना बड़ी ही मनोरंजक है। सुनते हैं, शुक्लजी को शास्त्रार्थ का व्यसन-सा हो गया था। सदैव शास्त्रार्थ करने की ही धुन में रहते थे। एक दिन उपर्युक्त गोस्वामीजी के पास भी पहुँचकर उन्हें शास्त्रार्थ के लिये ललकारा, गोस्वामीजी ने सौ बात की एक बात इस पद में सुना दी—

उर्छा और ओड़छा दोनो एक ही हैं। इसी प्रकार व्यास स्वामी कहिए, चाहे व्यासजी। विनोद में (७८) संख्यावाले व्यास स्वामी से 'हरिव्यासी' मत चलाया गया और (२८१) संख्यावाले व्यासजी निंबार्क-संप्रदाय के 'हरिव्यासदेव' कहे गए हैं। उदाहरणार्थ दो पद दिए गए हैं, वे भी एक ही बानी से दो भिन्न स्थानों पर दो व्यासों के मानकर उद्धृत किए गए हैं।

दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर उल्लिखित व्यास एक ही हैं, दो नहीं। यह न हरिव्यासदेव थे, और न हरिव्यासी मत के प्रवर्तक। इनका निंबार्क-संप्रदाय से कोई संबंध नहीं था। हरिव्यासी शाखा के संस्थापक हरिव्यासदेवजी महात्मा श्रीभट्टजी के शिष्य थे। ओड़छावाले हरिराम व्यासजी श्रीराधावल्लभीय थे, निंबार्कीय नहीं। जान पड़ता है, 'शिवसिंह-सरोज' के आधार पर, विना व्यासवंशियों अथवा वैष्णवों से पूँछ-ताछ किए ही, सुबुध मिश्रबंधुओं ने व्यासजी के संबंध में कुछ-का-कुछ लिख दिया है। अस्तु।

आशा है, आगामी संस्करण में माननीय 'मिश्रबंधु' उसको शुद्ध लिख देने की कृपा करेंगे।

यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौने सचुपायो ;
जहँ-तहँ विपति जार जुवती ज्यों प्रगट पिंगला गायो ।
द्वै तुरग पर जोर चढ़त हठि परत कौन पै धायो ;
कहि धौं कौन अंक पर राखै ज्यों गनिका सुत जायो ।
(जै श्री) हितहरिवंश प्रपंच बच सब काल व्याल को खायो ;
यह जिय जानि स्याम-स्यामा-पद-कमल संगि सिर नायो ।

यह सुनकर आपका शास्त्रार्थ का नशा दूर हो गया, और आप उसी समय से गोस्वामीजी के अनन्य भक्त हो गए। आप राधावल्लभीय अवश्य थे, किंतु अन्य संप्रदायों में भेद-भाव नहीं मानते थे। आपकी दृष्टि में साधु-मात्र भगवत् स्वरूप थे। साधु-सेवा के लिये आपने सर्वस्व दे दिया था। अभिमान तो आपको छू तक नहीं गया था। व्रज की प्रशंसा जितने जोरदार शब्दों में आपने की है, शायद ही किसी और ने उतने जोरदार शब्दों मे उसकी प्रशसा की हो। जाति और कुलीनता की बनिस्बत आपने भक्ति और भक्त को कहीं ऊँचा बतलाया है। देखिए, आप कहते हैं—

व्यास मिठाई विप्र की, तामें लागै आगि ;
वृंदावन के स्वपच की जूठनि खैए माँगि।
सुएरै मेवा सनत के, मिथ्या भोग-विलास ;
वृंदावन के स्वपच की जूठनि खैए व्यास।
वृंदावन के स्वपच को रहिए सेवक होय ;
तासों भेद न कीजिए, पीजे पद-रज धोय।
व्यास कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ;
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलैं न तिनके सीस।

इनमें आजकल आप भले ही अतिशयोक्ति का अनुभव करें, किंतु शुक्लजी की निर्मल आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिंब आपके सामने है। वास्तव मे वे नरपुंगव हैं, जिन्हें व्रज में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त है, धन्य हैं। शुक्लजी की बानियों, साखियों और पदों से यह स्पष्ट झलक आती है कि वह सच्चे मन से एक व्रत के व्रती थे, और उसे आपने अंत समय तक बड़ी ही ख़ूबी से निबाहा। आपका उज्ज्वल हृदय छल-कपट से कोसों दूर था। सुनते हैं, एक बार रासमंडल में श्रीकृष्णजी का नूपुर टूट गया। आपने तुरंत अपना जनेऊ तोड़कर उससे श्रीकृष्णजी का नूपुर बाँध दिया। यह देखकर कोरे कर्मठ ब्राह्मण आपसे अधिक रुष्ट हुए, किंतु आपको उसकी कहाँ चिंता थी, आपकी तो लगन ही दूसरी थी, फिर भी आपने एक पद गाकर ब्राह्मणत्व को सिद्ध करते हुए उन लोगों को सचेत कर दिया। वह पद यह है—

रसिक अनन्य हमारी जाति ;
कुलदेवी राधा, बरसानौ खेरौ[१] ब्रजबासिन सों पाँति।
गोत गुपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि[२], हरि-मंदिर भाल[३] ;
हरिगुन नाम वेद धुनि सुनियत, मूँज पखावज, कुस करताल[४]।

---

१ बरसानौ खेरौ=निकास खेड़ा बरसाना है। २ सिखा सिखंडि=मोर-पंख ही शिखा है। ३ हरि-मंदिर भाल=तिलक-युक्त मस्तक भगवान् का मंदिर है। ४ कुस करताल=कीर्तन में ताली बजाना कुश हैं।

साखा जमुना, हरि लीला, षटकर्म१ प्रसाद प्रान धन रास ;
सेवा२ बिधि निषेध जड़३ संगति वृत्ति सदा वृंदावन वास।
सुस्मृति४ भागवत कृष्ण-नाम संध्या-तर्पन गायत्री-जाप५ ;
बंसी रिषि६ जजमान कल्पतरु-व्यास न देत असीस सराप७।

पाठक देखें, इससे शुक्लजी की उच्च मनोवृत्ति का कितना अच्छा मर्म मिलता है। तल्लीनता का कैसा सजीव उदाहरण है। कोरे आडंबरियों का कैसा मुँहतोड़ उत्तर है।

शुक्लजी अपने गुरु के अनन्य भक्त थे। उनकी गुरु-भक्ति की प्रशंसा में हम स्वयं कुछ न कहकर शुक्लजी ही के शब्दों में लिखते हैं। देखिए, कैसे सच्चे हृदयोद्गार हैं—

हुतो रस रसिकन को आधार ;
बिन हरिबंसहिं सरस रीति को, कापै चलि है भार।
को राधा दुलरावै गावै, वचन सुनावै चार ;
वृंदावन की सहज माधुरी, कहि है कौन उदार।
पद-रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार ;
बड़ौ अभाग अनन्य सभा को उठिगो ठाट सिंगार।
जिन बिन दिन छिन जुग सम बीतत, सहज रूप आगार ;
'व्यास' एक कुल-कुमुद-चंद बिनु उडगन जूँठी थार।

---

१ षटकर्म = ब्राह्मणों के छः कर्म अर्थात् वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और लेना। २ सेवा = भगवान् की या संतों की सेवा। ३ जड़ = मूर्ख, हरि-विमुख। ४ सुस्मृति = स्मृति, धर्म-शास्त्र-संबंधी पुस्तकें। ५ गायत्री-जाप = हरि-नाम-स्मरण ही गायत्री का जाप है। ६ रिषि = ऋषि। ७ सराप = श्राप, शाप।

देखिए, नील सखीजी ने भी शुक्लजी के लिये क्या कहा है—

जय जय बिसद व्यास की बानी;
मूलाधार इष्ट रसमय, उतकर्ष भक्ति रस - सानी।
लोक वेद भेदन ते न्यारी, प्यारी मधुर कहानी;
स्वादिल सुचि - रुचि उपजै पावत, मृदु मनसा न अघानी।
सक्ति अमोघ विमुख भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानी;
मत्त मधुप रसिकन के मन की रस-रंजित रजधानी।
सखी रूप नवनीत उपासन, अमृत निकास्यो आनी;
'नील सखी' प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथा-मथानी।

कविवर नाभादासजी के भी आपके प्रति जो हृदयोद्गार हैं, उन्हें भी देखिए—

काहू के आराध्य मच्छ कच्छ सूकर नरहरि;
बावन परसाधरन सेतु बंधनहु सैल करि।
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लाए;
सुकुल समोखन - सुवन - अचुत गोत्री जु लड़ाए।
नौ गुनो तोरि नूपुर गुह्यो, महत सभा मधि रास के;
उत्कर्ष तिलक अरु दाम को, भक्त इष्ट अति व्यास के।

ओड़छे में आप तत्कालीन ओड़छा-नरेश महाराजा मधुकरशाह के राजगुरु थे। वहाँ पर आपका हर प्रकार मान-सम्मान था, फिर भी आपको ब्रजमंडल से इतना प्रेम था कि आप अपनी वह सब संपत्ति छोड़कर वृंदावन चले गए थे। सुनते हैं, एक बार महाराज मधुकरशाह आपको

लेने के लिये वृंदावन गए थे। किंतु आप व्रजमंडल की तपोभूमि को छोड़ने को उद्यत नही हुए। उस समय जो पद आपने गाया था, वह भी देखने योग्य है। आप कहते हैं—

> वृंदाबन के, रूख हमारे मात-पिता-सुत बन्ध;
> गुरु गोबिंद साधु गति-मति-सुख, फल-फूलनि की गंध।
> इनहिं पीठि दै अनत दीठि करि सो अंधन में अंध;
> 'व्यास' इनहिं छोड़ै औ छुड़ावै, ताको परियो कंध।

आपके तीन पुत्र थे, और तीनो महात्मा और कवि थे।

आपके ग्रंथों की नामावली ऊपर कही जा चुकी है। मुझे आपका कोई ग्रंथ देखने को नही मिल सका है। आपका एक ८०० पदों का हस्त-लिखित संग्रह 'श्रीवियोगीहरि'जी के पास है; उसमें आपके सिद्धांती तथा विहार-संबंधी पद हैं। इसमें आपके १४५ दोहे भी हैं, जो साखियों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सिद्धांती पदों और साखियों में वैराग्य, ज्ञान और अनन्य भक्ति का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया गया है। पाखंडियों को आपने खूब ही खरी-खरी बातें सुनाई हैं। विहार के पद कितने ललित और भाव-पूर्ण हैं, यह पाठक स्वयं देखकर अनुमान कर लेंगे। आपकी कविता सरस, मनोहारिणी और भावों से भरी हुई होती थी।

सिद्धांत के पद

(सारंग)

उदाहरण—

वृंदावन की सोभा देखे मेरे नैन सिरात१ ;
कुंज निकुंज पुंज सुख बरषत, हरषत सबको गात।
राधामोहन के निज मंदिर महाप्रलय नहिं जात ;
ब्रह्मा तें उपज्यौ न, अखंडित कबहूँ नाहिं नसात।
फनि२ पर रवि तरि३ नहिं विराट४ महँ नहिं संध्या नहिं प्रात ;
माया काल-रहित नित नूतन सदा फूल-फल-पात।
निरगुन-सगुन ब्रह्म तैं न्यारो विहरत सदा सुहात ;
'व्यास' विलास रास अद्भुत गति निगम अगोचर बात५ ॥ १ ॥

(देवगंधार)

श्रीवृंदावन देखत नैन सिरात ;
इन मेरे लोभी नैननि में सोभा सिंधु न मात६।
संतत सरद बसंत बेलि-द्रुम फूलत-फूलत रात७ ;
नंदनँदन बृषभानुनंदिनी मानहुँ मिलि मुसक्यात।
ताल, तमाल, रसाल, साल पल-पल चमकत८ फल-पात९ ;
मनहुँ गौर मुख विधुकर१० रंजित सोभित साँवल गात।

---

१ सिरात = प्रसन्न होते हैं। २फनि पर नहिं = शेषनाग के ऊपर नहीं है। ३ रवि तरि नहिं = सूर के नीचे अथवा सौर जगत् में नहीं है। ४ विराट = ब्राह्मण। ५ बात = रहस्य।

वास्तव में बड़ा ही मनोहर वर्णन है। सारांश यह कि वृंदावन अप्राकृत है, प्राकृत नहीं।

६ मात=(अमात) समाता है। ७रात = रहत, रहता है। ८ चमकत = झिलमिल-झिलमिल हो रहे हैं। ९ पात = पत्ते। १० विधुकर = चंद्रमा की किरणें।

किंसुक नवल नवीन माधुरी विकसति हिय उरभात ;
मनहुँ अबीर गुलाल भरे तन दंपति अति अकुलात।
बैठे अलि अरबिंद बिंद१ पर मुख मकरंद चुचात २ ;
मनहुँ स्याम कुच कर गहि पीवत अधर सुधा बलि जात।
नाचत मोर कोकिला गावत कीर३ चकोर सुहात ;
मनहुँ रास रस नाचैं दोऊ बिछुर न जानै प्रात।
त्रिभुवन को कवि कहि न सकत कछु अद्भुत छबि की बात ;
'व्यास' बचन नहिं मुख कहि आवै, ज्यों गूँगो गुर४ खात ॥ २।

(धनाश्री)

हरिदासन के निकट न आवत, प्रेत पितर जमदूत ;
जोगी भोगी संन्यासी अरु पंडित मुंडित धूत५।
ग्रह गनेस६ सुरेस सिवा सिव डर करि भागत भूत ;
सिधि निधि बिधि निषेध७ हरि नामहिं डरपत रहत कुपूत।
सुख-दुख पाप-पुन्य मायामय ईतिं८ भीति आकूत९ ;
सबकी आस-त्रास तजि व्यासहि भावत भगत सपूत ॥ ३ ॥

(सारंग)

धर्म दुरयौ कलिराज दिखाई ;
कीनों प्रगट प्रताप आपनौ, सब बिपरीति चलाई।

---

१ अरबिंद बिंद = कमल का फूल। २ चुचात = चू रहा है। ३ कीर=तोता। ४ गुर = गुड़।

"बैठे अलि अरबिंद...बलिजात" क्या ही सुंदर रूपक और उपमा है। पढ़कर हृदय मुग्ध हो जाता है।

५ धूत = धूर्त अथवा पाखंडी अवधूत। ६ गनेस = गणेश। ७ विधि निषेध = यह करना चाहिए और यह न करना चाहिए। इस प्रकार के धर्माधर्म। ८ ईति = उपद्रव जो छः प्रकार के हैं। ९ आकूत = मतलब।

धन भौ१ मीत धर्म भौ वैरी पतितन सों हितवाई२ ;
जोगी-जती, तपी-संन्यासी व्रत३ छाँड्यौ अकुलाई ।
बरनास्रम की कौन चलावै, संतन हू में आई ;
देखत संत भयानक लागत, भावते४ ससुर-जमाई ।
संपत सुकृत सनेह मान चित-ग्रह व्यौहार बड़ाई ;
कियो कुसंत्री लोभ आपुनो महा मोह जु सहाई ।
काम-क्रोध, मद-मोह-मत्सरा५ दीन्हीं देस दुहाई ;
दान लेन को बड़े पातकी-मचलन६ को बंभनाई७ ।
जरन-मरन को बड़े तामसी८, बारौं कोटि कसाई ;
उपदेसन को गुरू गुसाईं आचरनै अधमाई ।
'व्यास' दास के सुकृत साँकरे में गोपाल सहाई ॥ ४ ॥

(सारंग)

कहत-सुनत बहुतै९ दिन बीते, भक्ति न मन में आई ;
स्याम-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कहि कौने रति१० पाई ।
अपने-अपने मत मद भूले, करत आपनी भाई११ ;
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं बहुतन में प्रभुताई ।
मैं समझी सब काहु न समझा मैं सबहिन समझाई ;
भोरे भक्त१२ हुते१३ सब तब के१४ हमरे बहु चतुराई ।

---

१ भौ = भयो, हुआ । २ हितवाई = मित्रता । ३ व्रत = अपना-अपना ध्येय, कार्य, कर्म । ४ भावते = अच्छे लगते हैं । ५ मत्सरा = मत्सर । ६ मचलन को = हठकर खीझने को । ७ बंभनाई = ब्राह्मणपन । ८ तामसी = क्रोधी ।

वास्तव में कितना सच्चा और सुंदर चित्र चित्रित किया है कि देखते ही बनता है ।

९ बहुतै = बहुत ही । १० रति = अनुरक्ति, भक्ति । ११ आपनी भाई = स्वेच्छाचारिता से, मनमानी । १२ भोरे भक्त = सीधे साधू, कोरे साधू, मूर्ख । १३ हुते = थे । १४ तब के = उस समय के, पुराने ।

हमहीं अति परिपक भए औरनि कै सबै कचाई।
कहनि सुहेली[1] रहनि दुहेली[2] बातनि बहुत बड़ाई।
हरि मंदिर माला धरि गुरु करि जीवन के सुखदाई;
दया-दीनता दास-भाव बिनु मिलैं न 'व्यास' कन्हाई। ५ ॥

(साखी)

'व्यास' न कथनी[3] काम की, करनी[4] है इक सार।
भक्ति-बिना पंडित वृथा, ज्यों चंदन खर भार ॥ १ ॥
व्यास रसिक सब चल बसे, नीरस रहे कुबंस[5]।
बगठग[6] की संगति भई, परिहरि गए जु हंस ॥ २ ॥
श्रीराधावर ध्याय कै, और ध्याइए कौन।
'व्यासहिं' देत बनै नहीं, बरी-बरी[7] प्रति लौन ॥ ३ ॥
'व्यास' बड़ाई लोक की, कूकर की पहिचानि।
प्रीति करे मुख चाट ही, बैर करे तनु हानि[8] ॥ ४ ॥
'व्यास' आस करि माँगिबौ, हरिहू हरुवौ[9] होय।
बावन ह्वै बलि के गए, यह जानत सब कोय ॥ ५ ॥

---

१ कहनि सुहेली=कहना सुंदर है। २ रहनि दुहेली=रहना दो प्रकार का है, कपट भाव से अभिप्राय है, कहना कुछ और करना कुछ। सुंदर भाव हैं। ३ कथनी = कोरी बातें, बकवाद। ४ करनी = कर्म, कर्तव्य, वेदोक्त मार्ग पर चलना। ५ कुबंस = बुरे बाँस, कपूत, अभक्त। ६ बगठग = बगुला भगत, ढोंगी। ७ बरी-बरी प्रति लौन = एक-एक बड़ी पर नमक देते नहीं बनता। कितना भाव-पूर्ण है ! ८ कितना सजीव वर्णन है, देखिए। ९ हरुवौ = हलका, तिरस्कृत।

नैन न मूँदे ध्यान को, किए न अंगनन्यास१ ।
नाचि गाय स्यामहिं मिले, बसि बृंदाबन 'ब्यास' ॥ ६ ॥
पूत सूत को एक सग, भक्त भयो सो पूत ।
'ब्यास' बहिरमुख२ जो भयो, सो सुत सूत कपूत ॥ ७ ॥
'ब्यास' दास से पवित सों, भृगु३ को पलटौ लेहु ।
उन उर दीनो एक पग, तुम दोऊ पग देहु ॥ ८ ॥
मो मन अटक्यो स्याम सों, गड़्यो रूप में जाय ।
चहले४ परि निकसै नहीं, मनो दूबरी५ गाय ॥ ९ ॥
'ब्यास' दीनता के सुखहि, कहा जाने जग मंद६ ।
दीन भए ते मिलत हैं, दीनबंधु सुखकंद ॥ १० ॥

बिहार के पद

(कमोद)

कुंज-कुंज प्रति रवि बृंदावन, द्रुम-द्रुम प्रति रति-रंग ;
बेलि-बेलि प्रति केलि फूल, प्रति फल, प्रति बिमल७ बिहंग ।

---

१ अंगनन्यास=संध्या के अंगन्यास । कैसा सुलभ मार्ग दिखा दिया, धन्य है । २ बहिरमुख=विषयी, सांसारिक, बाहर को । अनोखी सूझ है । ३ भृगु =भृगु मुनि, जिन्होंने विष्णु भगवान् को लात मारी थी, और भगवान् ने जिनके चरण पकड़कर कहा था—नाथ ! आपके कमल-रूपी चरणों में कहीं आघात तो नहीं पहुँचा है। क्षमा का कितना सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । शुक्लजी कहते हैं, प्रभो ! उसका बदला मुझसे अपने दोनो चरण मेरे हृदय पर रखकर चुका लीजिए, क्योंकि मैं उन्हीं भृगु का वंशज या सजातीय हूँ । क्या ही बढ़िया उपज है । बलिहारी है । ४ चहले = दलदल । ५ दूबरी = दुबली । ख़ूब सर्वोत्कृष्ट सूझ है । ६ जग मंद=संसार में मूर्ख, अज्ञानी । ७ बिमल=दिव्य ।

कंठ-कंठ प्रति राग रागिनी, सुर१ प्रति तान-तरंग ;
गौर स्याम प्रति मंद हास, नैननि प्रति सैन२ अभंग३ ।
रास-बिलास पुलिन४ प्रति नागर, प्रति नागर कल संग ;
रूप-रूप प्रति गुन सागर, सहचरि प्रति ताल मृदंग ।
अधरन प्रति मधु५, गंडनि प्रति विधु, उर प्रति उरज६ उतंग ;
'व्यास' स्वामिनी राधहि सेवत स्याम धरें बहु रंग७ ॥ १ ॥

(सारँग)

वृंदावन कुंज-कुंज केलि - वेलि फूली ;
कुंद कुसुम चंद नलिन विद्रुम छबि भूली ।
मधुकर सुक-पिक अनार मृगजन सानुकूली ;
अद्भुत घन मंडल पर दामिनि - सी झूली९ ।
'व्यास' दासि रंग रासि देखि देह भूली१० ॥ २ ॥

(बिहाग)

गौर११ मुख चंद्रमा की भाँति ;
सदा उदित वृंदावन प्रमुदित-कुमुदित वल्लभ१२ जाति ।
नील निचोल१३ सुहार गगन में लसत तारिका-पाँति१४ ;
झलकत अलक दसन दुति दमकत, मनहुँ किरन कुल काँति ।
गंड कोल पर स्रम-जल ओसन अधरन सुधा चुचाति१५ ;
मोहन की रसना जु चकोरी, पीवत रस न अघाति ।

---

१ सुर=स्वर । २ सैन=कटाक्ष । ३ अभंग=पूरा । ४ पुलिन = तट । ५ मधु = रस । ६ उरज = स्तन । ७ रंग = रूप । ८ मृगज = कस्तूरी । ९ झूली = उदित, प्रकाशित । १० देह भूली = देहाभिमान नष्ट हो गया । ११ गौर = गोरा । १२ वल्लभ = प्रिय । १३ निचोल = वस्त्र । १४ तारिका-पाँति = ताराओं की पंक्ति । १५ चुचाति = चूती है ।

हास कला कल सरद सुहाई, तनु छबि चाँदनि राति ;
नैन कुरंग निकट सिंहनि उर, उन पर अति अनखाति।
नाह निकट नहिं राहु बिरह डरपत सोभा न समाति ;
देखत पाप न रहत व्यास दासी तन ताप बुझाति[1] ॥ ३ ॥

(मलार)

आजु कछु कुंजन में बरषा-सी ;
बादल दल[2] में देखि सखी री, चमकति है चपला-सी।
नान्ही नान्ही बूँदनि कछु धुरवा[3] से पवन बहै सुखरासी ;
मंद-मंद गरजन-सी सुनियतु, नाचत मोर सभा-सी।
इंद्रधनुष बग-पंगति[4] डोलति, बोलत कोक कला-सी ;
इंद्रबधू[5] छबि छाइ रही, मनु गिरि पर अरुन घटा-सी।
उमगि महीरुह[6]-सी महि फूली[7]-भूली मृग माला-सी ;
रटति 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस[8] पीवत ही प्यासी ॥ ४ ॥

---

१ बुझाति = ठंढी होती है, दूर हो जाती है।
चंद्रमा का क्या ही सुंदर और सांगोपांग वर्णन है।
२ बादल दल = घन घटाएँ। ३ धुरवा = मेघ; बादल।
४ पंगति = पंक्ति। ५ इंद्रबधू = बीरबहूटी। ६ महीरुह = वृक्ष।
७ फूली = प्रसन्नता से फूल उठी, हरी-भरी हो गई। ८ रस = आनंदामृत।
देखिए, प्रकृति का कितना स्वाभाविक वर्णन है।

श्रीस्वामी हरिदासजी

स्वामी हरिदासजी के जन्म-संवत् का तो ठीक-ठीक पता नहीं चलता है, किंतु आपके ग्रंथों के रचना-काल के देखने से यह जान पड़ता है कि आपका जन्म वि० १५६५ के लगभग हुआ होगा। जार्ज ग्रियर्सन ने भी आपका रचना-काल सन् १५६० ई० लिखा है, इससे भी उपर्युक्त बात ही सिद्ध होती है। आप कोल के निकट हरिदासपुर-नामक ग्राम के निवासी थे। प्रथम आप वृंदावन में और फिर निधुवन में रहे। माननीय मिश्रबंधुओं ने आपके सनाढ्य ब्राह्मण होने में शंका की है, और मुल्तान के निकट उच्चगाँव का निवासी लिखते हुए आपको सारस्वत ब्राह्मण बतलाया है। किंतु 'भक्तसिंधु' में स्पष्टतया आपको सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है। इसके अतिरिक्त आपके शिष्य-परंपरावाले श्रीसहचरिशरणजी भी आपको सनाढ्य ही लिखते हैं। देखिए—

"श्रीस्वामी हरिदास रसिक - सिरमौर अनीहा ;
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा।
गुरु अनुकंपा मिल्यो ललित निधिबन समाज के ;
सत्तर लौं तह बैठि गने गुन प्रियालाल के।"

(भगवत रसिक की वाणी पृष्ठ १२१)

उसी छंद के आगे आप फिर लिखते हैं—

"बीठल बिपुल सनाढ्य आढ्य धन धर्मपताका ;
श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका ।"

उपर्युक्त अवतरणों से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि आप सनाढ्य ब्राह्मण थे, और संशय के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। बिपुल बिट्ठलजी आपके मामा तथा प्रधान शिष्य थे।

स्वामीजी ऊँचे दर्जे के महात्मा और सिद्धहस्त सुकवि थे। आपकी विरक्ति और भक्ति की बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है। आप अष्ट प्रहर श्रीराधाकृष्ण के नित्य विहार में तल्लीन रहा करते थे। सुनते हैं, एक बार एक भक्त ने इत्र की एक शीशी आपको भेंट की। स्वामीजी ने उस शीशी को लेकर तत्क्षण पृथ्वी पर उँड़ेल दिया। भक्त ने आश्चर्यान्वित होकर जब कारण पूछा, तो आपने बतलाया कि "आज मैं श्रीविहारीजी के साथ होली खेल रहा था, तुम अच्छे मौक़े पर इत्र लाए, देखो, काम आ गया। मैंने तुम्हारी शीशी को श्रीविहारीजी पर उँड़ेला है, पृथ्वी पर नहीं। विश्वास न हो, तो जाकर देख आओ।" सचमुच ही श्रीविहारीजी के कपड़े इत्र से सराबोर पाए गए। पाठकों को इससे आपकी अटल भक्ति और सामर्थ्य का भले प्रकार आभास मिलता होगा। आजकल हम तर्क की कसौटी पर कसकर इस पर विश्वास करें या न करें, किंतु यह मानना पड़ेगा कि आप वास्तव ही में बहुत

ही ऊँचे दर्जे के महात्मा थे। आपका व्यक्तित्व कितना था, उसको भी श्रीनाभादासजी के ही शब्दों में ऊँचा देखिए—

"जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंजबिहारी;
अवलोकत नित रहैं केलि सुख के अधिकारी।
गान-कला-गंधर्व स्याम स्यामा को तोषै;
उत्तम भोग लगाइ मोर मरकट तिमि पोषै।
नित नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आशा जास की;
अस आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की।"

पाठक! देखा आपके व्यक्तित्व को। आपके दर्शनों के लिये नित्य ही राजा-महाराजा खड़े रहते थे। क्या यह विना किसी विशेष तपस्या, विना किसी असाधारण गुण के कभी संभव है? कदापि नहीं, आप संगीत के बड़े भारी आचार्य माने जाते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन के आप गुरु थे। आपका गाना सुनने के लिये एक बार बादशाह अकबर वेष बदलकर तानसेन के साथ आपके यहाँ गए थे; तानसेन ने जान-बूझकर गाने में गलती कर दी, तब हरिदासजी ने शुद्ध करके गाया, और इस प्रकार अकबर का मनोरथ पूरा हुआ। विना इस युक्ति के आपका गाना सुनना अकबर को नसीब नहीं होता। गाना सुनने के पश्चात् अकबर ने बहुत-कुछ आपको भेंट देनी चाही, किंतु आपने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। यह आपके त्याग और सच्ची निःस्पृहता का ज्वलंत प्रमाण है।

वैष्णवों की 'टट्टी संप्रदाय' का श्रीगणेश आप ही ने किया था। कोई-कोई आपको ललिता सखी का अवतार मानते हैं। बाल ब्रह्मचारी होने के कारण आपका भव्य वेष पूर्णतया तपोनिष्ठ ऋषि-तुल्य था। आपके अनेकानेक शिष्य थे। इनमें से मुख्य हैं—विपुल विट्ठल, बिहारिनिदास, सरसदास, नवलदास, नरहरिदास, चौबे ललितकिशोरी आदि।

आपने संस्कृत और हिंदी दोनो में कविता की है। हमें आपकी संस्कृत की कविता के उदाहरण नहीं मिल सके हैं। जार्ज ग्रियर्सन* ने आपकी संस्कृत की कविता जयदेव के टक्कर की मानी है, और हिंदी की कविता में सूरदास और तुलसीदास के पश्चात् आप ही को स्थान दिया है, और सचमुच ही यदि ध्यान-पूर्वक आपकी कविताओं का मनन किया जाय, तो उपर्युक्त कथन में अतिशयोक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। आपकी कविता में यमक, अनुप्रास आदि की भरमार भले ही न हो, किंतु उसके अंदर वह मिठास है, जिसे ज्यों-ज्यों कंठगत करते जाइए, हृदय मुग्ध हो जाता है। वह चमत्कार है, जिसे पढ़ते ही हृदय-कमल खिल उठता है, मार्मिकता और मनोहरता का सजीव दृश्य

---

* ..His sanskrit works are considered equally good with those of JAYADEVA and his Vernacular poems rank next after those of SURDAS and TULSIDAS .

Page 60. The Modern Vernacular literature of Hindustan

आँखों के सामने नाचने लगता है, भक्तगण गाते-गाते जिसमें तल्लीन हो सुध-बुध भूल जाते हैं। माननीय 'मिश्र-बंधुओं' ने ऐसे सुकवि का केवल एक ही पद अपनी विख्यात पुस्तक 'मिश्रबंधु-विनोद' में दिया है, जो कि आपकी विद्वत्ता तथा कीर्ति प्रदर्शन में सर्वथा अपर्याप्त है।

स्वामीजी ने सिद्धांत और शृंगार दोनों पर ही पदावली लिखी है। सिद्धांती १९ तथा शृंगार-संबंधी ११० पद मिलते हैं। आपकी विहार-विषयक पदावली को 'केलि-माला' भी कहते हैं। आपने साधारण सिद्धांत, रास के पद और बानी आदि ग्रंथों की रचना की है। आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

(सिद्धांत)

(विभास)

ज्यौं-ही-ज्यौं ही तुम राखत हौ
त्यौं-ही-त्यौं ही रहियत हैं हो हरि।
और अचरचै पाइ धरौं
सु तौ कहौं कौन के पैंड भरि[1]।
जद्यपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं
कैसे करि सकौं जो तुम राखौ पकरि।
कहि हरिदास पिंजरा के जनावर लौं
तरफराइ रह्यो उड़िबे को कितोउ[2] करि॥ १॥

---

१ पैंड भरि = बल से, आधार से। २ कितोउ = कितना भी। इस पद में जीव की परतंत्रता तथा भगवत्-कृपा से मुक्ति दिखलाई गई है।

(विभास)

काहू को बस नाहिं तुम्हारी कृपातें ;
सब होय बिहारी-बिहारिनि१ ।
और मिथ्या प्रपंच काहे को भाषियै ;
सो तो है हारनि२ ।
जाहि तुमसों हित ताहि तुम हित करौ ;
सब सुख - कारनि ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी ;
प्रानिन के आधारनि ॥ २ ॥

(आसावरी)

हित तौ कीजै कमल-नैन ३ सौं ,
जा हित के आगे और हित लागौ फीको ।
कै हित कीजै साधु संगति सौं ;
जावै कलमष४ जी को ।
हरि को हित ऐसो जैसो रंग मजीठ५ ;
संसार-हित कंसूभि६ दिन दुती७ को ।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सौं ;
और न निबाहु जानि जी को ॥ ३ ॥

---

१ बिहारी-बिहारिनि = श्रीकृष्ण और राधिका । २ हारनि = हार, वृथा परिश्रम ।

इसमें भी जीव के पुरुषार्थ की हीनता और भगवान् की कृपा की प्रधानता कही है ।

३ कमल-नैन = श्रीकृष्ण । ४ कलमष = पाप (कल्मष) । ५ मजीठ = मजीठ का रंग कभी छूटता ही नहीं—पक्का रंग । ६ कंसूभि = कच्चा लाल रंग । ७ दिन दुती को = दो दिन का, क्षणिक ।

(आसावरी)

तिनका[1] बयारि[2] के बस ;
ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस[3] ।
ब्रह्म-लोक सिव-लोक और लोक अस ;
कहि हरिदास बिचारि देख्यो बिना विहारी नाहिं जस ॥ ४ ॥

(कल्यान)

जौ लौं जीवै तौ लौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि[4] ;
दिवस चारि को हला भला[5] तू कहा लेइगो लादि ।
माया-मद, गुन-मद, जोबन-मद भूल्यौ नगर विवादि ;
कहि हरिदास लोभ चरपट भयो काहे की लागै फिरादि[6] ॥ ५ ॥

(कल्यान)

प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे, कैसे लागै घाट ;
बेकारयौ दै जानि कहावत, जानिपनों[7] की कहा परी बाट ।
काहू को सर परै न सूधो, मारत गाल[8] गली-गली हाट ;
कहि हरिदास विहारिहिं जानौ तकौ न औघट घाट ॥ ६ ॥

(बिहाग)

गहौ मन सब रस को रस सार ;
लोक वेद कुल करमै तजिए, भजिए नित्य विहार[9] ।

---

१ तिनका = तृण; यहाँ जीव से आशय है । २ बयारि = वायु; यहाँ भगवत् प्रेरणा से तात्पर्य है । ३ आपने रस = अपनी इच्छा से । ४ बादि = वृथा । ५ हला भला = मौज, चैनचाम । ६ फिरादि=(फ़र्याद) विनती । ७ जानिपनों = ज्ञान । ८ मारत गाल = बढ़-बढ़कर बातें बनाता है । ९ नित्य विहार = निरंतर एकरस बहनेवाला श्रीराधाकृष्ण का रास-रस ।

गृह-कामिनि१ कंचन-धन त्यागो, सुमिरो श्याम उदार२ ;
कहि हरिदास रीति संतन की, गादी को अधिकार ॥ ७ ॥

केलि-माला

(कान्हरा)

प्यारी३, जैसे तेरी आँखिन में हौं अपनपौ ;
देखत तैसे तुम देखति हौ किधौं नाहीं ।
हौं तोसौं कहौं प्यारे४, आँखि मूँदि ;
रहौं लाल५ निकसि कहाँ जाहीं ।
मोकौं निकसिबे६ कौं ठौर बताओ ;
साँची कहौं बलि जाउँ लागौं पाहीं७ ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा ;
तुमहिं देख्यो चाहत और सुख लागत नाहीं ॥ ८ ॥

(कान्हरा)

आजु तृन टूटत है८ री ललित त्रिभंगी९ पर ;
चरन - चरन पर मुरली अधर पर ।
चितवनि बंक१० छबीली भुव पर ;
चलहु न बेगि११ राधिका पिय पै१२ ।
जो भई चाहति हौ सर्वोपर१३ ;

---

१ कामिनि = स्त्री । २ उदार = दयालु । ३ प्यारी = श्रीराधिकाजी । ४ प्यारे = श्रीकृष्णजी । ५ लाल = श्रीकृष्णजी । ६ निकसिबे = निकलने को । ७ लागौं पाहीं = पैरों पड़ता हूँ । प्रिया-प्रीतम श्रीराधाकृष्ण की एकरूपता का क्या ही भाव-पूर्ण वर्णन है । ८ तृन टूटत है=बलिहारी है । ९ त्रिभंगी = बाँकेबिहारी श्रीकृष्ण । १० बंक = बाँकी, तिरछी । ११ बेगि = शीघ्र, जल्दी । १२ पै = पास । १३ सर्वोपर = सबके ऊपर ।

श्रीहरिदास समय जब नीकौ;
हिलि-मिलि केलि अटल रति भू पर ॥ ६ ॥

(कान्हरा)

अद्भुत गति उपजति अति नाचत;
दोऊ मंडल कुँवर किशोरी।
सकल सुगंध अंग भरि भोरी;
पिय नृत्यति मुसुकवि मुख मोरी।
ताल धरैं बनिता मृदंग;
चंद्रा गति घात१ बजैं थोरी-थोरी।
मधुर भाव, भाषा बिचित्र;
अति ललित गीत गावैं चित चोरी।
श्रीवृंदावन फूलनि फूल्यो;
पूरन ससि समीर गति थोरी२।
गति बिलास रस-हास परस्पर;
भूतल अद्भुत जोरी।
श्रीजमुना-जल बिथकित३ पुहुपनि,
छबि रति पति डारत तृन तोरी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा;
पुंज बिहारीजू को रस४ रसना कहै कोरी ॥१०॥

(कान्हरा)

सोई तो बचन मो सौं मानि;
तैं मेरो लाल मोह्योरी साँवरौ।

---

१ चंद्रा गति घात = मृदंग की एक थाप। २ समीर गति थोरी = मंद-मंद वायु। ३ बिथकित = स्थिर हो गया। ४ रस = आनंद।

कितना भाव-पूर्ण और प्राकृतिक वर्णन है।

नव निकुंज सुख-पुंज१ महल में;
सुबस२ बसौ यह गाँवरो।
नव-नव३ लाड़ लड़ाइ लाड़िली;
नहिं-नहिं यह ब्रज बावरो४।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा;
कुंजबिहारी पै वारूँगी५ मालती-भावरो॥११॥

(केदारा)

प्यारीजू, हम तुम दोउ;
एक कुंज के सखा रूठे६ क्यों बनैं।
इहाँ कोऊ हितू मेरो न तेरो;
जो यह पीर७ जनैं८।
हौं तेरो बसीठ९ तू मेरी;
और न बीच सनैं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा;
कुंजबिहारी कहत जु प्रीतिपनैं१० ॥१२॥

(बिलावल)

स्यामा-स्याम आवत कुंज-महल में रँगमगे११;
मरगजि१२ साज सिथिल कटि किंकिनि१३।
अरुन नैन चहुँजाम१४ जगे;
सब सखि गावति बीन बजावति।

---

१ पुंज = समूह। २ सुबस = सुख से, स्वतंत्रता से, अपने आप। ३नव-नव = नए-नए। ४ बावरो = पागल। ५ वारूँगी = निछावर करूँगी। ६रूठे = नाराज़ हो जाना, अन्यमनस्क हो जाना। ७पीर = कष्ट, दुख। ८ जनैं = जाने। ९ बसीठ = दूत। १० प्रीतिपनैं = प्रेम प्रण को। ११ रँगमगे = झूमते हुए। १२ मरगजि = मैली। १३ कटि किंकिनि = कमर की करधौंनी। १४चहुँजाम = चारों पहर, सारी रात।

श्रीस्वामी हरिदासजी

सब सुख मिधि संगीत पग;
श्रीहरिदास के स्वामी स्याम,
कुंजबिहारी के कटाच्छ सों कोटिन काम दगे। ॥ १२

दगे = जल गए।

श्रीपं० गोविंद स्वामीजी

पं० गोविद स्वामीजी का जन्म वि० सं० १५९५ के लगभग आंतरी मे हुआ था। पश्चात् आप महाबन मे रहने लगे, और लोगों को शिक्षा-दीक्षा देने लगे थे।

अंत में आप भी स्वयं स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य हो गए, और तब से गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी की सेवा में रहने लगे।

आप अच्छे कवि होने के अतिरिक्त गान-विद्या में भी बहुत ही निपुण थे। यहाँ तक कि संसार-प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन भी आपके गाने पर मोहित हो जाते थे।

आपने गोवर्द्धन के पास कदंब का एक बाग़ लगवाया था, जो अब तक वर्तमान है और 'गोविद स्वामी की कदब खंडी' कहलाता है।

आपका कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका। आपकी रचनाएँ प्रायः सुनने में आती हैं। स्फुट पद भी इधर-उधर देखे-सुने गए हैं। आपकी कविता सरस और मधुर होने के साथ-ही-साथ श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति में भरी हुई पाई जाती है, और गानेवाले तो उसे पढ़कर विह्वल ही हो जाते

हैं। आपकी कविता को अच्छे गायक ही सफलता-पूर्वक गा सकते हैं। आपका कविता-काल अनुमानतः सं० १६२३ वि० माना गया है।

आपकी सुंदर रचनाओं का उदाहरण निम्न-लिखित है। देखिए—

प्रात समै उठि जसुमति जननी
गिरिधर सुत को उबटि न्हवावति ;
करि शृंगार बसन-भूषन सजि—
फूलन रचि-रचि पाग बनावति।
छुटे बंद बागे[1] अति सोभित ;
बिच-बिच चोव अरगजा[2] लावति
सूथन[3] लाल फूँदना[4] सोभित ;
आजु की छबि कछु कहति न आवति।
विविध कुसुम[5] की माला उर धरि ;
श्रीकर मुरली वेत गहावति।
लै दरपन देखें श्रीमुख को ;
'गोविंद' प्रभु-चरननि सिर नावति।
आवत ललन पिया रँग-भीने ;
सिथिल अंग डगमगत चरन गति मोतिन हार उर चीने[6]।

---

१ बागे = वस्त्र विशेष। २ चोव अरगजा = सुगंधि विशेष। ३ सूथन = पायजामा। ४ फूँदना = धागे, रेशम आदि के बने हुए फूल। ५ विविध कुसुम = अनेक प्रकार के फूलों की माला। ६ मोतिन हार उर चीने = मोतियों के हार के हृदय पर चिह्न हैं।

पारिजात[1] मंदार[2]-माल लपटात मधुप मधु पीने ;
'गोविंद' प्रभु पियतहीं जाहु जहँ अधर[3] दसन[4] छत[5] कीने ।

---

१ पारिजात = देवतरु, देवताओं का वृक्ष, सुरद्रुम, मूँगा ।
२ मंदार = स्वर्ग का एक वृक्ष । ३ अधर = ओंठ । ४ दसन = दाँत ।
५ छत = निशान, चिह्न ।

श्रीपं० बिट्ठल-बिपुलजी

पं० बिट्ठल-विपुलजी का जन्म वि० सं० १५६६ के लगभग हुआ था। आप स्वामी हरिदासजी के मामा तथा उनके प्रधान शिष्य थे। आपके जन्म-स्थान और आस्पद आदि की बातें अभी अनिश्चित ही सी हैं।

स्वामी हरिदासजी की गुरु-परंपरा-वाले श्रीसहचरिशरणजी ने आपके संबंध में अपने 'ललित-प्रकाश'-नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है—

> बीठल-बिपुल सनाढ्य आढ्य1 घन धरमपताका ;
> श्रीगुरु अनुग2 अनन्य अनूपम जनु ससि राका3 ।
> बिपिन सुनिधिवन सघन जहाँ जाको मन अटक्यो4 ;
> ब्यासी5 की गनि आयु उदासी6 ह्वै चित भटक्यो ।

पहले आप मधुवन* के राजा के यहाँ रहते थे, पश्चात्

---

1 आढ्य = सपन्न । 2 अनुग = अनुगामी । 3 राका = रात्रि । 4 अटक्यो = अटक गया, बिंध गया, फँस गया । 5 ब्यासी = बियासी, ८२ । 6 उदासी = विरक्त ।

* George A. Grierson Esq ने भी यही लिखा है—"He was uncle and pupil of Hari Das. He

अपने भांजे उपर्युक्त स्वामीजी के आप शिष्य हुए, और फिर स्वामीजी के उत्तराधिकारी भी।

आपकी गुरु-भक्ति की बड़ी ही प्रशंसा सुनी जाती है। कहते हैं, आपने गुरु के मरने पर तुरंत अपनी आँखों में पट्टी बाँध ली थी, और फिर वह पट्टी स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने एक बार रास में आकर खोली थी। आपकी मृत्यु के संबंध में भी यही प्रसिद्ध है कि रास में आप ऐसे तल्लीन और प्रेमोन्मत्त हुए कि रास ही मे आपका देहावसान हो गया। और, वह संभवतः १६६२ वि० के पश्चात् हुआ होगा।

आपका कविता-काल सं० १६१५ वि० से माना जाता है। आपके किसी ग्रंथ विशेष का तो पता नहीं चलता है, किंतु आपके स्फुट पद राग-सागरोद्भव में मिलते हैं। माननीय मिश्रबंधुओं ने भी छत्रपुर में आपकी बानी१, जिसमें ४० पद हैं, देखी है।

---

attended the Court of Raja of Madhuban and many of his Verses are included in Rag."

'मिश्रबंधु-विनोद' और 'शिवसिंह-सरोज' में भी यही बात लिखी है।

१ 'मिश्र-बंधु-विनोद' प्रथम भाग, पृष्ठ २६९ देखिए।

बिट्ठल विपुल की बानी हमने छत्रपूर में देखी, वह प्रति संवत् १८७४ की लिखी हुई है।

शिवसिंह-सरोज के पृष्ठ ४५५ पर देखिए—

विपुल-बिट्ठल गोकुलस्थ श्रीस्वामी हरिदास के शिष्य सं० १५८०

आपकी कविता के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

सजनी नवल कुंज बन फूले ;
अलि-कुल संकुल[1] करत कुलाहल सौरभ[2] मनमथ मूले[3] ।
हरषि हिंडोरे रसिक रासवर जुगुल परस्पर झूले ;
'बिट्ठल-विपुल' विनोद देखि नभ देव विमानन भूले ॥ १ ॥

(पद)

प्रिया श्याम सँग जागी है ;
शोभित कनक कपोल ओप[4] पर
दसन छाप छबि लागी है ।
अधरन रंग छुटी अलकावलि[5]
सुरति रंग अनुरागी है ;
'विट्ठल - विपुल' कुंज की क्रीड़ा
काम - केलि - रस[6]-पागी है ॥ २ ॥

में उ० । इनके पद राग-सागरोद्भव में हैं । यह महाराज मधुवन में बहुधा रहा करते थे ।

१ अलि-कुल-संकुल = भौंरों के कुल का बड़ा समूह । अनेक भौंरों के झुंड । २ सौरभ = सुगंध । ३ मनमथ मूले = कामदेव उत्पन्न करनेवाली । ४ ओप = चमक, झलक । ५ अलकावलि = वेणी, घूँघर-वाले बाल । ६ काम-केलि-रस = प्यार करने के रस में, सुरत, केलि, मैथुन करने के रस में ।

श्रीपं० कल्याणजी मिश्र

पं० कल्याणजी मिश्र का जन्म वि० सं० १६३५ के लगभग, ओरछे में, हुआ था। आप जगत्प्रसिद्ध कवींद्र पं० केशवदासजी मिश्र के अनुज[1] थे। आप भारद्वाजगोत्रीय मिश्र थे। आपके पूर्वजों तथा वंश आदि के संबंध में 'सुकवि-सरोज' प्रथम भाग में विस्तार-पूर्वक लिखा जा चुका

---

१ कवींद्र केशवदासजी ने अपने कवि-प्रिया-नामक ग्रंथ में इस प्रकार वर्णन किया है—

जिनको मधुकरशाह नृप बहुत कियो सनमान ;
तिनके सुत बलभद्र बुध प्रकटे बुद्धि-निधान।
बालहि ते मधुशाह नृप तिनसों सुन्यो पुरान ;
तिनके सोदर द्वै भए केशवदास कल्यान।

(कविप्रिया)

महाकवि कल्याणजी के प्रपौत्र महाकवि हरिसेवकजी मिश्र अपने 'काम रूप कथा महाकाव्य'-नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखते हैं—

कृष्णदत्त सुत गुन जलधि, कासिनाथ परमान ;
तिनके सुत जु प्रसिद्ध हैं केसवदास कल्यान।

है, अतएव यहाँ उन्हीं बातों को फिर दुहराना निरर्थक ही सा मालूम होता है।

आपका कविता-काल सं० १७०० वि० के लगभग माना जाता है। 'मिश्रबंधु-विनोद' में सुबुध मिश्रबंधुओं ने आपका अमरकोष-भाषा का रचयिता लिखा है। अभी तक हमें आपका कोई भी ग्रंथ देखने को नहीं मिल सका है। खोज की जा रही है, और संभव है कि आपके वंशजों के पास, जो अब भी ओरछा-राज्य में रहते हैं, आपके ग्रंथों का कुछ शोध लग जावे, क्योंकि आपके पूर्वज सदा से ऊँची श्रेणी के विद्वान् और कवि रहे हैं। वे सभी अपनी सरस्वती उपासना के प्रभाव से बड़े-बड़े सम्राटों से पूजे जाते रहे हैं। आपके अग्रज कवींद्र केशवदासजी मिश्र और महाकवि बलभद्रजी मिश्र के कुछ ग्रंथ अब तक खोज में मिल रहे हैं। ये दोनो महानुभाव अनेक ग्रंथों और कविताओं के रचयिता थे। इससे यह अनुमान करना अनुपयुक्त नहीं है कि कवि कल्याण ने भी ग्रंथों की रचना की होगी। किंतु वे अब तक खोज मे मिल नहीं सके हैं। आपके प्रपौत्र पं० हरिसेवकजी मिश्र के कथन से भी कि

कवि कल्यान के तनय हुव परमेश्वर इहि नाम ;
तिनके पुत्र प्रसिद्ध हुव प्रागदास अभिराम।
तिन सुत हरिसेवक कियौ यह प्रबंध सुखदाय ;
कविजन भूल सुधारची अपनी चातुरताय।

"कवि कल्यान के तनय हुव..." हमारी उपर्युक्त धारणा ही सिद्ध होती है।

'शिवसिंह-सरोज' में आपका एक कवित्त छपा हुआ है। जब तक आपकी और कविता उपलब्ध नहीं होती, तब तक पाठक इसी पर संतोष करें, वह इस प्रकार है—

नैन जग राते माते, प्रेममय देखियत ;
आनन जम्हात ठौर-ठौरन खगात है।
कजरा१ कुटिल२ लागे अधरनि३ ओर कोर ;
सकुच सरम नहीं सोहैं-सोहैं खात है।
केसव कल्यान प्रानपति जानि पाए, जाहु
नेकु पहिचानी सब हो तिहारी बात है।
छीछि-छीलि बतियाँ न छैल बर बोलौ कहूँ ;
कर४ के छिपाए ते छपाकर५ छिपात है।

---

१ कजरा = कागज़। २ कुटिल = टेढ़ा। ३ अधरनि = ओठों में। ४ कर = हाथ। ५ छपाकर = चंद्रमा।

श्रीपं० बालकृष्णजी मिश्र

पं० बालकृष्णजी मिश्र का जन्म सं० १६३७ वि० के लगभग ओरछे में हुआ था। आप महाकवि बलभद्रजी मिश्र के पुत्र तथा जगत्प्रसिद्ध कवींद्र पं० केशवदासजी मिश्र के भतीजे थे।

शिवसिंह-सरोज[1] और मिश्रबंधु-विनोद[2] में आपको त्रिपाठी लिख दिया है। किंतु यह स्पष्ट लिखा है कि आप बलभद्रजी के पुत्र थे। प्रतीत होता है, 'सरोज' में भूल

---

१ शिवसिंह-सरोज—

२६, बालकृष्ण त्रिपाठी (१) बलभद्रजी के पुत्र और काशिनाथ कवि के भाई। सं० १७८८ में उ० इन्होंने रसचंद्रिका-नामक पिंगल बहुत सुंदर बनाया है।

२ मिश्रबंधु-विनोद—

नाम (२११) बालकृष्ण त्रिपाठी

ग्रंथ—रसचंद्रिका (पिंगल)

जन्म-संवत्—१६३२

रचना-काल—१६५७

विवरण—बलभद्र के पुत्र। यह केशवदास के भतीजे नहीं हो सकते, क्योंकि वह मिश्र थे। साधारण श्रेणी के कवि थे।

से मिश्र के स्थान पर त्रिपाठी छप गया होगा, और फिर 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' की कहावत के अनुसार अन्य ग्रंथकारों ने बिना इस बात का विवेचन किए कि वास्तव में आप मिश्र हैं या त्रिपाठी, यदि त्रिपाठी हैं, तो बलभद्रजी के पुत्र कैसे, आदि बातों पर भले प्रकार प्रकाश नहीं डाला और ज्यों-का-त्यों ही लिख दिया है।

'शिवसिंह-सरोज' में बालकृष्ण नाम के दो कवि माने गए हैं। किंतु कविता के देखने से जान पड़ता है कि ये दोनो कवि एक ही थे। इनकी कविता में महाकवि बलभद्र की कविता का आभास स्पष्ट दिखलाई देता है।

सरोजकारों ने आपके भाई को भी कवि होना लिखा है, किंतु नाम लिखने में यहाँ फिर भूल कर दी गई है। आपके भाई का नाम काशीनाथ लिखा है, जो ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि महाकवि बलभद्रजी मिश्र के पिता का नाम स्वयं काशीनाथ मिश्र था। प्रतीत होता है, काशीराम या और कुछ नाम के स्थान में काशीनाथ भूल से लिख दिया गया है। अस्तु।

आपने रसचंद्रिका (पिंगल)-नामक ग्रंथ की रचना की है। आपका कविता-काल १६६० वि० से-१७०० वि० तक माना जाता है। आपकी कविता के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

संपति सुमति नीकी, बिपति सुधीर नीकी,
गंगा-तीर मुक्ति नीकी, नीकी टेक राम की;

पतिव्रता नारि नीकी, परहित बात नीकी,
चाँदनी सुराति नीकी, नीकी जीति काम की।
'बालकृष्ण' वेदबिद१, उम्र२नीकी भूसुर की,
भक्ति नीकी, नीकी है रहनि हरि धाम की;
अगन की हानि नीकी३, तात की मिलनि नीकी,
सुर मिली तान नीकी४, प्रीति नीकी५ राम की।
हरि कर दीपक बजावैं संख सुरपति,
गनपति झाँझ भैरों झालर६ झरत हैं;
नारद के कर बीन७ सारद जपत जस,
चारि मुख चारि बेद विधि उच्चरत हैं।
षटमुख रटत सहस्र मुख सिव-सिव,
सनक सनंदन सु पाँयन परत हैं;
'बालकृष्ण' तीनि लोक, तीस और तीनि कोटि८,
ऐते सिवसंकर की आरती करत हैं।

रसचंद्रिका (पिंगल)

(छप्पय)

मूढ़ बुद्धि परिहरिय९ होय पर दुःख दयामय;
रमित जोग रस माँहि दमित मन बच क्रम निरभय।

---

१ बेदबिद्=वेदविज्ञ, वेद जाननेवाला। २ उम्र=उच्चता, बड़प्पन। ३ अगन की हानि नीकी=अगण अक्षरों की हानि या कमी ही अच्छी है। ४ सुर..... नीकी=सुर में मिली हुई ही तान अच्छी मालूम होती है। ५ प्रीति......की=राम की प्रीति या भक्ति अच्छी होती है। ६ झालर=वाद्य विशेष, जो पूजा के समय बजाया जाता है। ७ बीन=वीणा। ८ तीस और तीनि कोटि=तेंतीस करोड़। ९ परिहरिय=त्यागिए, छोड़िए।

भक्ति हेत निज राम रचेउ जे परम सुखद नर ;
रिसि१ न होय जनु कबहि तिहूँ पुर ऊपर सुंदर ।
सुभ ज्ञान ध्यान बैराग रत तोष जोर तृष्णहिं सिखित ;
तिन तीन पाँच षट बस करिय सुभ मूरति नरमय लिखित ।
पंडित चित लखि दौर करत उर भरम सफर२-भर ;
जगत बसीकर अजिर३ दमित रति-पति कर गत सर ।
ललित खंज४ गति सुढर५-सहित अंजन पिय मनहर ;
मरम भेद कहँ सदर६ नहिन त्रिभुवन समता कर ।
अति रूप - रासि गुन सकल घर नर मोहनमय मंत्र पर ;
बदत७ बाल कवि रसिक वर पंकज-दल८-सम९ नयनवर१० ।

---

१ रिसि=क्रोधित । २ सफर=भ्रमण करता है, चलता है । ३ अजिर=आँगन । ४ खंज=एक पक्षी का नाम । ५ सुढर=सुडौल । ६ सदर=मुख्य । उर्दू-शब्द है । ७ बदत=कहते हैं । ८ पंकज-दल=कमल के पत्र । ९ सम=समान । १० नयनवर=श्रेष्ठ नेत्र ।

श्रीपं० रसिकदेवजी

पं० रसिकदेवजी का जन्म सं० १६७० वि० के लगभग बुंदेलखंड में हुआ था। श्रीसहचरिशरणजी ने अपने 'ललित-प्रकाश'-नामक ग्रंथ में गुरु-प्रणालिका लिखते हुए आपके संबंध में इस प्रकार लिखा है—

रसिकदेव रससीन सनावढ़ पीन प्रेम सों ;
जनम बुँदेलाखंड विपिन पुन भजन नेम सों।
कीन्हें शिष्य अनेक एक-ते-एक थमायक ;
तिन बिच मिथुन प्रसिद्ध सिद्ध सुनि सब विधि लायक।

आप श्रीपं० नरहरिदेवजी के शिष्य थे। आपका रचना-काल सं० १७०० वि० के लगभग माना जाता है। आपने अनेक ग्रंथों की रचना की है, जिनको नामावली निम्न-लिखित है—

(१) बानी, (२) प्रसाद-लता, (३) भक्ति-सिद्धांत-मणि, (४) पूजा-विलास, (५) एकादशी-माहात्म्य, (६) रस-कदंब-चूड़ामणि, (७) पूजाविभास, (८) कुंज-कौतुक, (९) माधुर्यलता, (१०) रतिरंगलता, (११) सुवा-मैना-चरित-लता, (१२) आनंद-लता, (१३) हुलास-लता, (१४) अतन-

लता, (१५) रत्न-लता, (१६) रहसि-लता, (१७) कौतुक-लता, (१८) अद्भुत-लता, (१६) विलास-लता, (२०) तरंग-लता, (२१) विनोद-लता, (२२) सौभाग्य-लता, (२३) सौंदर्य-लता, (२४) अभिलाष-लता, (२५) मनोरथ-लता, (२६) सुख-सार-लता, (२७) चारु-लता, (२८) अष्टक, (२६) रससार, (३०) ध्यानलीला, (३१) बाराहसंहिता और (३२) अष्टक।

'शिवसिंह-सरोज' तथा 'मिश्रबंधु-विनोद' में आपको रसिक-दास, और आपके गुरु को नरहरिदास लिखा है, किंतु गुरु-प्रणालिका से आपका और आपके गुरु का नाम रसिकदेव और नरहरिदास ही ठीक जान पड़ते हैं।

आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

(पद)

सुमिरो नर नागर बर सुंदर गोपाल लाल ;
सब ही दुख मिटि जैहैं चिंतित लोचन विसाल।
अलकन की झलकन लखि, पलकन-गति भूलि जात ;
भ्रू-विलास१ मंद हास रदन छदन अति रसाल।
निरत रवि कुंडल छवि, गंड२ मुकुर३ झलमलात ;
पिच्छ-गुच्छ४ कृत वतंस५ इंदु विमल बिंदु भाल।
अंग-अंग जित अनंग माधुरी तरंग रंग ;
बिगत मद गयंद६ होत देखत लटकीली चाल।

---

१ भ्रू-विलास = भौहों का मटकाना। २ गंड = कपोल। ३ मुकुर = शीशा। ४ पिच्छ-गुच्छ = मोरपंख के गुच्छे। ५ वतंस = कलगी। ६गयंद=बड़ा हाथी।

रतन रसन पीत बसन चारु हार घर सिंगार ;
तुलसि-कुसुम-खचित[1] पीन[2] उर नवीन माल ।
ब्रजनरेस बंस दीप, वृंदावन वर महीप ;
श्रीवृषभान मान्यपात्र सहज दीन जनदयाल ।
रसिक रूप रूपरासि, गुन - निधान जान राय ;
गदाधर प्रभु जुवती जन मुनि-मन-मानस-मराल[3] ।
इत्यादि ।

---

१ खचित = बनी हुई । २ पीन = स्थूल, मोटी । ३ मराल = हंस

श्रीपं० शिवलालजी मिश्र

पं० शिवलालजी मिश्र का जन्म अनुमानतः सं० १६८० वि० के लगभग, ओरछा में, हुआ था। आप कवींद्र केशव के अनुज श्रीपं० कल्याणजी मिश्र के प्रपौत्र थे। आपके किसी ग्रंथ का पता नहीं चल सका है, और न स्फुट काव्य ही प्राप्त हो सका है। आपके संबंध में एक बड़ी ही मजेदार किंवदंती प्रसिद्ध है। सुनते हैं, आप एक बार जगन्नाथजी के दर्शन करने के लिये श्रीजगन्नाथ-पुरी को गए; उन दिनों वहाँ यह नियम था कि जो अठारह रुपया चढ़ावे, वही श्रीजगन्नाथजी के दर्शन कर सके, अन्यथा नहीं। कविराज को यह प्रथा अनुचित प्रतीत हुई, और आपने तुरंत एक सवैया बनाकर सुना डाला, देखिए, वह इस प्रकार है—

जाट[1], जुलाहे[2], जुरे, दरजी[3];
मरजी से मिल्यो चक चूरि चमारौ[4]।
दीनन की कहु कौन सुनै;
निसि-द्यौस[5] रहे इनहीं को अखारौ।

---

१ जाट=धन्ना जाट। २ जुलाहे=कबीर जुलाहा। ३ दरजी=नामा दरजी। ४ चमारौ=रैदास चमार। ५ निसि-द्यौस=रात-दिन।

को 'सिवलाल' की बात सुनै;
दीनानाथ के द्वार पै कोऊ पुकारौ।
ऐसे बड़े करुणाकर को—
इन पाजिन[1] ने दरबार बिगारौ।

---

[1] पाजिन (उर्दू-शब्द) (पाजी) = पाजियों, बदमाशों, दुष्टों।

श्रीपं० रूपरामजी सनाढ्य

पं० रूपरामजी सनाढ्य का जन्म सं० १७०० वि० के लगभग आगरा-प्रांतांतर्गत कचौरा-घाट-नामक स्थान में हुआ था। आपकी जीविका 'रामायण' और 'भागवत' की कथा कहने पर चलती थी किंतु उसमें आप बड़े दक्ष थे। आपकी एक-एक कथा पर दो-दो सहस्र रुपयों की चढ़ौती हो जाती थी। आपको मान-अपमान का बहुत ध्यान रहता था।

कहते हैं, एक बार आप ग्वालियर-राज्य में कहीं बड़े समारोह के साथ कथा कह रहे थे, इतने में उस राज्य के एक उच्च पदाधिकारी, सूबा साहब, वहाँ आ पहुँचे। श्रोतागण सूबा साहब के सम्मानार्थ एकदम खड़े हो गए, जिससे कथा में कुछ व्यतिक्रम हुआ। पंडितजी को यह बात असह्य हो गई उन्होंने तुरंत ही एक चौपाई के अर्थ-प्रसंग में एक दृष्टांत दे डाला, जो उक्त सूबा साहब और उस गड़बड़ पर घटित होता था उसे सुनकर सूबा साहब वहाँ से उठ खड़े हुए इस पर पंडितजी भी उठकर चल दिए सबने बिनती-प्रार्थना की; यहाँ तक कि सूबा साहब ने भी मनाया, किंतु आप नहीं लौटे।

वैसे तो आप किसी ग़रीब के घर भी विना बुलाए जा डटते और कथा कहने लगते, किंतु उनकी कथा कहने की शैली इतनी मनोरंजक और आकर्षक होती थी कि एक ही दो दिन में भीड़ लग जाती थी। तब तो कोई-न-कोई बड़ा आदमी उन्हें अपने घर लिवा ही ले जाता था, जिससे श्रोताओं के जमा होने के लिये सुबीता हो जाता था।

आप निवाज कवि के समकालीन माने जाते हैं आपने अपने ग्राम में एक कवि-गोष्ठी भी स्थापित की थी। आपके किसी ग्रंथ का पता नहीं चलता, किंतु प्रस्तुत कविता से ही आपके प्रतिभाशाली कवि होने का भले प्रकार मर्म मिलता है।*

आपकी रचनाएँ सरस और मनोरंजक हैं।

उदाहरण—

सामरौ गात सुहात भटू,
जलजात हू तें अतिशय अनुकूलै;
पीत झगूली महा विलसै,
रति की मति की गति हू छकि भूलै।
मोद-विनोद भरी दतियाँ—
लखि कै अतियाँ छतियाँ सुख फूलै;
रूप-रँगीले छबीले भनैं,
दशरत्थ के लाड़िले पालने झूलै।

---

* एप्रिल १६२३ की सरस्वती में प्रकाशित रायबहादुर बा० हीरालालजी बी० ए० के लेख के आधार पर।

लोने-लोने लोयन न ललित ललाई लसै,
लालन की पीक-लीक लेखि सुख सरसै;
गोल-मोल लोलन अमोलन कपोलन पै—
अलबेली अलक-अवलि वैसी परसै।
अति कमनीय कंठ किंकनी वलित कटि—
कसै अटपट पीतपट नीको दरसै;
'रूपराम' सुकवि बिलोकौ रामचंद्रजू के—
मुख अरबिंद पै अनंद-बृंद बरसै।

× × ×

राजत राम अनूप स्वरूप सो,
भूप मनोभव-बैरि को भावुक;
पीत दुकूल कसैं बिहँसैं,
लखि लोचन लाजत हैं मृग-शावुक;
गोल अमोल कपोलन पै—
हलकैं अलकैं छलकैं छबि छावुक;
मानो निशंक मयंक के अंक कौं—
रोषि कैं राहु चलायो है चाबुक।

× × ×

चकित-सी चितवति चहूँ दिश चित चोरि,
आई पूजि गौरि ओढ़ि ओढ़िनो धनक की;
दमकति दामिनी है, कीधौं चंद-चाँदनी है,
करिवर-गामिनी है, कली है कनक की।
भए हैं अधीर धीर, काहू ना धरी है धीर,
कहौं कैसे बीर वाकी सुषमा बनक की;

'रूपराम' काम की है कामिनी ललाम छाम,
राम जू की वाम कीधौं नंदिनी जनक की।
इंद्र सौं न भोगी ना वियोगी रामचंद्रजू सौं,
योगी चंद्रभाल सौ न रोगी तिमि चंद्र सौं;
करण सौं न दानी-नाभिमानी और रावन सौं,
वावन१ सौं न कवानी, ना ज्ञानी हरिचंद्र सौं।
पुत्र सौं न फूल गंगाजल सौं न जल और,
औध सौं न थल 'रूपराम' मधु कंद सौं;
भौन सौ न फंद मंद जौन सौं न कौन कहौं,
पौन सौं स्वच्छंद ना अनंद साधु-चंद सौं।

× × ×

पंचबान बान में न देवन विमान में न—
भासे आसमान में न प्रानन प्रयान में;
गंग के प्रवाह में न, सिंध से अगाह में न,
पच्छिन के नाह में न मौन अप्रमान में।
ऐरापति में न अश्वपति में न घन में है,
तारापति में न तैसो कहौं काहू जहान में;
'रूपराम' सुकवि विलोक्यौ ऐसो काहू में न,
जैसो वेप्रमान वेग देख्यो हनूमान में।

× × ×

---

१ वावन... ..सौं यद्यपि यह इसी प्रकार ही छपा हुआ है, किंतु प्रतीत होता है, यह "बावन सौं न कवि ना ज्ञानी हरिचंद्र सौं" होगा।

दारिद सों ताप न प्रताप है अनंग ऐसो ;
गंग सौ न आप त्यों न पाप है अनीति सौं।
विद्या सौं विनोद अनुमोद ब्रह्म-बोध सौं न ;
बान सौं सबोध न अबोध इंद्रजीत सौं।
वीर दसकंध सौं न मूरख कबंध सौं न ;
कंस सौं मदंध त्यों न बंध और प्रीति सौं।
'रूपराम' भनत नरिंद हरिचंद्र सौं न,
चंद सौं अमंद न अनंद रस रीति सौं।

श्रीपं० हरिसेवकजी मिश्र

हाकवि श्रीपं० हरिसेवकजी मिश्र का जन्म सं० १७२० वि० के लगभग, ओरछे में, हुआ था। आप जगत्-प्रसिद्ध कवींद्र प० केशवदासजी मिश्र के अनुज पं० कल्याणजी मिश्र के प्रपौत्र थे। आपने अपने संबंध में अपने 'कामरूप कथा महाकाव्य'-नामक ग्रंथ में केवल निम्न-लिखित दोहे ही लिखे हैं—

सुप्रख्यात इहि गोत हुव मिश्र सनावढ बंस ;
नगर ओड़छौ बसत वर कृष्णदत्त सुव अंस।
कृष्णदत्त सुत गुन जलधि कासिनाथ परमान ;
तिनके सुत जु प्रसिद्ध हैं केसवदास कल्यान।
कवि कल्यान के तनय हुव परमेश्वर इहि नाम ;
तिनके पुत्र प्रसिद्ध हुव प्रागदास अभिराम।
तिन सुत हरिसेवक कियौ यह प्रबंध सुखदाय ;
कविजन भूल सुधारवी अपनी चातुरताय।

अस्तु।

वास्तव में आपके पूर्वजों का काव्य पर जन्म-सिद्ध अधिकार था। आपके पूर्वज सर्वदा से ऊँची श्रेणी के विद्वान् और कवि होते रहे हैं। वे अपनी सरस्वती-उपासना ही के

प्रभाव से बड़े-बड़े सम्राटों से गुरुवत् पूजे जाते रहे हैं, और ओरछा-राज-वंश तो आपके पूर्वजों का अनन्य भक्त ही था। इस संबंध में विशेष जानने के लिये 'सुकवि-सरोज' का प्रथम भाग देखिए। आपके वंश में बराबर कवि होते रहने का वरदान-सा है। श्रीपं० कृष्णदत्तजी और उनके पुत्र श्रीपं० काशीनाथजी प्रसिद्ध कवि थे। उनके तीनो पुत्र महाकवि बलभद्रजी, कवींद्र पं० केशवदासजी और महाकवि कल्याणजी अपने समय के अद्वितीय महाकवि हुए। बलभद्रजी के पुत्र पं० बालकृष्णजी और कवींद्र पं० केशवदासजी के पुत्र कविवर पं० बिहारीदासजी भी अच्छे कवि थे। और तो और, कवींद्र केशव की पुत्र-वधू तक के कवयित्री होने का पता चलता है। सुनते हैं, कवींद्र केशवदासजी के एक पुत्र—जो अच्छे वैद्य भी थे, और जिन्होंने 'वैद्य-मनोत्सव'-नामक ग्रंथ की रचना की थी—दैववशात् क्षय-रोग-ग्रसित हो गए, अतः उसके उपचार के लिये उन दिनों घर के आँगन में एक बकरा बँधा रहता था, क्योंकि आयुर्वेद के अनुसार क्षय-रोग के रोगी को उससे बहुत कुछ लाभ होते सुना गया है। एक तो यह महानुभाव विद्वान् और कवि, दूसरे अच्छे वैद्यराज, तीसरे तरुण अवस्था, ऐसी परिस्थिति में भी रुग्ण हो जाने पर संसार की असारता पर घृणा और वेदांत की ओर अभिरुचि हो जाना स्वाभाविक ही है, सो अंत मे हुआ भी वही, और उसका परिचय भी किस अनूठे ढंग से मिला है, देखिए।

एक दिन आँगन बुहारते समय आपकी धर्म-पत्नी के पैर पर बकरे ने पैर रख दिया, उसी समय किसी कार्य से वैद्यराज महोदय भीतर आए, तब आपकी धर्म-पत्नी ने देखिए कैसा सुंदर व्यंग्य निम्न-लिखित सवैया में कहा है—

जैहै[1] सबै[2] सुधि भूल तबै[3],
जब नेकहु[4] दृष्टि दै मोते[5] चितैहै[6];
भूमि में आँक बनावत मेटत,
पोथी लए सबरो[7] दिन जैहै।
दुहाई कक्काजू की साँची कहौं,
गति पीतम की तुमहूँ कहँ दैहै;
मानो तो मानो अबै अलियासुत[8],
कैहौं कक्काजू सों तोहिं पदैहै।

इत्यादि।

महाकवि हरिसेवकजी ओरछाधीश महाराज उदोतसिंहजी की सभा के रत्न थे। महाराज उदोतसिंह ने सं० १७५६ वि० से १७९२ वि० तक ओरछा का राज्य किया था। हमारे महाकविजी का कविता-काल भी पूर्णतया यही सिद्ध होता है।

आपके रचित दो ग्रंथों ही का पता अब तक चल सका है—(१) हनुमानजी की स्तुति और (२) 'कामरूप कथा महाकाव्य'।

---

१ जैहै=जायगी। २ सबै=सब ही। ३ तबै=तब ही। ४ नेकहु=थोड़ी भी। ५ मो ते=मुझको। ६ चितैहै=देखेगा। ७ सबरो=सब ही। ८ अलियासुत=बकरा। भावार्थ और व्यंग्य स्पष्ट ही है।

पहले ग्रंथ के देखने का मुझे अभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। दूसरा ग्रंथ अन्वेषण करते समय मुझे श्रीप० काशीनाथजी मिश्र, चँदेरी से प्राप्त हुआ है। यह महानुभाव हमारे महाकवि पं० हरिसेवकजी मिश्र के वंशज हैं।

इस ग्रंथ में महाकवि ने अपनी असीम विद्वत्ता का पूरा-पूरा परिचय दिया है। कवींद्र पं० केशवदासजी मिश्र ही की तरह आपने इस ग्रंथ मे अनेकानेक छंद व्यवहृत किए हैं। और खूबी यह कि कथानक उत्तरोत्तर मनोहर होता गया है। केवल यही ग्रंथ आपको सदैव अमर बनाए रखने के लिये पर्याप्त है। अस्तु।

यह हस्त-लिखित प्रति २०×३० साइज़ के अठपेजी काग़ज़ पर दोनो ओर सुंदर नागरी-लिपि में लिखी हुई है। पृष्ठ-संख्या ५५२ है। यह बृहद् ग्रंथ १८ सर्गों में समाप्त हुआ है। यह ग्रंथ आपने तत्कालीन ओरछाधीश महाराज उदोतसिंह के लिये लिखा था।

इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने राजकुमार कामरूप और उनके ६ मित्रों की सिंहलद्वीप की यात्राओं और स्वयंवर आदि का वर्णन करते हुए ग्रंथ को इतना सुंदर, चित्ताकर्षक और रोचक बना दिया है कि पढ़ते-पढ़ते चित्त प्रसन्न हो जाता है। बीच-बीच में आपने यथास्थान ऋतु-वर्णन, रस-वर्णन, वन, नगर, वृक्ष और जंतुओं की स्वाभाविक प्रकृति का मनोहर वर्णन किया है।

रत्न, अश्व, वैद्य, अस्त्र आदि की परीक्षाएँ, गुण, दोष और उनके समुचित प्रयोगादि का भी इसमें सविस्तर वर्णन है। अन्य अनेक आवश्यक विषयों का इसमे समावेश है। और वह भी ऐसी सरल, सुबोध भाषा में कि पढ़ते-पढ़ते हृदय गद्‌गद हो जाता है। इसे यदि एक प्रकार का विश्व-कोष कहा जाय, तो अनुचित न होगा।

इस ग्रंथ में भावों की प्रौढ़ता, वाक्य-विन्यास, शब्दों का गठन, वर्णन-शैली और विषय की महत्ता आदि पूर्ण रीति से भासित होती है।

आपकी रचनाएँ सरस और अति ही मनोहारिणी हैं, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

ऋतु-वर्णन

(वसंत)

ऋतुराज का आगमन है। जरा देखिए, सिंहलद्वीप की वाटिका में ऋतुपति का स्वागतोपचार किस चाव से हो रहा है। कैसे अनूठे और प्राकृतिक साज सजे जा रहे हैं, मंगल-गान, तोरण, आरती, चँवर, छत्र, पाँवड़े, वितान, विरुद-गान सभी उपचार हैं—

(दोहा)

तरु पुहुपन - बरसा करै, गावत विहँग - समाज ;
बन प्रजान 'मंगल' कियो, लखि आवत रितुराज।

झूमि - झूमि वल्ली तरुन 'तोरन' जनु गृह - द्वार;
नव सरोज पर कल वसन झीनै मंगलचार।
अरुन कढ़ी नव किंसुकन१ कलिका यह निरधार;
रितुपति कौं जनु 'आरती' करत दीप उजियार।
कंपित मंद बयार तनु लाल पुहुप द्रुम भौंर;
रितु-नृप को चहुँ ओर तैं करत चारु जन 'चौर'।
बन फूली गुलदावदी सित-सित२ अगनित पत्र;
जनु सोहत रितुराज सिर जित-तित तानैं 'छत्र'।
परि पराग तन कुसुम-भर भई चित्र बन-माल;
जनु बसंत के ओर चहुँ बिछे 'बिछौना' लाल।
परै मालती कुसुम झर लागत उपवन सेत;
डारि चाँदनी मदन जनु कियौ सचित्र 'निकेत'३।
लखि वियोग जनु चंद रिपु कोकिल साधु सरीर;
'कुहू' बुलावत कर कुहू, मेंटत है पर पीर।
'विरदावलि'४ रितुराज की बंदी कोकिल, मोर;
करत मनौ मधुकर५-निकर६ निगम सोर चहुँ ओर७।

वसंत बीत गया, अब जरा ग्रीष्म के आतंक को देखिए, कैसा सजीव वर्णन है—

(दोहा)

तैसी रितु ग्रीषम विषम, लगि आतप संताप;
परै चंड कर किरन झर, सूखत सरवर८ आप।

---

१ किंसुकन=पलास, टेसू के फूल। २ सित=श्वेत। ३ निकेत=घर। ४ विरदावलि=प्रशंसात्मक बातें, गीत। ५ मधुकर=भौंरा। ६ निकर=समूह। ७ चहुँ ओर=चारो ओर, चारो तरफ़। ८ सरवर=तालाब, बड़े सरोवर।

मलयानिल१ जे विरह रिपु भए ति आग समान;
तन वेध्यो कर तीर सैं बेधन लागे प्रान।
लागत मग-रज२ पगन में अँग-अँग उठत कुलाप३;
फारे मनौं फुलिंग४-गन लगी अगिन वन-दाव।
भर लपटन मनसालसी विरले कुसुम दिखात;
रवि-मंडल छवि सौं छपे तारे ज्यों परमात५।
विफल कीन वनचर सकल नरन होत लखि त्रास;
रितु निदाघ६ जनु बाघ-सम कीनौं आन निवास।
चंद्र सुरमन को मयद खंडत हर मद बोल;
भीषम-सम ग्रीषम भयौ धर समीर७ सर८ लोल९।

ग्रीष्म को ताप से भी तप चुके, अब आइए, पावस की बहार देखिए—

तन धरि दामिनि१० वास कौं लखि आप घनश्याम;
कीन्हें वास निवास पिय मानौं ये घनश्याम।
घन-घन चातक पातकी रटत पीउ मुख वाम;
प्रानन घ्यावत विरह जनु मनमथ११ साधक काम।
देखत सुखिन को भरस खीन१२ लहलहे कीन;
तपन बुझावत जगत की पावस नृपति प्रवीन।

---

१ मलयानिल = मलयागिरि चंदन की सुगंधित और ठंडी वायु। २ मग-रज = मार्ग की बालू। ३ कुलाप = कष्ट। ४ फुलिंग = स्फुलिंग, चिनगारियाँ। ५ परमात = प्रभात। ६ निदाघ = ग्रीष्म। ७ समीर = हवा। ८ सर = तीर। ९ लोल = हिलता हुआ, चंचल। १० दामिनि = बिजली। ११ मनमथ = कामदेव। १२ खीन = क्षीण।

लखि कुरंग१ बिरही जनन सावन बधिक सरीर;
रव२-बागुर३ घन घटन की बरसावन सर - नीर।

इत्यादि।

कुछ ऋतुओं का संक्षिप्त वर्णन आपने देख लिया, अब वाटिका के वृक्षों के वर्णन की भी बानगी देखिए—

(पद्धरि)

देखे अपूर्व तरुवर अनेक;
बढ़ि करै मनहुँ अमृतहि सेक।
द्रुम सघन छाँह दिक्खिय सुजान;
कब उदय अस्त कहँ करत भान।
सोभित बिसाल स्यामल तमाल४;
कृत माल साल, हिंताल५ ताल।
सिंसिपा६, सालमलि७, बीजपूर८;
खारिक सिरीष९ बाहिर खजूर।
जंबू१०, उदंब११, निंबन१२, कदंब;
कंजा करंज१३ रंजित१४ कदंब।

---

१ कुरंग = हिरन, मृग। २ रव = शब्द। ३ बागुर = फंदा, जाल। ४ स्यामल तमाल = नील वर्ण का एक वृक्ष। ५ हिंताल = बड़ा ताल का वृक्ष। ६ सिंसिपा = शीशम। ७ सालमलि = शाल्मलि, सेमर। ८ बीजपूर = बिजौरा। ९ सिरीष = सिरस। १० जंबू = जामुन। ११ उदंब = ऊमर। १२ निंबन = नीम। १३ करंज = काँजी। १४ रंजित = फूला हुआ।

पुन आवनूस, बादाम, आम ;
कटहर, अनार करुना ललाम।
नव नारकेर१ चहुँ सिंधुवार२ ;
फल फिकरात फटु कर्णिकार३।
चित्रक४ असोक कचनार सार ;
नागार५, नागकेसर, कसार६।
पिप्पल प्रयंगु७ जंबीर८ पुंग९ ;
निंबू, मधूक१० नारंग चुंग।
वल्लीन मंडियव राजमान ;
जुर भँवर भीर जहँ करत गान।
मल्लिका, मालती११ वकुल१२ जास।
एला१३, लवंग१४, विचकिल विलास।
जूथिका—जूथि१५, पन्नज, गुलाब ;
मखमाल माधवी१६ अधिक आब।
भुव चंप चंप कंपित सरीर ;
केतक सुगंध यस भँवर भीर।

---

१ नारकेर = नारियल । २ सिंधुवार = वृक्ष विशेष । ३ कर्णिकार = वृक्ष-विशेष, ढाक-कैसे पत्तों और लाल मनोहर पुष्पोंवाला। यह पेड़ प्रायः पर्वतों ही पर होता है। ४ चित्रक = चितावर । ५ नागार = अदरक, सोंठ । ६ कसार = कसेरुआ । ७ प्रियंगु = मेंहदी । ८ जवीर = जमीरी नीबू । ९ पुंग (पुंगव) = ऊँचे था (पूग=सुपारी) । १० मधूक = महुआ । ११ मालती = चमेली । १२ वकुल = मौलसिरी । १३ एला=इलायची । १४ लवंग = लौंग । १५ जूथिका जूथि=जुही के झाड़ । १६ माधवी=चमेली ।

देखिए, राज-दरबार का वर्णन करते हुए आप क्या कहते हैं—

(दोहा)

अति अपूर्व भूपति सभा ; लखि हौं करौं विचार ।
इंद्र - लोक आयो किधौं ; बल नृप के दरबार ।

(दंडक)

हीरन जटित हिम१ खंभन कदंब बँधे ,
धवल२ वितान आसमान गंग-फैन से ;
मोतिन की झालरैं बिराजैं चहुँ वार मानो ,
उडुगन३ तोरन त्रिलोक द्युति दैन से ।
चाँदनी बिछौना भूप मुखचंद चाँदनी-से ,
चंदन के बुंद छूसौं दीखत मलैन से ;
सारद जलद जैसे पारद - तड़ाग४ जैसे ,
नारद के अंग जैसे हिमगिरि गैन से ।

प्रत्येक सर्ग के प्रारंभ में ग्रंथकार ने एक-एक पद्य महाराज उद्दोतसिंह और एक-एक पद्य कुँअर पृथ्वीसिंहजी के लिये लिखे हैं । अपने आश्रयदाता की प्रबल प्रताप-कीर्ति का उनमें सुंदरता से वर्णन किया गया है । देखिए, महाराज की कृपाण, कीर्ति आदि के विषय में आप क्या लिखते हैं—

---

१ हिम = बर्फ़, शीत । २ धवल = स्वच्छ, श्वेत । ३ उडुगन = तारे । ४ पारद-तड़ाग = पारे (उपधातु) से भरा हुआ तालाब ।

(कवित्त)

चंडी है प्रचंड सत्रु-मुंड-रुंड खंडिबे कौं१ ,
माल पुंज देबे को कलपलता हर की ;
बैरि-बधू मुख-कुमदनि कुम्हिलाइबे कौं—
कैधौं अति तीछन किरन चंद्र कर की ।
पर पुर या मन जराइबे कौं हार जाल ,
निज पुर रच्छन को साखा देवतर२ की ;
'सेवक' कविन की मनोरथ की सिद्धि राजै ,
कर करवार३ श्रीउदोत नर - वर की ।

(दंडक)

सब सुख सार कवि बानी कौ सिंगार उर—
कोविदन कीनौ हार जिन गुन गाथ की ;
सरद-सी सारदा-सी सुधा-सी सुधारी सुद्ध—
सुर-तरु कली-सी कै अली गौरा साथ की।
गंगा के तरंग-सी कपूर पूर अंग-सी कै—
मोतिन की मंग सरसुतिजू के साथ की ;
जौन्ह४-सी बिमल राजै निंदत कमल काजै ,
कीरति बिराजै श्रीउदोत नरनाथ की ।

(षट्पदी)

अति प्रचंड रिपु खंड मुंड खंडन पटु धारा ;
अनुदिन शिरसि हरस्य समारोपित नव हारा ।

---

१ खंडिबे कौं = काटने को । २ देवतर = देवतरु, कल्पवृक्ष ।
३ करवार = तलवार । ४ जौन्ह-सी = चाँदनी-सी, जुन्हाई-सी ।

अर्क१-किरण मणि सरित तेजसा भयद शरीरा ;
चर्क२ रीति रणमुखे काल तृप्ति धृति धीरा।
निज सुमनःसंहर्षिणी३ स्वबल निचय४ भयतारिणी ;
उद्योतसिंह तव विजयते कृपाणि कायरहारिणी।

(दंडक)

सुपथ चलावन मिटावन कुपथ गथ,
समरथ महारथ सुरथ महीप कौ ;
मेटे उर दाह रज राजत अजान बाहु,
गुनी निरबाहु एक दीप जंबूद्वीप कौ।
गुन गरबीलौ अरबीलौ५ अरबीलन में,
अरबन दान अरबीलौ अवनीप कौ ;
नृपति उदोत नंद राजै पृथीसिंह ऐसे,
जैसे युवराज रघुराज है दिलीप कौ।

इत्यादि।

आपकी विशेष कविताएँ जाननेवालों को आपके 'काम-रूप कथा'*-नामक ग्रंथ को देखना चाहिए।

---

१ अर्क = सूर्य। २ चर्क = (अधिक संभवतः चक्र-रीति, सुदर्शन-चक्र की रीति) ३ सुमनःसंहर्षिणी = अच्छे मनवालों को प्रसन्न करनेवाली। ४ निचय = संचय। ५ अरबीलौ = अरबों रुपया रखनेवाला।

* 'कामरूप कथा'-नामक ग्रंथ को सुसंपादित कर उसको प्रकाशित करने की व्यवस्था की जा रही है।—लेखक

श्रीपं० कृष्ण कवि

पं० कृष्ण कवि सनाढ्य, ओरछा का जन्म और कविता-काल अनुमानतः क्रम से सं० १७४० और १७७५ वि० है। आप ओरछा-नरेश महाराजा उदोत-सिंह के आश्रित और दरबारी कवि थे। आपकी (१) धर्मसंवाद और (२) विदुर-प्रजागर का अनुवाद-नामक दो पुस्तकें अब तक देखी गई हैं। कविता आपकी सरस होती थी। उदाहरण—

(विदुर-प्रजागर) सं० १७६२ में रचित

सुमत - सदन सिंदुर - बदन एकदंत बरदान;
घन रुचि बिघन विपत्ति सब गनपत मोदिक पान।
बंदौं गुरु गोविंद के चरन-कमल सविलास;
कहौ जथामति बरन कछु, भारत मथि इतिहास।
धतराष्ट्र सौं विदुर ने कहौ कछुक संवाद;
कहत 'कृष्ण' भाषा बरन सुनत बिलाइ विषाद।

× × ×

(पद्धरि)

सुत भए तीन तिनके प्रचंड;
इक भीषम उदिति बल अखंड।

तिन तत्व सार जिय में विचार ;
निज राज छाँड़, पर पद निहार ।
सब विषय - वासना दई जार ;
उर धर्म धार नहिं करिय नार ।
दूजौ चित्रांगद तेज रुद्ध१ ;
गंधर्व साथ जिन करयर२ युद्ध ।
तहँ युद्ध करत तिहि भयौ काल ;
लघु भौ३ विचित्र वीरज नृपाल ।

× × ×

नृप विचित्र राजा भयौ तिहि कुल तेज - निधान ;
उदय-अस्त लगि अवनि४ पर तिनकी मानति आन ।

× × ×

रथ सरीर या पुरुष को, इंद्री ताके बाज ;
रथी विराजत आतमा चक्र मनोरथ साज ।
चक्र मनोरथ साज बाज अति चंचल आहीं ;
जितही कौं मुँह परै ऐंच५ िततहीं लै जाहीं ।
ज्ञान-रज्जु६ सों बाँधि धीर जो करै आप हथ७ ;
कठिन पंथ संसार भलै पहुँचे ताको रथ ।

× × ×

मुनि अरु सरिता मित्र महापुरुष को जनमफल ;
नारिन के जु चरित्र इनकी ओर न देखिए ।

---

१ रुद्ध = रुका हुआ । २ करय = किया । ३ भौ = हुआ । ४ अवनि = पृथ्वी । ५ ऐंच = खींचकर । ६ रज्जु = रस्सी । ७ हथ = हाथ ।

जो छत्री द्विज पूजा करै, दाता होय सीलपन धरै।
सरल सुभाव शांत में होई, वहुत काल छित१ पावै सोई।

फूली सुवरन फूल महि है बहु रतन समेत;
पंडित, सुभूपक, सुभट ये तीनो चुन लेत।
करम जो कीजत बुद्धि-बल तिनको उत्तम जान;
किए बाहुबल होत जे मध्यम तिनहि बखान।
अधम अधिक परजटन सें दहै भारु भर होत;
तीन भाँति महराज यौं कहियत करम उदोत।

---

१ छित = छिति, पृथ्वी।

श्रीपं० बोधा कविजी

पं० बोधाजी फ़ीरोज़ाबाद के सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपकी जन्म-तिथि आदि विवरण का पता नहीं लग सका है, किंतु अनुमानतः आपका जन्म सं० १८३० वि० के लगभग हुआ होगा, और इस प्रकार आपका कविता-काल सं० १८५० वि० और १८६० वि० के भीतर माना जाता है।

फ़ीरोज़ाबाद के पास रहना-नामक ग्राम में आपकी पैतृक भूमि थी, जो अब भी आपके वंशजों के अधिकार में है। आपके सोंजीराम और मौजीराम दो भाई, बलदेव, मनसाराम और डालचंद तीन पुत्र तथा टीकाराम-नामक पौत्र और गोपीलाल-नामक प्रपौत्र थे। आपका गोपीलाल-नामक प्रपौत्र अब भी जीवित है। ऐसा माननीय मिश्रबंधुओं ने लिखा है।

आपने बाग-विलास और बिरह-बारीश-नामक ग्रंथों की रचना की थी। इनके अतिरिक्त आपकी स्फुट कविताएँ भी बहुत-सी सुनी जाती हैं।

श्रीपं० बोधा कविजी

आपकी कविता के कुछ नमूने निम्न-लिखित हैं—

(बाग-बिलास)

श्रीफल१, बादाम, तूत२, आमन, जमीरी, आम,
खारक, खजूर, नीम, नीबू, तुन काम है;
करना, कनेर, बेर, सीस, सरों, गुलाचीन,
गूलर, गुलाब, ककरोंदा, कैंथ साज है।
बेल, बेला, केतकी, पलास, पीपलौ नरंगी,
कुंदन, कदंब, सेब, सेवती, समान है;
आवासिंह कहै बोधा जाके सम लेखियत,
सुरन निवास हेतु बागो बनराज है।
पाउँहौं गुपाल-गुन, गाउँहौं गोविंदजू के,
ध्याउँ शिवशंकर, मनाउँ गनपति को;
सारदा सहाई बुद्धि देई अधिकाइ हर,
करि दे सवाई महामाई मो मति को।
श्रीफल चढ़ाऊँ धूप, दीप धरि लाऊँ जल,
भगन निवास वाकदेव पोध सुत को;
परम पिरोजाबाद३ बाग महासिंहजू को,
लेऊँ मन पेड़ सो बनाई देऊँ गति को।

(बिरह-बारीश)

हित मिलि जानै तासों मिलिकै जनावै हेत,
हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिए;
होय मगरूर४ तापै दूनी मगरूरी कीजै,
लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिए।

---

१ श्रीफल = सीताफल। २ तूत = शहतूत, अतूत। ३ पिरोजाबाद = फीरोज़ाबाद (आगरा)। ४ मगरूर = अभिमानी, घमंडी।

बोधा कवि नीति को निबेरो१ यही भाँति अहै,
आपको सराहै ताहि आपहू सराहिए;
दाता कहा, सूर कहा, सुंदर सुजान कहा,
आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए।

स्फुट कविताएँ

एकै लिए चौंरी कर छत्र लिए एकै हाथ,
एकै छाँहगीर एकै दावन सकेलतीं;
एकै लिए पानदान पीकदान सीसा सीसी,
एकै लै गुलाबन की सीसी सीस मेलतीं।
बोधा कवि कोऊ बीन बाँसुरी सितार लिए,
लाड़िली लखावैं फूल गेंदन की केलतीं;
छोटे ब्रजराज, छोटी रावटी२ रँगीन तामें,
छोटी-छोटी छोहरी अहीरन की खेलतीं।

तुम जानति हौ जु अजान भई कहि आगे से उत्तर धावत हौ;
बतराति कछू औ कछू करतीं अनुराग की आँख दुरावत हो।
हमै काह परी जो मने करिहैं कवि बोधा कहै दुख पावत हो;
बदनामी की गैल बचाय चलौ बड़े बाप की बेटी कहावत हो।
तैं अब मेरी कही नहिं मानति राखति है उर जोम३ कछू री;
सो सबको छुटि जात भटू जब दूसरो मारि निकारत झूरी।
बोधा गुमान-भरी तब लौं फिरियो करौ जौ लौं लगी नहीं छूरी;
पूरी लगे लखु सूरन की चकचूर४ ह्वै जात सबै मगरूरी।

---

१ निबेरो = निर्वाह करनेवाला। २ रावटी=छोलदारी। ३ जोम= जोश, अहंकार। ४ चकचूर = चूरचूर, चकनाचूर।

अति खीन१ मृनाल२ के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है ;
सुई वेह३ ते द्वार सकी न तहाँ परतीति को टाँडो४ लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु५ ते चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है ;
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो६ है।

---

१ खीन=क्षीण, पतला। २ मृनाल=मृणाल, कमल की डंडी। ३ वेह=वेध, छेद। ४ टाँडो=लाद, बैलों पर गौने लादकर एक साथ सौ-पचास बैलों के समूह को लाद कहते हैं। ५ नेजहु=भाला से। धावनो=दौड़ना।

श्रीपं० ईश्वरजी दीक्षित

पं० ईश्वरजी दीक्षित का जन्म वि० सं० १८८५ के लगभग धवलपुर (धौलपुर) मे हुआ था। आप श्रीपं० भागीरथिजी दीक्षित के पौत्र तथा पं० मानिकरामजी दीक्षित के पुत्र थे। आपने अनेक ग्रंथों की रचना की है, और जान पड़ता है, आप अनेक विषयों के ज्ञाता रहे होंगे।

आपने संवत् १९०३ से सं० १९६१ वि० तक, अर्थात् ५६ वर्ष के समय में २७ ग्रंथ की रचना की थी, जिनमे कोई-कोई ग्रंथ तो बहुत ही बड़े हैं, जैसे भारतसार तथा वाल्मीकि का भाषानुवाद। श्रीपं० बिहारीदासजी मिश्र की बिहारी-सतसई पर भी आपने सवैया लिखे हैं, और प्रतीत होता है, यही ग्रंथ आपकी अंतिम रचना रही होगी। आपका रचना-काल प्रायः वि० सं० १९०३ से प्रारंभ होता है, और सं० १९६१ वि० में आपने सतसई के दोहों पर सवैया लिखे हैं। इस प्रकार यदि आपकी कविता-काल की प्रारभिक अवस्था १८ वर्ष ही मान ली जाय, तो लगभग ८० वर्ष की अवस्था में आपका यह अंतिम ग्रंथ बनना सिद्ध होता है, और इस प्रकार वि० १९७० के आस-पास तक, अर्थात् ८४-८५ वर्ष की अवस्था तक आपका जीवित रहना ठहरता है।

आपकी कविता साधारणतः अच्छी है, यद्यपि आपकी यथेष्ट कवित्व-शक्ति को निदर्शन कर सकने के लिये आपकी अन्य रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो सकी हैं, किंतु प्रस्तुत कविताएँ ही आपको अमर बनाए रखने के लिये यथेष्ट हैं।

बिहारी-सतसई के दोहों पर सवैया लिखने के पूर्व भूमिका-स्वरूप आपने थोड़े-से दोहों में अपना अभिप्राय, वंश-परिचय, अपने अन्य ग्रंथों का विवरण प्रकट किया है। पाठक देखें—

(दोहा)

बसत धवलपुर[1] नगर महँ दुजबंसी[2] सुखलाल ;
भवनसिंघ तिनके तनय सब बिधि बुद्धि-बिसाल।
पुत्र मनोहरसिंघ तिहिं मे कवित्त-रस-लीन ;
सुकबि बिहारीदास की पढ़ि सतसई प्रवीन।
दुज सनाढ्य दीच्छित-सुकुल गोत्र सु भारद्वाज ,
रहत धवलपुर नगर महँ भागीरथि सुख साज।
तिहिं सुत मानिकराम भे तिहि सुत ईस्वर नाम ;
कह्यौ मनोहरसिंघ नै तिन सौं बचन ललाम[3]।
अति हित अति आदर-सहित अति मन मोद बढ़ाइ ;
करहु सतसई के सरस कवित सरस रस छाइ।
संवत आतम रितु भगति सूरज-रथ कौ चक्र ;
भादव[4] सुदि[5] नवमी दिने अर्क[6] वार वर नक्र।

---

१ धवलपुर = (धौलपुर)। २ दुजबंसी = ब्राह्मण, द्विज वंशवाले। ३ ललाम = सुंदर, मनोहर, श्रेष्ठ, उत्तम। ४ भादव = भाद्रपद। ५ सुदि = शुक्लपच्छ। ६ अर्क = सूर्य।

इसी ग्रंथ के अंत में आपने ये १४ दोहे लिखे हैं—

सुकबि बिहारीदास ने करी१ सतसई गाइ ;
ताके२ सँग में कृष्ण कबि कीने कबित लगाइ ।
सोई लखि ईश्वर सुकबि मन में कियौ बिचार ;
तबई३ मनोहरसिंघ नै अति आदर-बिस्तार ।
ईश्वर कबि सौं यौं कह्यौ जो उनके मन माँह ;
करे सवैया सब रचे दोहा प्रति निज राह ।
चतुर याहि समुझैं, सुनैं, गुनैं रसिक मतिवंत ;
देखैं दूषन धर कुकबि, मूरख देखि हँसंत ।
उनसठि बरस मँझार४ मैं करे ग्रंथ सुन लेहु ;
संवत विक्रम तीनि तैं५ इकसठि लौ गुनि लेहु ।
प्रथम समरसागर१ कियौ, सांबयुद्ध२ सुखकंद ;
फिरि अनिरुद्ध-बिलास३ हम कह्यौ सबै बिधि सुद्ध ।
कोक कलानिधि४ जानियै, प्रेम-पयोनिधि५ फेरि ;
काम कल्पतरु६ लै बहुरि, भावअब्धि७ कौं हेरि ।
रितुप्रबोध८ मनबोध कहि, वैद्य सुजीवन९ जानि ;
कालज्ञान१० भाषा कियो अमरकोष११ मनमानि ।
भक्ति रत्नमाला१२ करी, ध्यान कौमुदी१३ जानि ;
नखशिख१४अहि-लीला१५ललित कीनी बुद्धि प्रमानि ।
ध्वनि व्यंग्यारथ१६चंद्रिका, चित्रकौमुदी१७ जोग ;
भारथसार१८ बनाइयौ मेटन सकल प्रयोग ।
जमक सतसई१९ करि करी क्रमचंद्रिका२० विशेषि ;

---

१ करी = की, रची । २ ताके = उसके । ३ तबई = तबहीं । ४ मँझार = बीच में । ५ तैं = से ।

कृष्णचंद्रिका२१ सरस करि कृष्ण-सुहयमप२२ लेषि ।
बहु-पुरान-मत पाइ किय राधा-रहस२३ बनाइ;
बालमीकि भाषा२४ कियौ आदिउपांत१ सुभाइ ।
रामचंद्रिका कौ कियौ टीका२५ सरस बनाइ;
रसिकप्रिया२६ कौ तैसही२ कह्यौ सरस मन लाइ ।
करे बिहारीदास की सतसई पर रस-भोइ३;
नाम सवैया छंद किय आन४ छन्द नहिं होइ ।

सतसई के दोहे पर सवैया का भी नमूना देख लीजिए—

(दोहा)

पारयौ सोरु५ सुहाग कौ६, इन बिनुहीं पिय-नेह;
उनदौंहीं७ अँखियाँ ककै८ कै९ अलसौंही१० देह ।

(बिहारी)

(सवैया)

देखि कै आवत बाल-बधू बलरानी सबै करि आप सनेह है;
ईश्वर देखौ करै मिस कैसे हरै मन मारुत यौं नभ मेह है ।
पीतम ही बिन पारयौ सुहाग कौ यानै धरी अब ही करि नेह है;
कीनी उनींदी भली अँखियाँ अरु सोहैं करी अलसौंही-सी देह है ।

---

१ आदिउपांत = आद्योपांत, प्रारंभ से लेकर अंत तक, संपूर्ण । २ तैसही = तैसेही, उसी प्रकार । ३ रसभोइ = सरस, रस से भीगे हुए । ४ आन = अन्य । ५ पारयौ सोरु (सोर पारयौ) = ख्याति फैला दी, मशहूर कर दिया । ६ सुहाग कौ = सौभाग्य का, सुहागिन होने का । ७ उनदौंहीं = उनींदी, ऊँघी हुई । ८ ककै = करके । ९ कै = या । १० अलसौंही = अलसाई हुई ।

श्रीपं० देवीप्रसादजी थापक

श्री
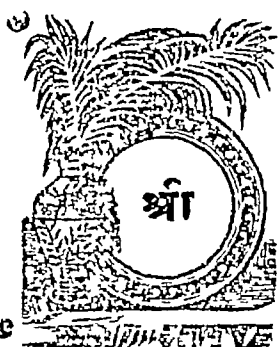
पं० देवीप्रसादजी थापक का जन्म फ़र्रुख़ाबाद प्रांतांतर्गत नीमकड़ोरी परगने के हमीरखेड़ा ग्राम में वि० संवत् १८६० के लगभग हुआ था। हिंदी-उर्दू-वर्नाक्यूलर मिडिल-परीक्षाओं में सफलता-पूर्वक उत्तीर्ण होने पर शिक्षा-विभाग में आपने प्रवेश किया। अनेक स्थानों पर सहकारी अध्यापक रहकर आप सं० १६२० वि० के लगभग कालपी-वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक (हेडमास्टर) होकर आए, और बड़ी ही योग्यता-पूर्वक आपने यहाँ पर कार्य किया। आपसे शिक्षा पाए हुए आपके अनेक शिष्य कालपी में अब भी विद्यमान हैं, और आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

सं० १६३५ वि० में सहकारी अध्यापक होकर आप नार्मल स्कूल, झाँसी में गए, और वहाँ भी आपने ऐसी तत्परता और लगन से कार्य किया कि आप वहाँ सं० १६४३ वि० में प्रधानाध्यापक बना दिए गए। फिर आप सं० १६४५ वि० में डिप्टी-इंस्पेक्टर ऑफ़् स्कूल्स हो गए।

आपके जगन्नाथप्रसाद, दुर्गाप्रसाद और गणेशप्रसाद-

नामक तीन पुत्र थे, और सुनते हैं, थापकजी ही के समय में उनके ये पुत्र विद्याभ्यास समाप्त करके अच्छे-अच्छे पदों पर पहुँच गए थे।

आपको कविता का व्यसन-सा था, अतः बड़ी ही सुंदर कविता आप तत्काल ही कर दिया करते थे। विद्यार्थियों के लिये आपने भूगोल आदि के कठिन अंशों को छंदोबद्ध कर दिया था, जिनको कंठ कर लेने से सहज ही में विद्यार्थी उनका आशय समझ लेते थे। और भी बहुत-सी फुटकर कविताएँ प्रायः आप लिखा ही करते थे।

कालपी में सं० १६२६ वि० में आपने 'मनविनोद' और सं० १६२८ वि० में 'ध्यानमाला' नाम की पुस्तकों की रचना की थी। सुनते हैं, ये पुस्तकें चिंतामणि बुकसेलर, फर्रुखाबाद द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी थीं, किंतु मुझे प्राप्त न हो सकीं। उनकी प्रतिलिपि मुझे यहाँ थापकजी के पढ़ाए हुए वयोवृद्ध प० देवीप्रसादजी जैतली (सारस्वत) द्वारा देखने को मिली हैं। पाठकों के मनोरंजनार्थ इन ग्रंथों की कविताएँ हम आगे चलकर उद्धृत करेंगे। यहाँ पर हम थापकजी के समकालीन कालपी-निवासी विद्वद्वर प० मन्नूलालजी मिश्र (रामायणी) की सम्मति नीचे लिखते हैं। देखिए, आपकी कविता के लिये यह महानुभाव क्या कहते हैं—

श्रीमन् 'दीन' प्रवीन बड़े कविरामन की मति नाप गए अब ;
मह बिधि ज्ञान नहीं उनको, जिन वेदहु शास्त्र पुराण पढ़े सब।

नाम यथारथ ग्रंथ रच्यो, चित दै समुझै अति बुद्धि बढ़ै तब ;
'दीन' कवीश्वर की कविता सुर की सविता-सम पावत है छब।

× × ×

अति दूसरी होय तो आप कहाँ, हम तो लिखके करिहैं श्रम ना ;
मति थोर करौ बहु काम मरौ, सब शास्त्रन कौ मति है कम ना।
बुद्धि, विचार, विवेक बढ़ै, समझै, हर एकन की गमना ;
छवि दीन कवीश्वर की कविता छवि पावत है जग ज्यों जमना।

वास्तव में आपकी कविता बड़ी ही सरल, सुबोध और मनोहर है।

आप कई ग्रंथ के रचयिता कहे जाते हैं, किंतु 'मनविनोद' और 'ध्यानमाला' के अतिरिक्त और ग्रंथों का पता नहीं मिल सका। यहाँ तक कि आपकी फुटकर कविताएँ भी उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।

मनोविनोद के आपने दो भाग किए हैं—पूर्वार्द्ध में विद्या की प्रशंसा, मनुष्य की अवस्था, सत्संग, श्रम और संपत्ति, मृदु भाषण, प्रीति और विरोध, प्रातजागरण, मित व्ययता, भूगोल आदि के संबंध में सुंदर वर्णन हैं। उत्तरार्द्ध में तन-मन की सुंदरता, मौनता आदि के शीर्षक देकर दोहा चौपाइयों में उदाहरण-सहित उपदेश-प्रद वर्णन हैं। प्रत्येक विषय के अंत में सारांश भी उपदेश के लिये 'फल'-शीर्षक देकर दोहा-चौपाइयों में लिख दिया है। जैसे—

जो नर सज्जन जगत महँ, यह चाहत नित सोय ;
होहिं विवेकी सकल नर, दुर्जन रहै न कोय।

ध्यानमाला स्तोत्र की भाँति ध्यान और पाठ करनेवाली पुस्तकों की तरह है। हनुमान-चालीसा आदि पुस्तकों की तरह यह पुस्तक भी विशेषतः रामोपासक तथा साधारणतः सर्व-साधारण के बड़े ही काम की है। कहीं-कहीं तो चौपाइयों को आपने गोस्वामी तुलसीदासजी की चौपाइयों से बिलकुल ही मिला दिया है।

आपकी रचनाओं के उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

मनविनोद

संसार की असारता—

(सवैया)

पहले जग को न हतो१ कछु२ रूप न सूरज, चंद्र, न वायु३ बहै ;
न दिशा दस भूमि न वारि न व्योम४, पताल न तो, यह वेद कहै।
न रहैं दिन-रैन, घड़ी-पलहू, कवि 'दीन' अलौकिक५ भेद लहै ;
न रहैं कोउ लोक, न ते सुख-शोक सु केवल ईश्वर एक रहै ॥ १ ॥
पहले हरि केवल एक हतो, तिहिते फिर लोक अनेक बने ;
पृथवी, रवि, चंद्र, नक्षत्र सभी, कहँ लौं बरनौं नहिं जात गिने।
न परै कछु जानि रचे किहि कारण मैं करि दीख विचार घने६ ;
मन की गति हीन भई 'कवि दीन', मिटे अनुमान७ करे जितने ॥ २ ॥
उपजे जग में पृथु-से महिपाल सुनाम परो तिनसे धरनी को ;
भट और भए जग रावण-से तिनहूँ बहु भोग कियो सुख जी को।

१ हतो = था। २ कछु = कुछ। ३ वायु = हवा। ४ व्योम = आकाश। ५ अलौकिक = अद्भुत, अनोखा। ६ करि दीख विचार घने = बहुत विचार करके देख लिया। ७ अनुमान = विचार, अटकल, क़यास।

पुनि यादव, कौरव, पांडव हू न रहे तजि दीन गए जग नीको ;
खरा खोटा भलो दोउ नाम परे फल है अपनी-अपनी करनी को ॥ ३ ॥
न रहे मनु कोउ चतुर्दश में धरनी धन-धाम गए सब खोई ;
न रहे रघु-से अज१-से बलवंत, रहे न ययाति युधिष्ठिर सोई ।
न रहे नृप विक्रम हू जग में 'कवि दीन' रहे न भए नर जोई ;
तिमि देह धरे जग में जितने, तिनमें मन अंत रहै नहिं कोई ॥ ४ ॥

(कुंडलिया)

छुटि है यह संसार सब, देह-गेह, धन-धाम ;
तात-मात, परिवार, सुत, मित्र-शत्रु, पुर-ग्राम ।
मित्र-शत्रु पुर-ग्राम साथ चलि है नहिं कोई ;
राज-पाट गढ़-कोट फौज कितनी किनि२ होई ।
'दीन' वृथा सब जानु अंत पर जब यम लुटि है ;
तब न साथ कोउ चलै, मूढ़ मन ! सब जग छुटि है ।

(दोहा)

कहौ अल्प मुख सन बचन, गहौ मौन की टेक ;
जो रसना बस ना भई, तो जस ना जग एक ।

(सवैया)

वीर सोई, अति धीर सोई, पर पीर हरै, न करै कदराई३ ;
प्रीति सोई, हित रीति सोई, छल छोड़ि मिलै मन मोद बढ़ाई ।
लाज सोई, मर्याद सोई, अपनी 'कवि दीन' करै न बड़ाई ;
ज्ञान सोई, गुणवान सोई, जु भजै हरि के पद प्रेम लगाई ।
मूढ़ सोई, बड़ कूर सोई, सठ पूर सोई जो वृथा दिन खोवै ;
हीन सोई, मति छीन सोई, छवि-हीन सोई नर प्रात जु सोवै ।

---

१ अज=ब्रह्मा, शिव । २ किनि = क्यों न । ३ कदराई = कायरता ।

छोट सोई, बड़ खोट सोई, कवि दीन न जासु दया चित होवै ;
अंध सोई, मतिमंद सोई, धन जोरि के धर्म को बीज न बोवै।

(छप्पय)

गुरु सन करै न द्रोह, नेह सठ सन नहिं कीजे ;
नृप सन करै न रार१, मित्र सन कपट न कीजे।
सुत सन करै न हास२, वृद्ध-उपहास न कीजे ;
कवि सन करै न वैर, शत्रु-विश्वास न कीजे।
कहि 'दीन' न दीजे कबहुँ दुख, प्रिय-जिय-सम जानिय सबहि ;
परवीन, गुनी, ज्ञानी, बली, इन सब कहँ दीजे तरहि३।

(सवैया)

नासत जोग पढ़े बिन लोक में, नासत हैं सुत लाड़ करे से ;
नासत शील कुसंग करें, नृप नासत सद्य४ अनीति करे से।
नासत नेह विदेश बसें 'कवि दीन' नसै कुल पाप करे से ;
नासत संपति त्याग करें, सब काज नसें अति क्रोध करे से।

× × ×

संपति औषधि मंत्र बिचारहु, आयुष औ ग्रह छिद्र जो होई ;
औगुण देखहु औरनु के, निज दान करै अपमान जो कोई।
'दीन' कहै दुख हू जो परै अरु भाँति अनेकन को सुख होई ;
मौन रहै, इनको न कहै, यह सीख गहै नर उत्तम सोई।

× × ×

लाज करै नहिं गान समय अरु लाज करै न गए रण माँहीं ;
भोजन में कछु लाज कहा जिहि ते सब अंग सदा हरियाहीं।

---

१ रार = तकरार, झगड़ा। २ हास = हँसी। ३ तरहि = उपेक्षा करना। ४ सद्य = तत्काल।

'दीन' कहै प्रतिवाद करै जब, काम कछू तब लाज को नाहीं ;
पुस्तक बाँचत लाज तजै, पढ़िबे महँ लाज किए भल नाहीं।

(छप्पय)

मलिन करै नहिं चित्त यदपि संकट हो भारी ;
धीर धरै, गंभीर गिनै मन से नहिं हारी।
करै न मन अभिमान, पाइ धन, बल, छवि प्यारी ;
जरै न परहित देखि 'दीन' यह कहत पुकारी।
यह अति उत्तम वचन मम सुनहु सजग१ करि शुद्ध चित ;
परिहरि सब मद, मान, छल, सबहि मनुज सन करिय हित।

(सवैया)

जा बस विश्व रचै बिनसै निशि-द्यौस२ सदा प्रतिपालतु जोई ;
जासु अनुग्रह ते सब सृष्टि लहै सुख जानत है सब कोई।
जो सब जानत है मन की 'कवि दीन' अनाथ को नाथ है जोई ;
त्यागि विषय भजु ताहि निरतर३, अंतर४ को हरिहै दुख सोई।

ध्यानमाला

(दोहा)

जै गणेश, गिरजासुवन५ मैं जाचतु हौं तोहि
करहु कृपा जन जानिके, देहु बुद्धि बल मोहि।
मन ममता त्यागे नहीं, जग में रह्यो भुलाय ;
'दीन' राम के शरण बिन यह भव-रोग न जाइ।

---

१ सजग = सचेत । २ द्यौस = दिवस, दिन । ३ निरंतर और अंतर शब्द सुंदरता से व्यवहृत किए हैं । ४ अंतर = भीतर, हृदय । ५ सुवन=पुत्र ।

(चौपाई)

सुंदर बदन कमल दल लोचन ;
प्रनतपाल भव-सोच-विमोचन ।
स्याम गात पीतांबर-धारी ;
निसि दिन जपत जाहि त्रिपुरारी ।
रघुकुल-तिलक सकल गुणखानी ;
राम-लखन धनु सर धर पानी ।
कोमल बदन भक्त-हितकारी ;
असुर-निकंदन मुनि-भय-हारी ।
बाल-चरित अति सुगम अपारा ;
सुमिरत मनुज होत भव पारा ।
मातु गोद सब प्रमुदित लेहीं ;
देखि बिसारि दसा निज देहीं ।
सोहत सीस बार घुँघुवारे ;
बोलत बैन लगत अति प्यारे ।
'दीन' भजन अब ताको कीजे ;
मोह-लोभ-ममता तज दीजे ।
कटि-किंकिनि[1] धुनि नपुर अति उर मुक्तामणि-माल ;
हेम[2]-खचित मृग चौक जहँ, तहँ खेलत युग बाल ।
कंबु[3] कंठ दोउ भुजा विसाला ;
सोहत हृदय मनोहर माला ।
त्रिवली[4] नाभि गँभीर सुहाई ;
उपमा बिन कवि रहे लजाई ।

१ कटि-किंकिनि=कमर की करधौनी । २ हेम=सोना ।
३ कंबु=शंख । ४ त्रिवली=तीन बलवाली ।

कोमल अरुन बरन पद कंजा;
ध्यावत जिनहिं देव-मुनि-पंजा१।
भजहु राम-पद ते चित लाई;
नर-तन बीच लाभ यह भाई।

× × ×

(सोरठा)

शिव देखेउ शिशु-रूप, राम धाम छवि-ग्राम-गुण;
काकभुसुंडि अनूप, ध्यावत पद-पंकज सदा।

(दोहा)

अवधिपुरी उत्तम अधिक, निर्मल सरजू-नीर;
वापी२, कूप३, तड़ाग४ बहु, डोलत त्रिबिध समीर।

× × ×

यह पुस्तक कवि 'दीन' ने लिखी सुअवसर पाइ;
जो पढ़ि है सो सुख लहै, भ्रम संसय मिटि जाइ।

(छंद)

द्वितिय भाद्रपद शुक्ल तीज तिथि रवि दिन अति सुखदाई;
संवत उनइस सौ अट्ठाइस पुस्तक लिखी सुहाई।
'दीन' गुप्त५ है, परो६ नाम देवीप्रसाद पुनि सोई;
रची लिखी यह पुस्तक अनुपम जानि लेहु सब कोई।

---

१ पंजा=पुंजा, पुंज, समूह। २ वापी=बावरी, बावड़ी। ३ कूप=कुँआ। ४ तड़ाग=तालाब। ५ 'दीन' गुप्त=उपनाम 'दीन' है। यह आशय है। ६ परो=हुआ।

श्रीपं० राधालालजी गोस्वामी

श्री पं० राधालालजी गोस्वामी का जन्म सं० १६०४ वि० में, दतिया में, हुआ था। आपके पिताजी का शुभ नाम पं० गोवर्द्धनदासजी गोस्वामी था। आप व्यास-वंशी वशिष्ठगोत्रीय गोस्वामी हैं। आपकी शाखा माध्यंदिनी है। दतिया में आपका वंश बुंदेलों के राजगुरु के नाम से प्रसिद्ध है। आप दतिया और पन्ना-नरेशों के राजगुरु भी थे।

आप भागवत के अच्छे वक्ता और पक्के कर्मकांडी पंडित थे। ज्योतिष, व्याकरण और पुराण आदि के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत और हिंदी-साहित्य के ग्रंथों का आपने अच्छा अध्ययन किया था। आपकी अवस्था का विचार करते हुए, आपके नित्यप्रति के परिश्रम और अध्यवसाय को देखकर, दंग होकर रह जाना पड़ता था। सन् १६२४ की बात है, मैं पोस्टमास्टर होकर कुछ दिन के लिये दतिया पहुँचा, गर्मी के दिन थे। सध्या-समय घूमकर लौटने के पश्चात् भी कुछ लिखने-पढ़ने की इच्छा नहीं होती थी। बड़ी गर्मी पड़ रही थी। मैंने सोचा,

चलो गोस्वामीजी के यहाँ चलकर कविताओं से मनोरंजन किया जावे। अतः अपने एक मित्र के साथ मैं गोस्वामीजी के घर पर पहुँचा, तो उनको एक पुस्तक लिखते हुए पाया। हम लोगों को देखते ही उन्होंने लेखनी एक ओर रख दी, और अपनी स्वाभाविक मुस्कान और मीठे शब्दों से हम लोगों का स्वागत करके अपने पास बिठलाया। मैंने कहा—"गोस्वामीजी, आप वास्तव में तपस्वी हैं। ऐसी कठिन गर्मी मे भी आपसे कैसे लिखा जाता है।" आपने हँसते हुए उत्तर दिया—"आप तो स्वयं लेखक हैं, इसका स्वयं अनुभव करते होंगे।" फिर दो-तीन घंटे तक इधर-उधर की बातें, कविता-पाठ आदि होती रहीं। कहने का तात्पर्य यह कि जीवन-भर आपने गृहस्थी के अन्य कार्यों के साथ-ही-साथ अविराम साहित्य-सेवा की है, और संस्कृत, ब्रजभाषा दोनो ही में आपने लगभग १०-१२ बड़े ही महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ लिखे हैं।

गोस्वामीजी कर्मकांडी तो इतने दृढ़ थे कि गोलोक-वास करने के दिन तक आपने अपने नित्य-नियम के अनुसार संध्या-पूजन और भजन किया था।

जातीय कार्यों में आप सदैव ही बड़ी तत्परता से भाग लेते थे। सं० १९८० और सं० १९८१ वि० में 'बुंदेलखंड-प्रांतीय सनाढ्य-मंडल' के प्रथम और द्वितीय अधिवेशन आप ही के सभापतित्व में हुए थे। आपका भाषण बड़ा ही गंभीर और मनोहर होता था।

कविवर बा० मैथिलीशरणजी गुप्त के आप संस्कृत और कविता-गुरु भी थे । आप प्राकृतिक कवि थे । आप ख्याति से कोसों दूर रहते थे, और यही कारण है कि हिंदी-संसार में जितना सम्मान आपको मिलना चाहिए था, उतना नहीं मिल सका ।

आपका शरीर-पात सं० १९८९ वि० में हो गया ।

आपके चार पुत्र, अनेक पौत्र और प्रपौत्र दतिया में अब भी विद्यमान हैं ।

गोस्वामीजी संस्कृत तथा व्रजभाषा के बड़े ही अच्छे कवि थे । आपने सस्कृत तथा व्रजभाषा दोनो ही में १०-१२ बड़े ही महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ लिखे हैं । किंतु दो-एक को छोड़कर अवशेष सब अभी अप्रकाशित ही हैं, और गोस्वामीजी के वंशजों के अधिकार में हैं । ग्रंथ सचमुच ही प्रकाशति होने योग्य हैं ।

उनकी नामावली निम्न-लिखित है—

संस्कृत के ग्रंथ

(१) श्रीयुगलकिशोरमानसीपूजनम् ।
(२) श्रीराधापद्यपुष्पांजलिः ।
(३) श्रीकृष्णपद्यपुष्पांजलिः ।
(४) श्रीयुगलकिशोरमहिमन् ।
(५) श्रीगोपालस्मरणीस्तोत्र ।

(६) श्रीयोगसायास्तवराज ।

(७) श्रीअनन्य संध्या ।

(८) श्रीराधाकृष्ण-सौंदर्य-सागर ।

इसमें अंतिम ग्रंथ 'श्रीराधाकृष्ण-सौंदर्य-सागर' बहुत ही बड़ा है। दंडक पद्य और गद्य दोनो में है। इसमें वास्तव में आपने गागर में सागर भर दिया है, और इसी हेतु यह कुछ क्लिष्ट भी हो गया है। यदि गोस्वामीजी इस पर कुछ टीका-टिप्पणी और कर जाते, तो अत्युत्तम होता।

व्रजभाषा के ग्रंथ

(१) श्रीराधाभूषण-अलंकार—इसमे आपने अलंकार व नायिका-भेद क्रम से संग ही वर्णन किए हैं। दोहों में आपने अलंकार व नायिका का लक्षण कहा है, और उदाहरण में एक कवित्त और एक दोहा भी लिखा है। यह भी ग्रंथ आपका बहुत ही बड़ा है। वास्तव में इसमे आपने बड़ा ही श्रम किया।

(२) प्रेम सुधा—इसमें आपने प्रेम दो प्रकार से वर्णन किया है। प्रथम लौकिक और दूसरा अलौकिक। संसार में भले-बुरे काम करने का कारण प्रेम है, अतः यह सब अलौकिक प्रेम है। वेही काम यदि 'कृष्णार्पणमस्तु' कहकर या भगवान् को अर्पण करके किए जायँ, तो अलौकिक प्रेममय होकर मुक्ति के देनेवाले होते हैं। इत्यादि।

इनके अतिरिक्त समय-समय पर की गई समस्याओं की

पूर्तियों तथा अन्य कविताओं का भी आपके वंशधरों के पास आपका यथेष्ट संग्रह है। अनेक स्थलों पर आपको समस्या-पूर्तियों के उपलक्ष में सम्मान-पत्र और स्वर्ण-पदक भी मिले हैं।

आपकी सुकविताओं के उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

संस्कृत-काव्य

(युगलजागरणपद्यम्)

श्रीकिशोरि, श्रीकिशोर, जागृतं प्रभाते।
गुंजित मधुपालि-युक्त, सरसीरुहवृंदजनित,
शीतल सुगंधि मंद सानुकूल वाते।
युष्मत सेवोत्कृष्ट प्रेमयुता श्रीललिता—
श्रीविशाखाद्यष्ट सखी गणायाते,
ब्रह्मादिक देवगणाः किन्नरगन्धर्वगणै—
सह खे निर्मल गुणान् गायंतो गाते।
राधालालो हि भणत्युत्थापनपद्यमिदं
यो गायति तस्मै शं दंपती ददाते १।

भावार्थ—१ हे किशोरी, हे किशोर, प्रभात हो गया, जागिए। गूँजती हुई भ्रमरावली-सहित कमलों के स्पर्श से उत्पन्न हुआ शीतल, सुगंधित और मंद अतएव अनुकूल वायु चल रहा है। आपकी सेवा के लिये उत्कृष्ट प्रेम-युक्त श्रीललिता, श्रीविशाखा आदि आठो सखियों का गण आ गया है। किन्नर और गंधर्वगणों के साथ ब्रह्मादिक देवगण आकाश में निर्मल गुणों को गा रहे हैं। राधालाल ने यह जागरण का पद्य बनाया है, जो उसे गाता है, उसे युगल (श्रीराधा-कृष्ण) सुख देते हैं।

× × ×

श्रीयुगलमहिम्नस्तोत्रम्

(शिखरिणीवृत्तम्)

भजे राधाकृष्णौ परतम विभू विश्वजनकौ ;
स्वकीये गोलोके प्रियनिजसखीरासरसिकौ ।
तथा वृंदारण्ये सुरतरुलताकुंजकलिते ;
महारासे पूर्णे कृतविविधलीलौ प्रियतमौ१ ।
विधीशाद्या देवाः कपिलसनकानारदमुखाः ;
चतुर्वेदा व्यासप्रभृति मुनिवाल्मीककवयः ।
महिम्नः पारं वां यदपि महतोऽद्यापि न गताः ;
यथाशक्त्युत्कंठस्तवनमहमेतं च विदधे२ ।
महिम्नः सिंधौ वां विधिहरसुराः सर्व कवयो ;
निमज्योन्मज्यापि स्तुतिमपि यथाशक्ति विदधुः ।

---

१ मैं राधाकृष्ण का भजन करता हूँ, जो अत्यंत विभु हैं, संसार के जनक हैं। अपने गोलोक में अपनी प्रियसखी के रास के रसिक हैं, तथा कल्पवृक्ष की पूर्ण लताओं के कुंज से सुशोभित वृंदावन के महारास में जिन्होंने विविध लीलाएँ की हैं, एवं जो अतीव प्रिय हैं।

× × ×

२ आपकी अपार महिमा के पार को ब्रह्मा, ईश आदि शेष, कपिल, सनक एवं नारदादि प्रमुख महर्षि, चारो वेद, व्यास प्रभृति मुनि, वाल्मीकि आदि कवि भी अब तक नहीं प्राप्त कर सके हैं, किंतु मैं उत्कंठा से प्रेरित होकर यथाशक्ति स्तवन करता हूँ।

× × ×

कलावित्थं वाग्भिर्विबुधुरथ सफलञ्च वचन—
 न्त्वयेयं मे वाणी भवतु सफला दीन तमनुः३ ।
सदा प्रातः साय विधिविधुहरेंद्रादि सुमनो ;
 विमानैर्गोलोको लसति विविधैर्हेमरचितैः ।
यथाशक्तिस्तुत्वा विनतिमथवाञ्चक्रुरमरा—
 स्वयं गोलोकेसौ जयति भवदैश्वर्यमहिमा४ ।
यदा यामिच्छेयं भवति नरनारीमयजगत् ;
 सुसृष्ट्वा त्रैगुण्यं शुभयुगललीलां सहृदयौ ।
सदा कुर्यावेति प्रथमवरनारायणतनुं ;
 स लक्ष्मीकां कृत्वार्णव इत उभौ शेषशयनम्५ ।
ततो लक्ष्मीनारायणसुभगनाभ्युत्थकमला—
 जगद्बीजाब्जोभौ सममजनिषातां श्रुतिविधी ।

---

३ जिस प्रकार आपकी महिमा के समुद्र में ब्रह्मा, महेश आदि देव और सर्व कवि भी निमज्जन और उन्मज्जन करके स्तवन कर सके हैं, एवं कलिकाल में कवियों ने अपनी वाणी को सफल किया है, इसी प्रकार इस दीनतम जन की भी वाणी सफल हो ।

४ प्रातः और साय, सर्वदा ब्रह्मा, चंद्रमा, महेश आदि देवों के स्वर्ण-रचित नाना प्रकार के विमानों द्वारा गोलोक शोभित रहता है। और देव यथाशक्ति स्तवन करके आपको प्रणाम करते हैं। गोलोक में आपके ऐश्वर्य की यह महिमा सर्वोत्कृष्ट रहे ।

५ जब आपकी यह इच्छा होती है, तब आप त्रिगुणमय नर-नारी-सहित इस संसार की रचना करके प्रेम-पूर्वक शुभ युगल लीला करते हैं। और लक्ष्मी-सहित प्रथम ही श्रेष्ठ नारायण के शरीर को धारण कर क्षीर-सागर में शेष के ऊपर आप दोनो शयन करते हैं।

रजो वृद्धि यातौ श्रुतिभवपरब्रह्मयुगलौ ;
सशाखाशाखांगत्रिभुवनसुविस्तारसहितौ६ ।

इत्यादि ।

विस्तार-भय के कारण अब अधिक उदाहरण आपकी संस्कृत की रचनाओं के नहीं दिए जा रहे हैं। सच्चा आनंद तो आपके ग्रंथों को देखने ही से मिल सकता है। अब आपकी हिंदी की कविताओं का भी नमूना देख लीजिए।

उदाहरण—

व्रजभाषाकाव्यम् अतिशयोक्ति अलंकार
(प्रौढ़ा धीरा नायिका का उदाहरण)

आज दिन ही में नील गिरि पै कलानिधि१ कौ,
दरश भयौ है अहि मुक्तागण तामे है ;
धनुमय चकित छौ क्षुधित तहाँहूँ भृंग,
कुंद२-कलिका-समेत बिंबफल वामे है ।
'राधालाल' बाल कहै ऐसो भोर३ सपनो भौ,
है शुभ सूचक क्यों, आप मिलन जामे है ;
चलौ केलि-मंदिर पी बोले संग आपी४ चलौ,
स्वाँस लै कही यों मोहि जानैं शिवधामे है ।

---

६ वृंदा के रूप को धारण करनेवाली और अतीव चतुर शारदा का भजन करता हूँ। जिन्होंने दिव्य स्वर्गीय लताओं के वितान के पुंज, उत्तम-उत्तम निकुंज, अत्यंत समृद्ध रत्न के निकर एवं रौप्य महलों की रचना की थी एवं जिन्होंने श्रीकृष्णचंद्रजी और राधिकाजी का श्रेष्ठ भूषण से शृंगार किया था।

१ कलानिधि = चंद्रमा। २ कुंद = एक प्रकार का सफ़ेद फूल, मोगरा। ३ भोर = प्रातःकाल। ४ आपी = आप ही।

विभावना अलंकार (रूपगर्विता नायिका का उदाहरण)

आली मैं न जानौं ये अचरज कहा है मो मैं,
काहू को भए न और काहू को सु ह्वै हैं ना ;
बोलत ही मेरे पिक मोर बोल-बोल उठैं,
मोहि देख फल पै मलिंद पुंज रैहैं ना।
'राधालाल' मेरी जौ न मानौ तो निश्चय करौ,
साँच कौन आँच झूँठी बातैं ते बनैहैं ना ;
हेतु बिन बाँधे अपराध हीन छोवौ हूनै,
मेरे पास रैहैं ये चकोर अंत जैहैं ना।

प्रहर्षण अलंकार (प्रौढ़ा खंडिता नायिका का उदाहरण)

कौन अति चतुर बनायो ये अनूप वेस,
नैन तो कुसुंभी[1] किए ओंठ कजरारे से ;
भाल पै महावर सो मंगल स्वरूप सोहै,
कुंकुम[2] सोहात पीत रंग रँग धारे से।
'राधालाल' आरसी लै देखौ निज रूप आप,
मैं ही देख पाए औ न काहू ने निहारे से ;
रिसाने से, ठगाने से, बिकाने से, बिमोहे से,
हारे, मार मारे से, पिया ही का हमारे से।

अलंकार पूर्व रूप (प्रौढ़ा वासकसज्जा नायिका का उदाहरण)

सुमन समार सेज सौध मैं सिंगार करै,
सोहत सरोज नैन सुर्मा रेख खींची सौं ;
भूषण - बसन - युत अंग तैं सुगंध छूटैं,
आयो है सुगंधी पौन मानौ सो बगीचे सौं।

---

१ कुसुंभी = लाल फूल। २ कुंकुम = केशर, रोरी।

'राधालाल' पी के मिलिबे की वढ़ी मोद-नदी,
आली निज आलिन को सींचै तिहि बीचै सौं ;
हीर हार हरी कंचुकी१ सौं हरौ होत फेर,
सोतौ होत सेत मंद हास की मरीची सौं ।

अलंकार पूर्व रूप (प्रौढ़ा वासकसज्जा नायिका का उदाहरण)

खेल शतरंज के में प्यारी दीनीं किस्त एक,
ताके रोकिबे कौ गह्यौ पी ने कर - कंजु है ;
चाल कौ न फेर बाँको नैन लाल फर्फरात,
मानो मखतूल जाल फँसी मीन मंजु है ।
'राधालाल' राधिका ने मुहर फेंक मोरो मुख,
श्याम कहैं जानी ये सांती शतरंज है ;
नैननि में बैननि में दीखै मोहिं सैननि में,
जाके खेलवे सौं रोम - रोम रंज पुंज है ।

(मुग्धा नायिका का उदाहरण)

(सवैया)

सुंदरि ! तो मुख की छबि की वढ़ती लख चंद्र कलानि घटै है ;
यों कुच को नित देत उछाह, यही दुख दाड़िम पेय पटै है ।
तो कर पादरु नैनन के डर सों जल डूब सरोज मिटै है ;
त्यों 'रधलाल' उरू२ लख कै कदली तनु बारहिं बार कटै है ।
मित्र उदै लख जो द्युति-हीन न होइ नहीं बुध शत्रु कहावै ;
दोष करै न कलंक धरै नहिं कृष्ण सुपक्षहि में हरषावै ।
ये 'रधलाल' कहै वृषभानु सुता मुख जो निज दीप्ति दिखावै ;
यौ सुकलाधर के उपमानहिं क्यों कु-कलाधर को कवि गावै ।

---

१ कंचुकी = चोली, अंगिया, कुरती । २ उरु = जाँघ, चौड़ा, विशाल ।

राधाभूषण से

निशदिन रहहि निशंक ह्वै सफल होय सब काज ;
व्यासदास के बश की[1] युगलकिशोरहि लाज।
रसिक - शिरोमणि राधिका - रमण - चरण - अरविंद[2] ;
मधुकर 'राधालाल' कवि पियै सदा मकरंद[3]।

सोहै दिव्य कंचन सौं कलित गो-लोक-भूमि,
दिव्य मणि - जटित सवर्ण सौध साधा है ;
युगल आनद रूप जहाँ दिव्य लीला करै,
दीखै लोक बाधा और व्याधा नहीं आधा है।
'राधालाल' पुरुष प्रकृति आदि सिद्ध ये दो,
शक्ति शक्तिमान जिम मत ये अगाधा है ;
वारि[4]-वीच न्यारे[5] जिम एक रस एक प्राण,
पूर्ण ब्रह्म कृष्ण तहाँ पूर्ण शक्ति राधा है।

× × ×

नायिकादि भेद औ उपमा आदि अलंकार,
एक - एक संग रचे तजी नाहिं जोरी को ;
रस - रस में भूषण यद्यपि कहे हैं सब,
तद्यपि ते सोहैं शुचि रूप श्याम गोरी को।
'राधालाल' यातैं या ग्रंथ में जु कीनौ श्रम,
बुद्धिमान जानेंगे न जाने मति थोरी को[6] ;

---

१ व्यासदास के वंश की = आप पं० हरीरामजी शुक्ल श्रीव्यास स्वामी के वंशधर थे। २ अरविंद = पद्म, कमल। ३ मकरंद = पराग, फूल का रस। ४ वारि = जल। ५ न्यारे = अलग। ६ थोरी को = थोड़ी का।

बार-बार विनय मेरी ये कविराजन सों,
सज्जन सुधार लीजो भूल-चूक मोरी को।
उत्तमा श्रीराधिका यों प्यारे के रिझावे काज—
स्वीया परकीयादि रूप धरैं प्यारी है;
राधिका रिझावे काज जैसे अनुकूलादिक,
रूप को बनाय करैं लीला गिरधारी है।
नायक औ नायिका कल की नर-नारिन को,
कवि जो बखाने ताने जाने का बिचारी है;
'राधालाल' छोटी मति मेरी तौ बिचार यह,
नायिका बिहारिणि औ नायक बिहारी है।

× × ×

उपमा वाचक धरम जहँ उपमेयरु उपमान;
जिहि लख शुचि रति ऊपजै ताहि नायिका जान।
वर्ण्य धर्म उपमान जहँ वाचक चौथो जान;
इक बिन दो बिन तीन बिन लुप्तोपम तहँ मान।

इस दोहे में उपमान, उपमेय और धर्म ये तीनो दिखाए हैं। से वाचक नहीं है, इसलिये यह वाचक लुप्तोपमा हुई।

करि-कर-सम ऊरू१ सु पुन कुच करि-कुंभ२-समान;
कंठ कंबु३ सों जानिए चंद्र-सदृश मुख मान।

इस दोहे में उपमान, उपमेय और वाचक ये तीनो दिखाए गए हैं। धर्म नहीं है, इसलिये यह धर्मलुप्ता हुई।

बिद्रुम४ अधर अनार के दाने दशनन देख;
सुक५-नासा सरसिज६-नयन, धनु-भृकुटी कों लेख।

---

१ ऊरू = जानूपरिभाग, जाँघें। २ कुंभ = घड़ा। ३ कंबु = शंख। ४ बिद्रुम = प्रवाल-रत्न-वृक्ष, मूँगा। ५ सुक = शुक, तोता। ६ सरसिज = पद्म, कमल।

इस दोहे में उपमा और उपमेय दो ही कहे हैं, इसलिये यह वाचक धर्मलुप्ता हुई।

छवि सौं रति आचरति है, गज सौं गज-गति जान ;
दृग सौं श्री भजवति भई, रुचि सौं विधु मुख मान।

इस दोहे में छवि से रति और रूप की गति से गज-गामिनी, दृष्टि से लक्ष्मी रूप, मुख से विधु-मुखी यह उपमान का साधर्म्य बतलाया है। वाचक और उपमेय नायिका नहीं कही, इसलिये वाचकोपमेय लुप्ता भई। इत्यादि।

श्रीपं० सहजरामजी सनाढ्य

पं० सहजरामजी का जन्म सं० १९०५ वि० के लगभग अवधप्रदेशांतर्गत जिला सुल्तानपुर के बँधुवा-ग्राम में हुआ था।

अब तक आपके बनाए हुए ग्रंथों में 'प्रह्लाद-चरित्र'-नामक एक उत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ तथा आपकी रामायण के किष्किंधा, सुंदर और लंकाकांड देखे गए हैं।

आपने अपने इन ग्रंथों में न तो अपने कुल, गोत्र, आस्पद आदि का कुछ वर्णन किया है, और न ग्रंथों के रचना-काल का ही कुछ उल्लेख किया है, अतः ग्रंथों के आधार पर इससे अधिक विवरण प्राप्त होना संभव नहीं। आपकी रचनाएँ बड़ी ही मनोहर हैं। उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आपकी चौपाइयों और दोहों को पढ़ने से यही जान पड़ता है कि 'रामचरित-मानस' के अवतरण पढ़े जा रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी के पश्चात् दोहा-चौपाइयों में इतना लालित्य, और वह भी सरल-सुबोध भाषा में, ला सकने में कोई और भी सुकवि समर्थ हुआ है, इसमें संदेह है।

रचना-शैली के अतिरिक्त आपके भावों की प्रौढ़ता देखकर

और विषय के स्वाभाविक वर्णन पढ़ते-पढ़ते हृदय गद्गद् हो जाता है। आपकी प्राप्त कविताएँ ही आपको सदैव अमर बनाए रखने के लिये पर्याप्त हैं। आपका कविता-काल वि० सं० १६३५-४० के लगभग माना गया है।

आपकी रचनाओं के कुछ नमूने निम्न-लिखित हैं—

संसार की असारता और धर्म
(चौपाई)

संचित[1] परारब्ध किय पाना ;
कर्म-विवश सह संकट नाना ।
जग जीवन लखि जीव दुखारी ;
प्रकटे हरि सायुध भुज चारी ।
कौस्तुभ[2] कंठ, वक्ष वनमाला ;
रत्न - किरीट - प्रकाश विशाला ।
अस हरि-रूप अनूप निहारी ;
करि प्रणाम, अस्तुति अनुसारी ।
जय भगवंत सत सुखदायक ;
कृपासिंधु सचराचर - नायक ।
जीव - चराचर - पशु-पशुपाला ;
अति कृपालु तुम दीनदयाला ।
तुम्हरे हाथ नाथ ! फल चारा ;
बंध-मोक्ष प्रभु विगत विकारा ।
अब कि बार प्रणतारतबंधू ;
पालि स्वधर्म तरौं भवसिंधू ।

---

१ संचित = एकत्रित । २ कौस्तुभ = मणि विशेष, भगवान् विष्णु का आभूषण ।

(दोहा)

विकल जीव जननी-जठर१ हरि सों करत करार२ ;
अब की बार सुधर्म-पथ लागि तरौं भव-पार ।

पूरण मास भए यहि भाँती ;
महा वपुष३ किय प्रकटत हाँती ।
भयो अधीर पीर तन माहीं ;
छण मूच्छित, छण रुदन कराहीं ।
कहाँ-कहाँ करि रोवन लागे ;
रूप चतुर्भुज दीख न आगे ।
कीन्ह्यों जबहिं पयोधर पाना ;
भूली सुमति, मोह लपटाना ।
गावहिं मंगल-गीत वधूटी४ ;
नेगी करहिं बसन-धन लूटी ।
काटैं कृमि बहु व्याधि सतावैं ;
रहैं रोय मुख बचन न आवैं ।
जननी उबटन - तेल लगावै ;
पालि-पोषि सुत-देह बढ़ावै ।
पगन चलत कह तोतरि बतियाँ ;
सुनि पितु-मातु लगावैं छतियाँ ।

क्रीड़ा बहुबिधि करत अति गयो बालपन बीति ;
चलै मूढ़ नहिं धर्म-पथ करै अनेक अनीति ।

तरुण भए तरुणी मन मोहै ;
चलै बाम पुनि-पुनि मग जोहै ।

---

१ जठर = उदर, पेट, गर्भ । २ करार = वचन, वादा । ३ वपुष = देह । ४ वधूटी = युवती स्त्री ।

जो कदाचि धन-धाम बिलोका ;
तृण-समान मानै त्रैलोका ।
जो धन-हीन दीन दुख पाए ;
जहँ-तहँ याचत पेट खलाए ।
कछु दिन बढ़त-बढ़ावत जाहीं ;
कछु बिरोध कछु रोदन माहीं ।
कछु सोवत कछु उद्यम धावै ;
बिना धर्म यहँ जन्म गँवावै ।
गर्भवास श्रीपति उपदेशा ;
माया-विवश न सुधि लवलेशा ।
तजि सब धर्म भोग मन लावा ;
यह-वह करत जरापन आवा ।
अनइच्छित आई जरा सहजराम सित केश ;
मनहुँ 'विशिख[1] सित[2] पुंख'[3] के छेदे काल नरेश ।
तनु मल अबल, बदन रद[4]-हीना ;
तृष्णा तरुण होय तनु छीना ।
थके चरण, तनु कंपन लागे ;
प्रिय बालक जल देहिं न माँगे ।
खाँसि-खाँसि थूकहिं महि माहीं ;
सुत-सुतबधू देखि अनखाहीं[5] ।
प्रिय परिवार, सुहृद सुत-नाती ;
मरण मनावहिं दिन अरु राती ।

---

१ विशिख = बाण । २ सित = सफ़ेद, श्वेत । ३ पुंख = पंख । 'विशिख सित पुंख' = बाणों की गति बढ़ाने के लिये पीछे की ओर छोटे पंख लगते हैं, उनसे तात्पर्य है । ४ रद = दाँत । ५ अनखाहीं = चिड़चिड़ाते हैं, कुढ़ते हैं ।

जब कछु सुतन सिखावन देहीं ;
सुत कहैं जल्पि-जल्पि१ जिव लेहीं।
भवन - द्वार राखा रखवारी ;
ग्रामसिंह२ जनु भूँक भिखारी।
मरती बार कंठ कफ लागा ;
तबहुँ मोह-बश भेषज माँगा।
तनु तजि गहिसि नरक कै बाटा३ ;
सो सन सहि न जाय यह घाटा।
कंठ पाश असिपत्र बन दंड पाखि अति घोर ;
चले घसीटत शमनगण४, यमपुर-पंथ कठोर।
प्रथमहि चढ़े मातु-पितु गोदा ;
पुनि स्यंदन५ सुखपाल ससोदा।
पुनि गज-बाजि साज पट-झीने ;
सुख करि बिबिध भाँति परबीने।
चढ़ि पर्यंक६ शय्य पट बाँधे ;
सो चढ़ि चले चारि के काँधे।
झूठ-साँच कहि जहँ-तहँ बंची७ ;
बहु विधि धरे धाम-धन संची८।
सो धन-धाम धरा रह भू पर ;
कछु भाँड़ा-गाड़ा९ कछु ऊपर।

---

१ जल्पि-जल्पि = बक-बककर। २ ग्रामसिंह = कुत्ता। ३ बाटा = मार्ग, राह, रास्ता। ४ शमनगण = यमदूत। ५ स्यंदन = रथ। ६ पर्यंक = पलंग। ७ बंची = ठगकर। ८ संची = एकत्रित कर, जोड़-कर। ९ भाँड़ा-गाड़ा = जो धन सुरक्षित रखने के लिये पृथ्वी में गाड़कर रक्खा जाता है, उसे भाँड़ा-गाड़ना कहते हैं।

पशुगण कछु बन, कछु गोशाला ;
  रही निकेत-द्वार[1] बर बाला ।
चिता चढ़ाय परोसिन त्यागा ;
  यमपुर चले अकेल अभागा ।
करि विलाप सुत सर्वस कीना ;
  पावक बारि फूँकि मुख दीना ।
सुनहुँ तात पितु, मातु, सुत, वनिता, बंधु अनेक ;
यमपुर सुधरम बिन किए करैं सहाय न एक ।
जिहि तनु उबटन तेल लगाए ;
  पहिरे भूषण - वसन सुहाए ।
सो नर देह खेह[2] ह्वै जाई ;
  जहँ - तहँ पवन प्रसंग उड़ाई ।
ताते सदा धर्म - पथ गहिए ;
  सबै भाँति जाते सुख लहिए ।
धर्म छोड़ि संगी नहिं कोई ;
  बिना धर्म हित[3] कबहुँ न होई ।

× × ×

प्रह्लाद-चरित्र से

(दोहा)

राम भजन को कौन फल, विद्या को फल कौन ;
घाटा नफा विचारि कै विप्र पढ़ौं मैं सौन ।
बरनत वेद पुरान बुध, शिव, विरंचि, सनकादि ;
ये बाधक हरि-भक्ति के विद्या-वित-वनितादि ।

---

[1] निकेत-द्वार = गृह-द्वार, घर के दरवाज़े तक । [2] खेह = राख, भस्म, ख़ाक, धूल । [3] हित = भलाई, कल्याण ।

खाय मातु मोदक कटुक परै बदन बिष आय;
जठर अगिनि की ज्वाल सों जीव विकल ह्वै जाय।

× × ×

राम-नाम लिखि बाँचन लागे;
धिक-धिक करि दोउ भूसुर भागे।
सुनि प्रह्लाद बचन कह बीना;
मोहिं धिक कत महिदेव१ प्रबीना।
धिक नरेस जो प्रजा सतावै;
धिक धनवंत उथिरता२ पावै।
धिक सुरलोक सोक-प्रद सोई;
पुनरागमन जहाँ ते होई।
धिक नर-देह जरापन३, रोगा;
राम-भजन बिन धिक जप-जोगा।
कोउ कह धिक जीवन गुन-हीना;
यौं कह सुत कोउ विभव-बिहीना।
सबै असत्य सत्य मत एहा४;
राम-भजन बिनु धिक नर-देहा।
धिक छत्री जो समर-सभीता;
बैखानस५ बिषयन मन जीता।
धिक-धिक तपसी तप करहिं, तन कसि मन बस नाहिं;
परमारथ पथ पाँउ धरि, फिरि स्वारथ लपटाहिं।
हटकि-हटकि हारे निपट, पटकि-पटकि महि पानि;
जाय पुकारे राउ पहँ, बालक सठ हठ खानि।

---

१ महिदेव = ब्राह्मण। २ उथिरता = ओछापन, उथलापन।
३ जरापन = बुढ़ापा। ४ एहा = यही। ५ बैखानस = तपस्वी।

श्रीपं० गरीबदासजी गोस्वामी

पं० गरीबदासजी गोस्वामी, दतिया का जन्म अनुमानतः सं० १६१० वि० में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० प्रेमनारायणजी गोस्वामी था। आप व्यासवंशीय सनाढ्य ब्राह्मण थे।

आपका कविता-काल सं० १६४० वि० से माना जाता है। पं० गरीबदासजी बड़े ही चतुर और कार्य-कुशल व्यक्ति थे। आप अपनी बुद्धिमत्ता के प्रभाव से भूतपूर्व दतिया-नरेश स्व० महाराजा भवानीसिंह के मंत्री (दीवान) तक हो गए थे, और दीवानी के कार्य को जिस योग्यता-पूर्वक आपने किया था, वह अति ही प्रशंसनीय है। दतिया-निवासी अब भी आपके उस सुशासन को श्रद्धा और प्रेम-पूर्वक स्मरण करते हैं।

आपकी उदारता की घर-घर कहानियाँ और गाँव-गाँव में स्मृतियाँ उपस्थित हैं। कवींद्र पं० केशवदासजी मिश्र के वंशज, जो आजकल फुटेरा (झाँसी)-नामक ग्राम में रहते हैं, और उस ग्राम की ज़मींदारी उनके अधिकार में है, गोस्वामीजी के संबंधी थे। फुटेरा में भी गोस्वामीजी ने एक तालाब बँधवाया था, जो अब भी विद्यमान है।

आपका शरीर-पात प्रायः सं० १९६० वि० में हुआ था। आप परम वैष्णव और श्रीराधिकाजी के अनन्य भक्त थे। आपके किसी ग्रंथ विशेष का पता नहीं लग सका है। किंतु आपकी स्फुट रचनाएँ पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं, जो सरस, सरल और भक्ति से ओत-प्रोत हैं।

उदाहरण—

परम प्रिया के मुखचंद को अमंद१ देख,
फेर देख चंद्र सुख कंद निरधारो है;
चित्त में विचारो भारो इनमें से कौन होत,
अकल२ तराजू माँहि दोहिन को धारो है।
काम-कला जोती कर पला नैन पंकज-भर,
डंडी ध्यान मान के प्रमाण सो समारो है;
तारन समेत तारो नभ को सितारो हारो,
भयो है दुखारो न्यारो अकित निहारो है।

× × ×

कियौ सो अराम पै लियो न राम-राम नाम,
होय बस बाम३ के निकाम कामताई है;
जो पै ग्राम-धाम में बिताए बहु याम घन-
श्याम देख धाम भव ताप ना नशाई है।
प्रेम खाम४ थाम५ मन होय विश्राम धाम,
रसिक अकाम होत संत मन भाई है;

---

१ अमंद = देदीप्यमान। २ अकल (उर्दू शब्द अक़्ल) = बुद्धि। ३ बाम = बामा, स्त्री। ४ खाम = खंभा। ५ थाम = थामकर।

श्रीपं० गरीबदासजी गोस्वामी

कामना[1] मनाई[2] तो पै, कामना मनाई जो पै,
कामना मनाई तो पै, कामना मनाई है।

---

१ कामना = इच्छाए, अभिलाषाएँ। २ मनाई = मनाता रहा।

श्रीपं० अयोध्यानाथजी उपाध्याय
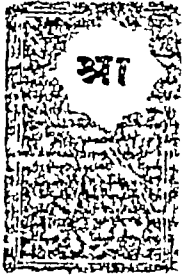
आ पं० अयोध्यानाथजी उपाध्याय, आशुकवि घटिकाशतक का जन्म झाँसी-प्रांत के कुम्हरार(मोठ)-नामक ग्राम में, सं० १९२१ वि० में, हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० देवीप्रसादजी उपाध्याय था। आप छोटी वारी के उपाध्याय थे। आप चार भाई थे, जिनमें सबसे ज्येष्ठ आप ही थे।

१५ वर्ष की अवस्था तक तो आप अपने जन्म-स्थान ही में अध्ययन करते रहे, फिर कुछ समय दतिया मे अध्ययन करने के पश्चात् आप काशी पढ़ने के लिये चले गए। वहाँ आपने व्याकरण, काव्य और न्याय-शास्त्र पढ़ा, और घर लौट आए। घर पर कुछ दिन रहने के पश्चात् आप दतिया चले गए। किंतु द्वेष-वश अन्य पंडितों ने वहाँ आपका उचित आदर न होने दिया। इससे आपको बड़ी ही ग्लानि हुई। आपने एक रात्रि 'शंकर'जी के मंदिर में व्यतीत करके दतिया से लौटने का निश्चय कर लिया था। किंतु उसी रात्रि को शिवालय में आपको स्वप्न में ये शब्द सुनाई दिए— "अयोध्यानाथ ! जाओ, आज से तुम्हारी वाणी सिद्ध

है।" बस, उस दिन से आपकी ऐसी धाक बँधी कि लोग आपके चमत्कार को देखकर दंग रह जाते थे।

आपको 'भारतधर्म-महामंडल', काशी ने 'आशुकवि' और 'घटिकाशतक' की उपाधियों से विभूषित किया था। आप धारा-प्रवाह श्लोक बनाकर कहते थे; समस्याओं की पूर्ति करना तो आपके लिये खिलवाड़ ही सा था। आप मानसिक समस्याओं तक की पूर्ति करते हुए सुने गए हैं। महाराजा काश्मीर, महाराजा काशी, महाराजा दरभंगा, महाराजा बिलासपुर तथा और भी अनेक राजदरबारों में आपकी काफ़ी पैठ थी। इन राज्यों से आपको वार्षिक बिदाई भी मिलती थी।

उपाध्यायजी अपने इष्ट के बड़े ही पक्के थे; जब तक आप वाल्मीकि सुंदरकांड और दुर्गासप्तशती का पाठ नहीं कर लेते थे, आप जल तक ग्रहण नहीं करते थे। आप पदत्राण भी नहीं पहनते थे। एक बार आप एक महाराजा साहब के यहाँ अतिथि होकर पधारे, जब आपके चरण महाराज ने पखारे, तो उन्हें हँसकर यह कह आया कि 'कविराज के चरण विचित्र हैं।' इस पर आपने कहा कि 'अभी आपने वेश्याओं ही के चरण देखे हैं, ऋषियों के नहीं।' इससे आपकी निर्भीकता और स्पष्टवक्ता होने का भी ख़ासा परिचय मिलता है।

आपकी निधन-तिथि माघ कृष्ण ११ सं० १६७६ वि०

है। आपके गोलोकवासी होने पर 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं ने बहुत ही खेद प्रकट किया था। आपके तीन पुत्र, चार कन्याएँ तथा अनेक भाई-भतीजे आदि विद्यमान हैं। आपके पुत्र पं० गौरीशंकरजी तथा भतीजे पं० अंबिकादत्तजी उपाध्याय एम्० ए०, काव्यतीर्थ बड़े ही होनहार हैं।

राजा सर रामपालसिंहजी से भेट तथा बंगवासी-कार्यालय में आपका सत्कार आदि अनेक चिरस्मरणीय घटनाएँ हैं।

आपका कविता-काल सं० १६४० वि० से प्रारंभ होता है। आप अधिकतर संस्कृत-भाषा ही में कविता करते थे, हिंदी-समस्याओं की भी पूर्ति आप संस्कृत-भाषा में ही करते थे। आपकी रचनाएँ बड़ी ही मनोहर और सुंदर होती थीं।

आपने अपने गुरुदेव का परिचय इस प्रकार दिया है—

अवनौ समवाप्य यदीय दया
वयमेव वयं विदिताः कवयः;
निगमागमसर्वरहस्यविद
इह रामगुरोश्चरणं वदाः।

अर्थात् पृथ्वीमंडल में जिनकी कृपा के कारण हम ही हम कवि प्रख्यात हुए, ऐसे निगम और आगम के सर्वरहस्य को जाननेवाले रामगुरु के हम शिष्य हैं।

× × ×

'घटिकाशतक'जी की प्रथम गृहिणी का देहावसान हो गया था, उसकी समवेदना के लिये एक मित्र ने उनसे शोक प्रदर्शित करते हुए कहा कि आपकी अर्द्धांगिनी का असमय शरीर-पात हो

गया, इसका बड़ा दुःख है। आपने अर्द्धांगिनी शब्द पर ज़ोर देते हुए कहा कि अर्द्धांगिनी नहीं, सर्वाङ्गिनी। और यह श्लोक पढ़ा—

* अर्द्धाङ्गभूता मनुजस्य दारा
एषापि वाङ्मे प्रतिभात्यसारा ;
यतो विना तां अयि मामकीना
सर्वाङ्गशक्तिः सहसैव लीना ।

श्रीस्वामीजी के दर्शनार्थ आई हुई महिलाओं का वर्णन आपने इस प्रकार किया था—

† काचित्सुपात्रेषु निधाय हेम्नः
सुधारसं भोज्यमतीव प्रेम्णा ;
पादाम्बुजं द्रष्टुमलंकृता सती
ययौ ययाऽराजत राजपद्धतिः ।

× × ×

‡ काचित्कुमारं प्रविहाय सुप्तम्
प्रियेण साकम् कुलजाऽतिगुप्तम् ;

---

* 'स्त्री मनुष्य की अर्धांगिनी हुआ करती है,' यह लोकोक्ति भी असार-सी प्रतिभात होती है। क्योंकि दारा के बिना मेरी तो सर्वांग-शक्ति सहसा ही विलीन हो गई है।

† कोई अलंकारयुक्त सती सुवर्ण के पात्रों में सुधामय भोज्य को रखकर अत्यंत प्रेम से उनके चरण-कमलों के दर्शनार्थ चली, जिससे कि राजपद्धति अतीव शोभा देती थी।

‡ कोई कुलीना अपने शिशु को सोता हुआ छोड़कर अपने पति के साथ छिपे-छिपे दोनो हाथों में पाद्य और अर्घ्य को लेकर उसी मार्ग से (गुरुजी के पास) गई।

पाद्यार्घमादाय करद्वयेन
समाययावाशु पथैव तेन।

× × ×

ॐ काचिच्च पत्या विनिवार्यमाणा
गंतुं तदानीं नच पार्यमाणा;
अद्यापि कालुष्यमुपैति नैव
स्ववल्लभं साधु यथाऽऽश्रितैव।

आप चिरगाँव(झाँसी)-निवासी कविवर बा० मैथिली-शरणजी गुप्त के यहाँ बहुधा आया करते थे। एक बार आपको स्टेशन पर पहुँचाने के लिये कविवर बा० मैथिलीशरणजी और मुंशी अजमेरीजी आए हुए थे। ट्रेन आने में थोड़ा-सा विलंब था। सहसा गुप्तजी ने घटिकाशतकजी से कहा—"आपने मुंशीजी के लिये कुछ नहीं कहा।" तब आपने तत्क्षण ही यह श्लोक सुना दिया—

यस्य प्रसिद्धोऽस्त्यजमेरिनाम्नः
गानेन गंधर्वसमः पिकस्वरः;
जीयादयं 'प्रेमविहारि†' गायको-
ऽयोध्याधिनाथोऽत्र प्रमाणभूतः।

ॐ कोई अपने पति से जाने की स्वीकृति न मिलने के कारण उस समय न जा सकी, और इस समय भी भले प्रकार अपने पति के प्रेम में लीन होती हुई जाने की स्वीकृति न मिलने से दुःखित नहीं होती है।

† प्रेमविहारि=श्रीमुंशी अजमेरीजी का उपनाम 'प्रेमबिहारी' है। जिन अजमेरी का कोकिल-स्वर गंधर्व के समान प्रसिद्ध है, वे

ऐसी अनेकानेक घटनाएँ आपके संबंध की विद्यमान हैं। खेद है, आपकी सुंदर रचनाओं का संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका। अन्यथा वह साहित्य की एक चिरस्मरणीय और रक्षणीय संपत्ति होती। आपका केवल 'यतींद्र-जीवन'-नामक ग्रंथ ही छप सका है। घटिकाशतकजी के सुयोग्य भतीजे पं० अंबिकादत्तजी उपाध्याय एम्० ए० यदि उपाध्यायजी का एक विस्तृत जीवन-चरित्र प्रकाशित कर दें, तो अत्युत्तम हो।

प्रेमविहारी उपनामधारी, गायक सर्वोत्कृष्ट और चिरजीवी हों।
इसकी पूर्वोक्त प्रसिद्धि में यह अयोध्यानाथ कवि प्रमाण है।

श्रीपं० श्यामाचरणजी व्यास

श्री

पं० श्यामाचरणजी व्यास, पिछोर (झाँसी) का जन्म सं० १९४० वि० के लगभग पिछोर (झाँसी) में हुआ था। आप संस्कृत और हिंदी दोनो ही भाषाओं के प्रेमी और जानकार थे। वृंदावन-निवासी स्वर्गीय श्रीपं० दुर्गादत्तजी द्विवेदी शास्त्री के आप शिष्य थे। वाल्मीकि रामायण, भागवत आदि आप अच्छी सुनाते थे, और यही आपकी वृत्ति भी थी। सनाढ्योपकारक में आपके लेख और कविताएँ सं० १९७५ वि० तक प्रकाशित होती रहती थीं। सुनते हैं, सं० १९८० वि० के लगभग आपका शरीर-पात हो गया था। आपके संबंध की विशेष बातें प्रयत्न करने पर भी मालूम न हो सकीं। आपके किसी ग्रंथ का पता नहीं चलता। रचनाएँ आपकी मधुर और अच्छी होती थीं।

उदाहरण—

जाति रूपी अंक के प्रत्यंग में बहु रोग हैं;
इनके शमन१ को चाहिए भैषज्य वैद्य सुयोग हैं।

---

१ शमन=शांत होने, दूर होने।

उनका निदर्शन करूँ कुछ जो सुनें सज्जन चित लगा ;
संस्कार छूटे सब, रहा केवल जनेऊ का तगा।
देखने के लिये सो भी रह गया है विज्ञ जन ,
विप्र का सर्वस्व जिसमें छा रहा ब्रह्मत्व धन।
बदले इसके पीर को चद्दर चढ़ावें चाव से ;
ताजियों के भक्त बन सब जाति भेंटें भाव से।
क्या हमारे देवि-देवों में नहीं वह शक्ति है ;
शक्ति है, पर विना विद्या इन्हें उनकी भक्ति है।
वेदपाठी छोड़के कुल - तारिणी[1] मंगल करें ;
पात्र में शुभ दान देना—सो यथारथ लख परें।
भाँवरों का समय चाहे चूक ही जावे भलें ;
शांती कराने के लिये गाली निराली गा चलें।
माता-पिता, भ्राता, पती की लाज का क्या काम है ;
निर्लज्जता बनिता अधम तौ शब्द ये बेकाम है।
गणिका तजै गाते जिसे क्या कुलबधू का काम है ;
कुल करैं बदनाम जिसका दुःखमय परिणाम है।
जाति के बालक निराश्रित अन्न बिन भूँखों मरें ;
मंगलमुखी[2] कर-कमल में गिन डेढ़ सौ रुपया धरें।

इत्यादि।

× × ×

संसार के शिक्षक रहे जो वही शिक्षा-विमुख हैं ;
शिक्षा जिन्हें देते रहे अब वही शिक्षा-प्रमुख हैं।
शिक्षा उपेक्षा करत हम शिष्यों की दिक्षा ले रहे ;
भिक्षुक सदा के विप्र हैं कल्पित प्रमाण न दे रहे।

---

१ कुल-तारिणी=कुल को तारनेवाली। २ मंगलमुखी=वेश्याएँ।

भिक्षुक बनें तो बन भी लो, भिक्षा ले विद्योन्नति करो;
एक्यता का तार दे सूचित सनाढ्यों को करो।

× × ×

अमित उत्साही मिलेंगे करेंगे साहाय्य सब;
'श्यामाचरण' द्विज-चरण में है विनय सादर यही अब।
जीवे कौ इतनो ही स्वारथ।
जगमय जानि जानकी-जीवन,
करिए प्राणि हितारथ;
विद्या-विभव, प्रताप-वीरता,
नाहिं तो सकल अकारथ।
कह्यौ ज्ञान भगवत्गीता में,
पूँछ्यौ जब हीं पारथ;
सार भूत उत्तर प्रभु दीनो,
"कर्म करौ निस्स्वारथ।"
स्वारथ-रहित होत समदर्शी[1],
सोई धर्म महारथ;
देश-जाति-कुल-धर्म निबहिबौ,
जानि लेत निज स्वारथ।
धर्माचरण करत निर्मल चित,
जानै तत्त्व यथारथ;
श्यामा-श्यामचरण मन लागै,
भारत करौ समारथ।

× × ×

---

१ समदर्शी—समान देखनेवाला।

द्वितीय खंड

सं० १६०८ वि० से वर्त्तमान काल तक

के

कविगण

जगत की सब जातियाँ जीतीं हमारी मान लो ;
दलित-पद हारे तुम्हीं बीती हमारी मान लो ।

× × ×

जातीयता का भाव उदित हो उन्हीं के हीय[1] में ;
सभ्य होकर सभ्यता की बात है निज ध्यान दो ।

× × ×

जननि जन्मस्थान जाह्नवि[2] श्रीजनार्दन[3] अर्चना[4] ;
जाति मध्य निवास पाकर भाग्य गुरुतर मान लो ।
होंगे हमारे वंश में फिर नारदात्रि वशिष्ठ-से ;
कहै 'श्यामाचरण' विनती अब हमारी मान लो ।

---

१ हीय = हिय, मन । २ जाह्नवि = गंगा । ३ जनार्दन = कृष्ण भगवान् । ४ अर्चना = पूजा ।

श्रीपं० अड़कूलालजी वैद्य

पं० अड़कूलालजी वैद्य, ललितपुर का जन्म सं० १६०८ वि० के माघ मास में वसंत-पंचमी के दिन जाखलौन में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० माधवप्रसादजी था। आप भारद्वाज-गोत्रीय वैद्य हैं।

आपने सं० १६२४ वि० में हिंदी-मिडिल और सं० १६२७ वि० में प्रथम श्रेणी में एंट्रेंस की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। सं० १६२८ वि० में आप पोलिटिकेल एजेंट सीहौर के यहाँ क्लर्क हो गए। वहाँ एक वर्ष तक रहे। फिर भोपाल-स्टेट में क्लर्क हो गए, पश्चात् सं० १६३१ वि० में कु० मंगलसिंह जाखलौन के यहाँ आप सहकारी कामदार हो गए, किंतु वहाँ भी आप केवल ४-५ वर्ष ही रहे। अंत में सं० १६३६ वि० में आप दीवान विजयबहादुर मजबूतसिंह, ननौरा के मुख्तार हो गए, और सं० १६८२ वि० तक अपना कार्य बड़ी ही योग्यता-पूर्वक करते रहे। वर्तमान दीवान विजयबहादुर रावबहादुर रघुवीरसिंहजी, ननौरा आपका बड़ा ही सम्मान किया करते हैं। यद्यपि सं० १६८३ वि० में अवसर प्राप्त कर

आप ललितपुर रहने लगे हैं, किंतु अब भी आपसे समय-समय पर कठिन कार्यों में परामर्श लिया जाता है।

आपने 'पारजात रामायण' की रचना की है, जो अभी अप्रकाशित ही है। रचनाएँ आपकी साधारणतः अच्छी होती थीं।

उदाहरण—

सिंदूरी१ प्रणवहुँ प्रथम, श्रुति अज शेष महेश;
निराकार साकार प्रभु, हनुमत गिरा दिनेश।
बालमीक व्यासादि मुनि, विश्वामित्र वशिष्ठ;
नत्वा२ भारद्वाज मुनि, काकभुशुंड वरिष्ठ।

× × ×

जात रूप मणिगण वसन, भूषन-धेनु समेत;
हय, गज, रथ जुत साज तब, दीन द्विजन नृपकेतु।
कौतुक लखन हेतु तिहि काला;
काकभुशुंड महेश कृपाला।
धर मानुष तन अवध पधारे;
जहाँ प्रगट हरि नर तन धारे।
जिहि पुर प्रगटे राम पवित्रा;
भरथ जुगल सूनू सौमित्रा।
जो भव द्वंद मिटावन हारा;
हरन भार भू जग आधारा।
तिहि पुर शोभा वरणि कि जाई;
थकहि शेष जो करहिं बड़ाई।

---

१ सिंदूरी=गणपति। २ नत्वा=प्रणाम।

भे प्रतिगृह आनंद बधाए;
मंगल-साज समाज सजाए।
बरणे को अवधेश विभूती;
सक्र१ कोटिहू ते सु अकूती२।
नृपत जाचकन कीन अजाची३;
त्रियगण धुन मंगल पुर राची।
समय जान मंत्री बुधवंता;
बुलवाए वशिष्ठ वर संता।
ह्वै प्रसन्न मुनि वर तहँ आए;
नृप पूजन कर तिन बैठाए।
कीन भूप अस्तुति बहु भाँती;
बैठे नृप सह गुरु जन ज्ञाती।
पुरजन परिजन सब तहँ आए;
सादर तिनहिं भूप बैठाए।
बंदि मुनिहिं पुनि भूप उचारा;
जन्मलग्न ग्रह कहहु बिचारा।
त्रिकालज्ञ मुनि ज्ञान-निधाना;
कर विचार बोले तप माना।
कर्क लग्न गुरु उच्च शशि, हैं जुगतन सुख दैन;
राहु तीसरे दसम रवि, शनी तुला के अैन४।
सप्तम कुज५ कवि-केतु-मीन के;
एकादसम बुद्ध वृष गृह के।
पंच उच्च ग्रह अनुपम सोहैं;
रवि कुज गुरु शनि भृगु सुत जो हैं।

---

१ सक्र=इंद्र। २ अकूती=अपरिमित। ३ अजाची=अयाचक। ४ अैन=अयन, घर। ५ कुज=मंगल, कु=पृथ्वी, ज=जन्म।

रव ग्रही विधि अस जोग अनूपा ;
अब लग लखे सुने नहिं भूपा।
सकल जोग फल शुभ शुचि जेते ;
घटित तीन तुव सुत बिच तेते।
सब ग्रह तोर सुवन के ताता ;
हैं शुचि सुंदर फल के दाता।
लोक प्रसिद्ध जान सुत भूपा ;
भे तिथि ग्रह अनुकूल अनूपा।
अज अद्वैत ज्ञान विज्ञाना ;
अजय अवद्य अजर भगवाना।
अमल अनंत अखंड अनूपा ;
अद्भुत ईश तोर सुत भूपा।
भूपति भूतल सर्व कौ हो हरि है भू-भार ;
रघुकुल मंडन तोर सुत, तीन लोक भर्तार।

× × ×

धन्य - धन्य ते धन्य पुमाना[1] ;
जिनहिं न लगें युवा के बाना।
सुदर युवा लखैं मुनिराई ;
पै अंतर जिमि[2] तर घुन खाई।
जब लगि इंद्री विषय सजोगू ;
तब लगि अविचारिन भल भोगू।
मन आसक्त युवा रति माँहीं ;
चिंतित नार चित्त थिर नाँहीं।
इष्ट नारि के भए वियोगू ;
दहत मुग्ध अंतर हित भोगू।

---

१ पुमाना = मनुष्य। २ जिमि = जैसे।

निर्मल चित्त सुसज्जन लोगा ;
तौन युवा वय निंदित भोगा ।
यह नर-तन चिंतामणि पाई ;
धन न आत्मपद गह मुनिराई ।
सो नर मूढ़ महा दुर भागी ;
ताहि पशू-सम कहत विरागी ।
पाय युवा वय प्रबल महाना ;
गहत आत्मपद जौन सुजाना ।
ताहि प्रणाम मोर बहु बारा ;
है प्रसंस सब विधि वरयारा ।
यौवन वय कराल लहि जोई ;
नम्र-सहित दुर्लभ नर सोई ।
पाय युवा वैराग विचारा ;
तोष शांति कर कहा पसारा ।
अस यौवन वय दुःखगण मुक्त जास बिध होय ;
पुनि पावै नर आत्मपद, कहु उपाय सुन सोय ।

सुकवि-सरोज

श्रीरामरत्नजी गुबरेले 'रत्नेश'

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीपं० रामरत्नजी गुबरेले

मान् पं० रामरत्नजी गुबरेले 'रत्नेश' का जन्म मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमी चंद्रवार के दिन सं० १६१८ वि० में, व्यासपुरी कालपी में, हुआ था। आपके पिताजी का नाम पं० गिरधारीलालजी गुबरेले था। आप तुलसी-कृत रामायण के परम ज्ञाता और प्रेमी थे। आपके सदाचरणों का रत्नेशजी पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

आजकल 'रत्नेश'जी कानपुर में रहते हैं। आप ज्योतिष, व्याकरण, वैद्यक, वेदांत तथा साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ हैं। आप कानपुर 'रसिक-समाज' के सभापति भी अधिक समय तक रह चुके हैं। आजकल आप 'कवि-मंडल', कानपुर के सभापति हैं। आपसे अनेक विद्यार्थियों का उपकार हुआ है। आप राधाकृष्ण के उपासक हैं, और आपकी कविताएँ अधिकांश में भक्तिमय हुआ करती हैं। आपने भाषा मे परम सुंदर कवित्त, सवैया, दोहा, छंद आदि रचे हैं। आप संस्कृत-भाषा के भी प्रकांड पंडित हैं। संस्कृत के भी श्लोक आपने बनाए हैं। जाति-सेवा के कार्यों में भी आप सदैव प्रस्तुत रहते हैं। आपकी

'रतनेश-शतक'-नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। और दूसरा एक ग्रंथ 'लक्षणा-व्यंजना' गद्य-पद्यात्मक भी आपने रचा है। किंतु अभी वह प्रकाशित नहीं हुआ है। गुचरेलेजी बड़े ही सरल-स्वभाव तथा मृदु-भाषी सत्पुरुष हैं। आपकी कविताओं में से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

जाकी मधुराई देखि सिता सिकता सी भई,
  ऊख सून-सूख भई निपट निकाम है;
दाख भई खाक फंद मंदतर परि गयो,
  वाम को अधर सो तो कुंभीपाक धाम है।
'रतनेश' वसुधा के बीच सुधा मुधा भयो,
  स्वाद नहिं दूजो देखि परत ललाम है;
आगम-निगम जाकी महिमा न जानि सकैं,
  मधुर महान ऐसो एक कृष्ण नाम है ॥ १ ॥

मानस महेश मानसर के मराल मंजु,
  जा हित करत ध्यान योगी बरजोरी के;
प्राकृत मनुष्य तिन्हैं रंचक न जानि पावैं,
  पुण्य-पुंज-रहित अमल मति थोरी के।
'रतनेश' शेष औ गणेश गिरा गीरवान,
  गाय-गाय हारि गए गुनन करोरी के;
मोहैं नँदनंदन समस्त जगवंदन हैं,
  वंदन पदारविंद कीरति किशोरी के ॥ २ ॥

गौरि मैं गुराई देखी नर्गी[1] मैं नराई देखी,
  रमणीयताई देखी रंभा सुरनारी मैं;

---

[1] नर्गी = ईरानी।

रति की कशान को कुतूहल रती में देख्यो,
वाक्य-चतुराई चोखी देखी एक बानी में।
'रतनेश' रमा में निहारी प्रभुताई वेश,
रूप की निकाई देखी तारा छविखानी में;
एक - एक गुण देखे जेते देवदारन में,
तेते सब देखे एक राधा महरानी में ॥ ३ ॥

रचि-रचि जावक[1] लगावैं कर-कंजन सों,
कुंजन के बीच मोद - मंगल भरन हैं;
हाटक[2] के भूषण जटित मणि माणिक सौं,
कबौं पहिरावैं अति शोभा के करन हैं।
सुषमा निहार बलिहार जात बार-बार,
तस कलधौत[3] वारी आभा के करन हैं;
वंदैं नँदनंदन अनंद भरे आठों याम,
पंकज बरन राधे रावरे चरन हैं ॥ ४ ॥

कानन में केलि कथा मुद बरसायो करै,
मन नित ध्यायो करै श्याम संग गोरी को;
पूतरी ह्वै नैनन में रूप बसै आठो याम,
नवल किशोर युत प्यारी वय थोरी को।
'रतनेश' नासिका प्रसादी पुष्प सूँघो करै,
पग नित जायो करै साँकरी[4] सी खोरी को;
रसना रसीली साँहि रस सरसायो करै,
नाम मुख गायो करै कीरति किशोरी को ॥ ५ ॥

---

१ जावक = महावर। २ हाटक = सोना। ३ कलधौत = कमल।
४ साँकरी = सकरी, तंग।

सत्य जीव रूप पय माँहि मिलि एक भए,
जग के अनित्य जे प्रपंचन के जाल हैं;
तिन्हें गीता माँहि निज मुख ते पृथक कीन्हें,
सृष्टि उपकार हेतु परम रसाल हैं।
'रतनेश' पत्र-पुष्प फल देत दाम जौन,
सोई मुक्ताहल से चुनत ततकाल हैं;
शुद्ध सतो गुण वारो शुक्र तनु धारे कृष्ण—
मानस महेश मानसर के मराल हैं ॥ ६ ॥

आनन अमंद अवलोकि चंद मंद भयो,
नासिका निहारि कीर कानन लुकाने हैं।
श्रुति दुति देखि सीपी बूड़ि गई दह बीच,
अधर ललाई लखि बिंब मुरझाने हैं।
दंत-दुति तकत दरार खाई दाड़िम ने,
मृदुल कपोल देखि पाटल लजाने हैं;
भृकुटि बिलोकत ही इंद्र-धनु लोप भयो,
नैनन निहारि कै सरोज सकुचाने हैं ॥ ७ ॥

धरा मैं धीर जो गंभीरता की थाह पावै,
पारावार रहित न जाको कछु टेम है[1];
बोधवारे बोहित असंख्य बूड़े जाके माँहि,
आपने पराए को न जामें कछ्यों नेम है।
तरल तरंगन सों गिरिन उठाय लीन्हो,
देखो 'रतनेश' जिनै दीर्घ दुति हेम है;
अंश कला वारो को सकल जग व्यापि रहो,
सागर समान कृष्णराधिका को प्रेम है ॥ ८ ॥

---

1 टेम है = टाइम है, समय है।

जा दिन ते नैना निहारे शोभावारे प्यारे,
ता दिन ते भूले सबै खेल बरजोरी के;
पनघट घेरिबो, दही को माठ फोरिबो औ—
दृग-दृग जोरिबो त्यों छाछ की छछोरी के।
'रतनेश' नंद औ यशोदा को सनेह भूलो,
कालिंदी के कूल गोपिकान चीर चोरी के;
मोहन को मानस मलिंद मचलोई रहै,
बंदौं पदकंज ऐसे कीरति किशोरी के ॥ ९ ॥

देखि तृन तोरो करैं, नित्य ही निहोरो करैं,
प्रेमहू अथोरो करैं, रहत सहारे हैं;
गुणगन गायो करैं, संतत रिझायो करैं,
विधि सों मनायो करैं अति ही सुखारे हैं।
दूरि नहिं जायो करैं, दौरि-दौरि आयो करैं,
लुब्ध ह्वै लुभायो करैं नेम उर धारे हैं;
एरे अरविंद, काहे व्यर्थ तू अधीर होत,
तेरे मकरद के मलिंद मतवारे हैं ॥ १० ॥

विश्व जीति मदन समीप गयो केशव के,
बोल्यो तुम्हैं जीतिवे को आयो यहि ठाम में;
सुनके अनंग बैन संग में सखीगन के—
रहस रच्यो है प्रभु बृंदाबन-धाम में।
गोपिन के हाव-भाव, सहित कटाच्छन के,
बानन को मारि-मारि हारो द्रुक जाम में;
अच्युत१ को ब्रह्मचर्य च्युत नहिं होन पायो,
ऐसो द्वंद-युद्ध देख्यो श्याम घनश्याम में ॥११॥

---

१ अच्युत = अचल, अटल, अमर, विष्णु भगवान् का नाम।

श्रीपं० परमानंदजी उपाध्याय

पं० परमानंदजी उपाध्याय, अमरा (झाँसी)का जन्म सं० १६१८ वि० की आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को अमरा (मोठ) में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० श्याम-गोपालजी उपाध्याय था।

आपने वन-विभाग में फॉरेस्ट ऑफिसरी के पद पर एक वर्ष, फेमिन रिलीफ ऑफिसर के पद पर तीन वर्ष तथा नायब तहसीलदारी और डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की एकाउंटेंटी के पद पर कुछ समय तक कार्य किया है। २१ वर्ष इंदौर-राज्य में अँगरेजी स्कूल के प्रधानाध्यापक का कार्य करके आपने अवसर ग्रहण किया है, और आजकल आप भगवद्भजन और विश्राम कर रहे हैं।

आप अध्यात्म-विषय के अच्छे जानकार हैं, योग के अनेक आसन आप जानते हैं, तथा प्रायः नित्य ही उनका प्रयोग करते हैं। ज्योतिष और आयुर्वेद-शास्त्र में भी आपकी अच्छी पैठ है।

आपके दो पुत्र पं० सच्चिदानंदजी तथा पं० गिरिजाशंकरजी

सुकवि-सरोज

वैद्यशास्त्री श्रीपं० परमानंदजी उपाध्याय एफ्० टी० एस्०
होशंगाबाद (मध्यप्रदेश)

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

होनहार, साहित्य-प्रेमी और कवि हैं। ये दोनो ही महानुभाव डाक-विभाग में हैं।

आपने किसी ग्रंथ विशेष की रचना नहीं की है, किंतु आपकी स्फुट रचनाएँ जो सरस हैं, अच्छी संख्या में विद्यमान हैं। आप हिंदी, संस्कृत और उर्दू तीनो ही भाषाओं मे कविता करते हैं।

उदाहरण—

कहाँ भूले रहते हो तात,
भटकते फिरते हो दिन-रात।
कभी प्रतिमा में दर्शन लेत;
कभी मसजिद में सिजदा देत।
कभी करते गिरजा में गान;
माँगते ईसू से वरदान।
कभी कर जोरे तरफ़ अकाल;
ईश की करते हो अरदास।

× × ×

भाव मिथ्या हैं ये सब भिन्न;
मोह में ग्रसित हो रहे खिन्न।
आत्मा में ही हैं भगवान;
देखिए करके हिय में ध्यान।
आत्म का जो है निर्मल रूप;
वही है अखिल विश्व का भूप।
भाव ही का है सब बिस्तार;
यही 'परमानँद' का निस्सार।

भूतपूर्व ओरछा-नरेश सवाई महेंद्र महाराजा श्रीप्रतापसिंहजू देव बहादुर के लिये आपने कुछ पद्य संस्कृत-भाषा में लिखे थे। उनका भी नमूना देख लीजिए—

* कैलासशिखरे रम्ये सुखासीनं महेश्वरम्;
पप्रच्छ प्रांजलिर्भूत्वा गौरी विस्मितानना।
नाना तंत्राणि मर्त्यानामात्मोद्धारहेतवे;
तन्मे श्रेष्ठतमं ब्रूहि यदि तेऽस्ति कृपा मयि।
† इत्थं देविवचः श्रुत्वा प्रहस्याति स्वयं प्रभुः;
उवाच चारु चिकुरां शृणु मे प्राणवल्लभे!
केचिद्दानं प्रशंसन्ति ज्ञानं च तथा परे;
तपः केचित् प्रशंसन्वि तथा कर्माणि चापरे।
एवं बहुविधाः लोकाः यतन्त्युत्थानहेतवे;
योगात्परतरं नास्ति समुद्धर्तेति मे मतम्।
योगेन लभ्यते सर्वं योगाधीनमिदं जगत्;
तस्माद्योगं परं कार्यं यदा योगी सदा सुखी।
योगाभ्यासेन वै मर्त्य ऐश्वरीं पदमाप्यते;
अहं योगी हरिर्योगी ब्रह्मा योगी वरानने!

× × ×

---

* कैलास-गिरि-शिखर पर सुखासीन त्रिशूलपाणि से मुस्किराते हुए पार्वतीजी ने पूछा कि हे महाराज! मर्त्यलोक में आत्मोद्धार के लिये नाना प्रकार के तंत्र हैं, उनमें से जो सर्वश्रेष्ठ हो, वह मुझे समझाइए।

† इस प्रकार देवी के वचन सुनकर शंकर हँसे, और कहा कि हे प्राणवल्लभे! सुनो, कोई तो दान की प्रशंसा करता है, कोई ज्ञान की और तप की तथा कोई कर्म को ही मुख्य बतलाता

* सम्प्रत्तु कलियुगे घोरे सर्वे राजगर्विता.,
राजानो विषयासक्ताः कामिनीकाममोहिताः।

× × ×

†बुंदेलाकुलजं वीरं क्षत्रियं राजपुंगवम् ;
श्रीमत्प्रतापसिंहाख्यं महेंद्रोपाधिधारिणम्।
टीकमगढ़ तथोर्छाधिपतिं राजभूषणम् ;
साहाय्यं च करिष्यामि योगे तं राजयोगिनम्।
पूर्वजन्मन्यपि योगी स भवत् क्षत्रियर्षभ. ;
अप्राप्य योगसंसिद्धिं पुनर्जन्मान्यवाप्तवान्।
वृषंगदेव वीराख्ये बुंदेलावंशनिर्मले ;
पुनरपि राजश्रियं प्राप्य योगमार्गे व्यवस्थितः।

है। किंतु मेरे मत के अनुसार योग सर्वोपरि है, क्योंकि योग से सब प्राप्त हो सकता है। एवं यह समस्त विश्व योग ही के अधीन है, एतदर्थ योग परम कर्म है, और जो योगी हैं, वे सदैव सुखी हैं। योगाभ्यास से जीवात्मा ईश्वरीय पद को प्राप्त कर सकता है। हे पार्वती !, मैं योगी हूँ, विष्णु योगी हैं, तथा ब्रह्मा भी योगी हैं।

* अभी कलियुग में सब राजा लोग गर्व से मदांध हो रहे हैं, तथा नाना प्रकार के विषयों में तल्लीन हैं; जो काम और कामिनी में मोहित हैं।

† बुंदेला-कुलोत्पन्न वीर क्षत्रिय राजपुंगव श्रीमान् महेंद्र महाराज प्रतापसिंह जो ओरछा के राजा हैं, और योग-प्रेमी हैं, मैं उनको सहाय करता हूँ। यह पूर्व जन्म में भी योगी थे और योग में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न होने के कारण वीर नृसिंहदेव के वंश में पुनः राज श्री प्राप्त कर योग में तत्पर हैं।

* इत्थं योगप्रभावेण स एव नृपनंदनः ;
रक्षितो हि मया देवि दीर्घायुरवाप्तवान् ।
धनं पुत्रांस्तथा पौत्रान् प्रपौत्रांश्चैव पार्वति,
मया हर्षेण तं भूप दत्तवानपि सुव्रतान् ।
† इत्थं योगाख्यानं वै शिवाभीशेन कीर्तितम् ;
परमानंदोपाध्याय विप्रेण वैद्यशास्त्रिणा ।
समर्पितं सादरं हि महेंद्रं राजयोगिनम् ;
उमामहेशभक्तञ्च धार्मिकं तेजधारिणम् ।

× × ×

उर्दू की कविता का भी एक उदाहरण लीजिए—

देखते हो अक्स ख़ुद झुक-झुक के मेरे बीच में ;
क्यों न तुम ख़ुद बीच में अक्से-ख़ुदाई देखते ।
काँच में रुख़सार फ़ानी देखकर होते हो ख़ुश ;
क्यों नहीं ऐना जिगर में जल्वाजानी देखते ।
है मेरी तौक़ीर जब तक जल्वए ख़ालिक़ नहीं ;
हो तुमाया ख़ुद ज़मीरे आइना में देखते ।

---

* इस प्रकार उस योगाभ्यासी राजा की मैं रक्षा करता हूँ । मैंने उनको चिर आयुष्य, धन, पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र हर्ष से दिए ।

† यह शिव-गौरी द्वारा कीर्तित योगाख्यान उमा-महेश के भक्त तथा योगी महेंद्र महाराज को वैद्यशास्त्री परमानंद उपाध्याय द्वारा सादर समर्पित किया गया ।

सुकवि-सरोज
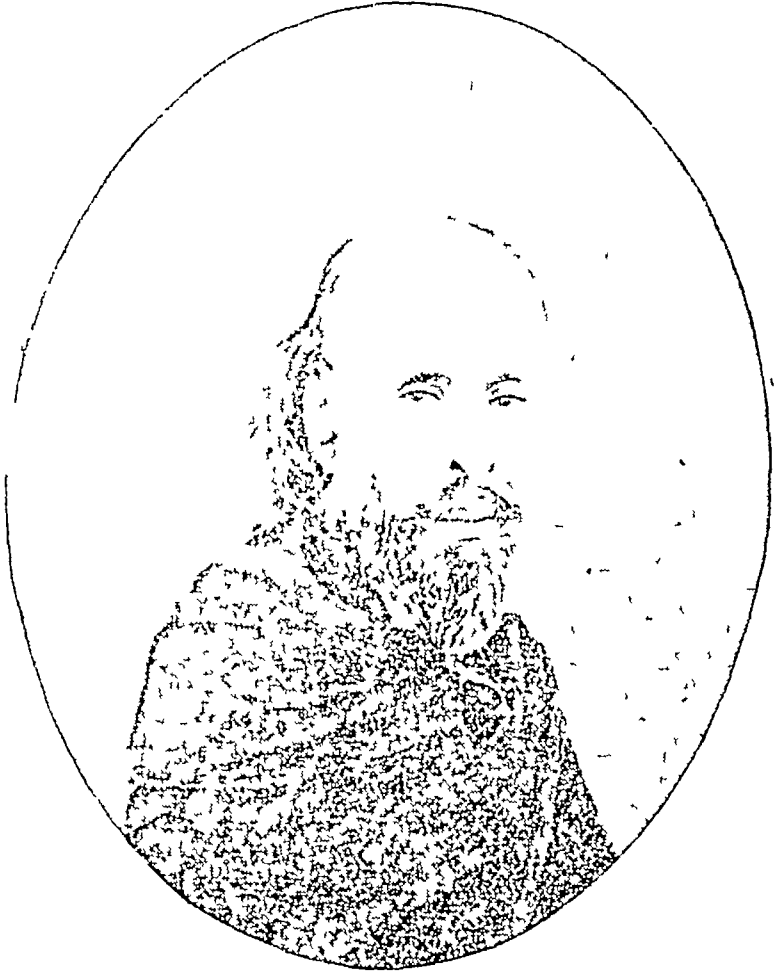
साहित्यरत्न श्रीपं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'
प्रोफ़ेसर हिंदू-यूनीवर्सिटी, काशी

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीपं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय

हित्यरत्न श्रीपं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय का जन्म सं० १९२२ वि० में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० भोलासिंहजी उपाध्याय था। आजमगढ़ के निकट तमसा-नदी के तट पर निजामाबाद नाम की बस्ती है, यहीं आपका निवास-स्थान है। लगभग २०० वर्ष हुए, आपके पूर्वज बदायूँ से आकर निजामाबाद में रहने लगे थे।

आपने पाँच वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन आरंभ किया, और थोड़े ही दिनों में विद्यानुराग-प्रदर्शन से अपने सुयोग्य अभिभावक चाचा पं० ब्रह्मासिंहजी को संतुष्ट कर दिया।

सं० १९३६ वि० में आप वर्नाक्यूलर फ़ाइनल (हिंदी मिडिल) परीक्षा में योग्यता-पूर्वक उत्तीर्ण हुए, और पुरस्कार-स्वरूप आपको मासिक छात्र-वृत्ति भी शिक्षा-विभाग से मिली।

छात्र-वृत्ति पाकर आप बनारस के क्विंस कॉलेज में भरती हुए, किंतु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण विवश होकर

अँगरेज़ी पढ़ने के विचार को त्यागना पड़ा, और कॉलेज छोड़कर आप घर चले आए।

घर पर आकर आपने उर्दू सीखी, और साथ-ही-साथ फ़ारसी तथा संस्कृत के सीखने में भी समय दिया।

विवाह के दो वर्ष पश्चात्, सं० १९३९ में, आपने शिक्षण-क्षेत्र में प्रवेश किया, और अपने ही गाँव के टौन स्कूल में अध्यापकी का भार लिया। शिक्षण-विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये आपने सं० १९४४ में नार्मल-परीक्षा पास की, और इस प्रकार आप एक योग्य शिक्षक बन गए।

निज़ामाबाद में एक सिख-साधु का आश्रम था, लोग उनको बाबा सुमेरसिंह कहते थे। यह विद्वान् थे, साहित्य के मर्मज्ञ थे और हिंदी के अच्छे कवि थे। इनके यहाँ प्रायः कवियों और विद्वानों का समागम हुआ करता था। उपाध्यायजी इस आश्रम में आने-जाने लगे, और अपनी योग्यता और चतुरता से शीघ्र ही बाबाजी के कृपा-पात्र बन गए। आश्रम में एक पुस्तकालय था, यह जब समय पाते, आश्रम में जाते और पुस्तकें और 'कविवचन-सुधा' आदि सामयिक मासिक पत्र देखा करते थे। इसी से उपाध्यायजी को सामयिक साहित्य की प्रगति का परिचय मिल चला। स्वभाव में अध्ययनशीलता तो पहले ही से आ गई थी, अब साहित्य-सेवा के अनुराग का विकास हुआ।

सबसे प्रथम आपने उर्दू के छोटे-छोटे निबंधों का हिंदी

में अनुवाद किया, और इन निबंधों के संग्रह का नाम 'नीति-निबंध' रक्खा।

उपाध्यायजी ने फ़ारसी मे भी अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। गुलिस्ताँ का आठवाँ बाब आपको इतना सुंदर जान पड़ा कि उसको भाषांतरित करने के प्रलोभन को आप संवरण न कर सके। इसके हिंदी-अनुवाद का नाम 'नीति-उपदेश-कुसुम' रक्खा।

'विनोद-वाटिका' के नाम से 'गुलज़ारदबिस्ताँ' को भी आपने हिंदी-रूप दिया।

उपाध्यायजी शिक्षण-कला का पर्याप्त ज्ञान रखते थे। शिक्षा-विभाग में आपका यथेष्ट सम्मान था। अच्छे शिक्षकों में गिनने के अतिरिक्त डिप्टी-इंसपेक्टर इनकी साहित्यिक योग्यता पर भी विश्वास करते थे। यह सब कुछ था, किंतु आप शिक्षा-विभाग में अधिक समय तक नहीं रहे।

आपने संवत् १९४६ में क़ानूनगोई की परीक्षा पास की, और अगले वर्ष आप क़ानूनगोई के स्थायी पद पर नियुक्त हो गए। तब से आप बराबर इसी पद पर काम करते रहे। आजकल अब आप पेंशन पा रहे हैं, और हिंदू-विश्व-विद्यालय, बनारस में हिंदी के प्रोफ़ेसर हैं। आपको जाति-संबंधी कार्यों से बड़ा प्रेम है। आप सन् १९१८ में सनाढ्य-महामंडल के बरेलीवाले अधिवेशन के सभापति भी निर्वाचित हुए थे। सभापति की हैसियत से वहाँ जो भाषण आपने दिया

था; उससे आपके जाति-संबंधी उन्नत विचारों का पूरा पता चलता है।

आप दो भाई हैं। आपके अनुज श्रीपं० गुरुसेवकसिंहजी उपाध्याय बी० ए० सब-रजिस्ट्रार को-ऑपरेटिव सोसाइटीज़, इलाहाबाद भी आप ही की तरह सहृदय और जाति-हितैषी हैं। आप भी सनाढ्य-महामंडल के सन् १९२५ में फ़िरोज़ाबाद-वाले अधिवेशन के सभापति थे।

उपाध्यायजी का संकेत नाम 'हरिऔध' है। आपकी योग्यता पर मुग्ध होकर 'भारत-धर्म-महामंडल' ने 'साहित्यरत्न' की उपाधि से आपको सम्मानित किया है।

उपाध्यायजी हिंदी के महाकवि और प्रतिभाशाली लेखक हैं। आपको भाषा पर पूर्ण अधिकार है। अंतस्तल की भावनाओं को व्यक्त करने के लिये आप सरल और कठिन दोनो प्रकार की भाषा का प्रयोग अति उत्तमता से कर सकते हैं।

आपका 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य खड़ी बोली में अतुकांत साहित्य का पहला ग्रंथ है, जो हिंदी-भाषा के वर्तमान रूप की गौरवमय स्मृति बनकर अंत्यानुप्रास-हीन क्षेत्र में खड़ी बोली के साहित्य-सेवियों का पथ-प्रदर्शक बन रहा है।

आप जैसे सुकवि हैं, वैसे ही सुलेखक भी हैं। आपकी पुस्तक 'ठेठ हिंदी का ठाट' सिविल सर्विस-परीक्षा के कोर्स में है। 'अधखिला फूल' आदि अनेक पुस्तकों की रचना

आपने की है। बँगला से भी आपने कुछ पुस्तकें अनूदित की हैं। आपको हिंदी-संसार साहित्य-सम्राट् की उपाधि से स्मरण करता है, जो सर्वथा आपके योग्य है।

आपकी अब तक प्रकाशित हुई पुस्तकों की नामावली निम्न-लिखित है—

(१) प्रिय-प्रवास (महाकाव्य)
(२) चुभते चौपदे काव्य
(३) चोखे चौपदे ,,
(४) बोल-चाल ,,
(५) पद्य-प्रसून ,,
(६) पद्य-प्रमोद ,,
(७) प्रेमांबु-प्रवाह ,,
(८) प्रेमांबु-वारिधि ,,
(९) प्रेमांबु ,,
(१०) प्रेम-प्रपंच ,,
❀(११) उपदेश-कुसुम (नीति-ग्रंथ)
❀(१२) नीति-निबंध ,,
❀(१३) चरितावली ,,
❀(१४) विनोद-वाटिका ,,

❀ केवल इस चिह्न से चिह्नित ग्रंथ अनुवादित हैं, शेष सब आपकी मौलिक रचनाएँ हैं। कुछ ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं।

❀ (१५) कबीर-वचनावली (संग्रह)
(१६) प्रद्युम्न-विजय का योग
(१७) रुक्मिणी-परिणय (नाटक)
(१८) ठेठ हिंदी का ठाट (उपन्यास)
(१९) अधखिला फूल ,,
❀ (२०) कृष्णकांत का दान-पत्र ,,
❀ (२१) बेनिस का बाँका ,,

आपकी कविताएँ सरस, मनोहारिणी, व्याकरण-संयत, भाव-पूर्ण और बहुत ही अच्छी होती हैं। आपकी कविताओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

आँसुओं को देखकर आप कहते हैं—

ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ी,
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ;
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ी—
खेलती हैं खंजनों की लड़कियाँ।

वसंत के भाव-भरे वैभव का चित्र अंकित करते हुए आप लिखते हैं—

निसर्ग[1] ने, सौरभ ने, पराग ने
प्रदान की थी अति कांत भाव से—

❀ केवल इस चिह्न से चिह्नित ग्रंथ अनुवादित हैं, शेष सब आपकी मौलिक रचनाएँ हैं। कुछ ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं।

1 निसर्ग = सृष्टि।

वसुंधरा को, पिक को, मिलिंद को—
मनोज्ञता मादकता मदांधता।

× × ×

भगवती भागीरथी

(छप्पै)

कलित कूल को ध्वनित बना कल-कल-ध्वनि द्वारा—
विलस रही है विपुल विमल यह सुरसरि-धारा।
अथवा सितता१-सदन२ सतोगुण-गरिमा सारी;
जा सुरपुर से सरि स्वरूप में गई पसारी।
या भूतल में शुचिता-सहित जग पावनता है बसी;
या भूप भगीरथ कीर्ति की कांत३ पताका है लसी।
बूँद-बूँद में वेद वैद्युतिक शक्ति भरी है;
आर्य ललित लीला निकेत सारी लहरी है।
भारतीय सभ्यता पीठ है पूत किनारा;
है हिंदू-जातीय भाव का स्रोत सहारा।
जीवन है आश्रम-धर्म का जह्नु-सुता-जीवन विमल;
है एक-एक बालुका-कण भुक्ति-मुक्ति का पुण्य थल।

× × ×

वह हिंदू-कुल कलित कीर्ति की कल्पलता है;
मानवता ममता सुमूर्ति की मञ्जुलता है।
अपरिसीम साहस सुमेरु की है सरिधारा;
है महान उद्योग देव दिवि गौरव दारा।

---

१ सितता = शुक्ल, रूपा, चंदन की। २ सदन = घर। ३ कांत = मनोहर, अतिप्रिय।

जातीय अलौकिक चिह्न है आर्य-जाति उत्फुल्लकर[१];
सुख्याति मालती-माल है बहु विलसित शिव-मौलि पर।

× × ×

वह सुधि है उस आत्मशक्ति की हमें दिलाती;
जो हरि-पद में लीन ललित गति को है पाती।
महि-मंडल में ब्रह्म-कमंडल-जल जो लाई;
शिव-शिर-विलसित वर विभूति जिसने अपनाई।
जिसके लाए जलधार ने भारत-धरा पुनीत की;
जो धूलि-भूत बहु मनुज को पहुँचा सुरपुर में सकी।

इत्यादि।

'प्रिय-प्रवास' से

(द्रुतविलम्बित छंद)

दिवस का अवसान[२] समीप था,
गगन था कुछ लोहित[३] हो चला;
तरु शिखा पर थी अब राजती—
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥ १॥
विपिन बीच विहंगम-वृंद का
कल-निनाद विवर्धित था हुआ;
ध्वनिमयी विविधा विहगावली
उड रही नभ-मंडल मध्य थी॥ २॥
अधिक और हुई नभ-लालिमा,
दश दिशा अनुरंजित हो गई;

१ उत्फुल्लकर = हर्षित करनेवाला, खिला देनेवाला। २ अवसान= समाप्ति। ३ लोहित=लाल।

सफल पादप - पुंज हरीतिमा,
अरुणिमा विनिमज्जित - सी हुई ॥ ३ ॥
झलकने पुलिनों पर भी लगी—
गगन के तल की यह लालिमा;
सरित औ सर के जल में पड़ी
अरुणता अति ही रमणीय थी ॥ ४ ॥
अचल के शिखरों पर जा चढ़ी,
किरण पादप - शीश विहारिणी;
तरणि-बिंब तिरोहित हो चला
गगन-मंडल मध्य शनैः - शनैः ॥ ५ ॥
ध्वनिमयी करके गिरि - कंदरा
कलित - कानन केलि निकुंज को—
मुरलि एक बजी इस काल ही
तरणिजा - तट - राजित - कुंज में ॥ ६ ॥
क्वणित[1] मंजु - विषाण[2] हुए कई,
रणित शृंग हुए बहु साथ ही;
फिर समाहित[3] प्रांतर - भाग में
सुन पड़ा स्वर धावित धेनु[4] का ॥ ७ ॥
कियत्[5] ही क्षण में वन - वीथिका
विविध धेनु विभूषित हो गई।
धवल - धूसर - वत्स - समूह भी
समुद था जिनके सँग सोहता ॥ ८ ॥

---

१ क्वणित = वीणा की आवाज़। २ विषाण = पशु का सींग। ३ समाहित = शुद्ध। ४ धावित धेनु = दौड़ती हुई गाएँ। ५ कियत् = कितने।

(शार्दूलविक्रीड़ित छंद)

रूपोद्यान - प्रफुल्ल - प्रायकलिका राकेंदु - बिंबानना
तन्वंगी कल - हाँसिनी - सुरसिका क्रीड़ा - कला - पुत्तली ।
शोभा - वारिधि की अमूल्य मणि - सी लावण्य - लीलामयी
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्यसन्मूर्ति थीं ॥ १ ॥
फूले कंज समान मंजु-दृगता थी मत्तता-कारिणी
सोने-सी कमनीय कांति तन की थी दृष्टि-उन्मेषिनी१ ।
राधा की मुसकान की मधुरता थी मुग्धता मूरि२-सी
काली कुंचित३ लंबमान अलकें थीं मानसोन्मादिनी ॥ २ ॥
नाना भाव विभाव-हाव - कुशला आमोद - आपूरिता
लीला - लोल - कटाक्ष - पात निपुणा भ्रू-भंगिमा-पण्डिता ।
वादित्रादि समोद - वादन-परा आभूषणाभूषिता
राधा थी सुमुखी विशाल-नयना आनंद आंदोलिता ॥ ३ ॥
लाली थी करती सरोज पग की भू पृष्ठ को भूषिता
बिंबा विद्रुम आदि को निदरती थी रक्तता ओष्ठ की ।
हर्षोत्फुल्ल४ मुखारविंद - गरिमा सौंदर्य - आधार थी
राधे की कमनीय कांत छवि थी कामांगना मोहिनी ॥ ४ ॥
सद्वस्त्रा - सदलंकृता - गुणयुता - सर्वत्र - सन्मानिता
रोगी वृद्धजनोपकारनिरता सच्छास्त्रचिंतापरा ।
सद्भावातिरता अनन्य - हृदया - सत्प्रेम संपोषिका
राधा थी सुमना प्रसन्न-वदना स्त्री-जातिरत्नोपमा ॥ ५ ॥

× × ×

१उन्मेषिनी = नेत्र खोलना । २ मूरि = जड़ । ३ कुंचित = टेढ़ा, सिकुड़ा हुआ, घूँघरवाले । ४ हर्षोत्फुल्ल = हर्ष से खिला हुआ ।

(मालिनी छंद)

यक दिन छबि-शाली कालिंदी-कूल-शोभी
नव-किशलय१-वाले पादपों मध्य बैठे;
सु-प्रथित कितने ही गोप को देख ऊधो
स-विनय ढिग बैठे जा उन्हीं के स्वयं भी ॥ १ ॥
प्रथम सकल गोपों ने उन्हें प्यार द्वारा
बहु-विध सनमाना भक्ति के साथ पूजा;
भर-भर निज आँखों में कई बार आँसू
फिर कह मृदु बातें श्याम-संदेश पूँछा ॥ २ ॥
परम सरसता से, स्नेह से, स्निग्धता से
तब जन-सुखदानी का सु-संवाद प्यारा;
प्रबचन-पट ऊधो ने सबों को सुनाया
कह-कह बहु बातें शांतिकारी प्रबोधा ॥ ३ ॥
सुनकर निज प्यारे का सु-संवाद जी में
अतिशय सुख पाया गोप की मंडली ने;
पर प्रिय-सुधि से औ प्रेम प्राबल्य द्वारा
कतिपय घटिका लौं सो रही उन्मना-सी ॥ ४ ॥
फिर बहु मृदुता से, स्नेह से, धीरता से
सुप्रथित उन गोपों में बड़ा वृद्ध जो था;
वह ब्रज-धन प्यारे बंधु को मुग्ध-सा हो
सुललित निज बातों को सुनाने लगा यों ॥ ५ ॥

(वंशस्थ छंद)

प्रसून२ यों ही न मिलिंद-वृंद को
विमोहता औ करता प्रलुब्ध है;

१ किशलय = पत्ते। २ प्रसून=पुष्प, फूल।

वरंच प्यारा उसका सु-गंध ही
उसे बनाता बहु - प्रीति - पात्र है ॥ १ ॥
विचित्र ऐसे गुण हैं व्रजेंदु[1] में
स्वभाव ऐसा उनका अपूर्व है ;
निबद्ध-सी है जिनमें नितांत ही
व्रजानुरागी जन की विमुग्धता ॥ २ ॥
स्वरूप होता जिसका न भव्य है
न वाक्य होते जिसके मनोज्ञ हैं ;
अतीव प्यारा बनता सदैव है
मनुष्य सो भी गुण के प्रभाव से ॥ ३ ॥
अनूप जैसा घन - श्याम - रूप है
तथैव वाणी उसकी रसाल है ;
निकेत वे हैं गुण के, विनीत हैं
विशेष होगी उनमें न प्रीति क्यों ॥ ४ ॥
सरोज है दिव्य सुगंध से भरा
नृलोक[2] में सौरभवान स्वर्ण है ;
सुपुष्प से सज्जित पारिजात है
मयंक है श्याम बिना कलंक का ॥ ५ ॥
प्रवाहिता जो कमनीय धार है
कलिंदजा की भवदीय सामने ;
विदूषिता से पहले अतीव थी
विनाश - कारी विष - कालिनाग से ॥ ६ ॥
मदीय प्यारी अयि कुंज कोकिला !
मुझे बता तू किस कूक क्यों उठी ;

---

१ व्रजेंदु=श्रीकृष्णजी। २ नृलोक=नर-लोक।

विलोक मेरी चित - भ्रांति क्या बनी
विषादिता संकुचिता निपीड़िता ॥ ७ ॥
प्रवंचना है यह पुष्प - कुंज की
भला नहीं तो व्रजमध्य श्याम की ;
कभी बजेगी अब क्यों सु - बाँसुरी
सुधा-भरी मुग्धकरी रसोदरी ॥ ८ ॥
विषादिता तू यदि कोकिला बनी
विलोक मेरी गति तो कहीं न जा ;
समीप बैठी सुन सर्व - वेदना
कुसंगजा मानसजा मदंगजा ॥ ९ ॥
यथैव हो पालित काक-अंक में
त्वदीय[1] बच्चे बनते त्वदीय हैं ;
तथैव[2] माधो यदु-वश में मिले
दुखी बना, मंजुमना[3], व्रजांगना ॥ १० ॥
तथापि होती उतनी न वेदना
न श्याम को जो व्रज-भूमि भूलती ;
नितांत ही है दुखदा, कपाल की
कुशीलता, आविलता, करालता ॥ ११ ॥
कभी न होगी मथुरा - प्रवासिनी
निवासिनी गोकुल - ग्राम - गोपिका ;
भला करे लेकर राज - भोग क्या
यथोचिता श्यामरता विमोहिता ॥ १२ ॥

---

१ त्वदीय = तेरे । २ तथैव = तैसे ही । ३ मंजुमना = शुद्ध मन-वाली, अच्छे मनवाली ।

जहाँ न वृंदावन है विराजता
जहाँ नहीं है ब्रज - भू मनोहरा ;
न स्वर्ग है वांछित, है जहाँ नहीं
प्रवाहिता भानु - सुता[1] प्रफुल्लिता ॥ १३ ॥
करील हैं कामद[2] कल्प - वृक्ष से
गवादि हैं काम - दुधा गरीयसी ;
सुरेश क्या है जब नेत्र में रमा
महामना श्यामघना - लुभावना ॥ १४ ॥
जहाँ न वंशी - वट है, न कुंज है
जहाँ न केकी[3] पिक हैं, न शारिका ;
न चाह वैकुंठ रखें, न है जहाँ
बड़ी भली, भानु-लली, समाश्रली ॥ १५ ॥

(दमदार दावे)

जो आँख हमारी ठीक-ठीक खुल पावे ;
तो किसे ताब है आँख हमें दिखलावे ।
है पास हमारे उन फूलों का दोना ;
है महक रहा जिससे जग का हर कोना ।
है करतब लोहे का लोहापन खोना ;
हम हैं पारस हो जिसे परसते सोना ।
जो जोत हमारी अपनी जोत जगावे ;
तो किसे ताब है आँख हमें दिखलावे ।

× × ×

---

१ भानु-सुता = यमुनाजी । २ कामद = इच्छाओं को पूरी करनेवाला । ३ केकी = मोर ।

था हमें एक मुख, पर दस मुख को मारा ;
था सहसबाहु दो बाहों के बल हारा।
था सहसनयन दबता दो नयनों द्वारा ;
रवि देख छिपा तारों का दल सारा।
यह जान मन उमंग जो उमंग में आवे ;
तो किसे ताव है आँख हमें दिखलावे।

× × ×

तप के बल से हम नभ में रहे बिचरते ;
थे तेजपुंज बन अंधकार हम हरते।
ठोकरें मार थे चूर मेरु को करते ;
हुन वहाँ बरसता जहाँ पाँव हम धरते।
जो समझें, हैं दमदार हमारे दावे ;
तो किसे ताव है आँख हमें दिखलावे।

मन

(चौपदे)

यह बुरे को भला बनाता है,
कर सका वह करील को चंदन ;
एक से एक हैं सरस दोनों,
कम नहीं है मलय-पवन से मन ॥ १ ॥
क्या कमाई किए नहीं मिलता,
कम नहीं कामधेनु से तन है ;
हो न धन तो रहें कलपते क्यों?
क्या नहीं पास कल्पतरु मन है ॥ २ ॥
एक को पूँछता नहीं कोई,
एक आधार प्रेम धन का है ;

एक मन है न एक मन का भी,
एक मन एक लाख मन का है ॥ ३ ॥

× × ×

चंद है ऋद्धि - चाँदनी का वह,
वह सकल सिद्धि वेलि - थाला है;
है उसी में कमाल कुल मिलता,
मन बड़ा ही कमालवाला है।

उषा

(चौपदे)

चंद्रवदनी तारकावलि शोभिता,
रंजिता जिसको बनाती है दिशा;
दिव्य करती है जिसे दीपावली,
है कहाँ वह कौमुदी-वसना निशा ॥ १ ॥
क्या हुई तू लाल उसका कर लहू,
क्या उसी के रक्त से है सिक्त तन;
दीन, हीन, मलीन कितनों को बना,
क्यों हुआ तेरा उषा उत्फुल्ल मन ॥ २ ॥
वह बुरी काली कलूटी क्यों न हो,
क्यों न हो वह अति भयंकरता-भरी;
पर कलानिधि का वही सर्वस्व है,
है वही कल कौमुदी की सहचरी ॥ ३ ॥
मणि-जटित करती गगन को है वही,
उडु[1] विलसते हैं उसी में हो उदित[2];

1 उडु = नक्षत्र, तारा। 2 उदित = प्रकाशमान होकर, उदय होकर।

है चकोरों को पिलाती वह सुधा,
है वही करती कुमुद कुल को मुदित ॥ ४ ॥
है विलसती तू घड़ी या दो घड़ी,
किंतु वह सोलह घड़ी है सोहती;
है अगर मन मोहना आता तुझे,
तो रजनि भी कम नहीं मन मोहती ॥ ५ ॥

× × ×

देखकर तुझको परम आरंजिता,
था विचारा प्यार से तू है भरी;
विधु१ विधायकता२ तुझे कैसे मिले,
जब प्रखर रवि की बनी तू सहचरी ॥ ६ ॥

(वनलता)

रस मिले, सरसावन सौ गुनी;
'विलस मंजु - विलासवती बने।
कर विमुग्ध सकी किसको नहीं;
कुसुमिता नमिता बनिता लता ॥ १ ॥
यदि नहीं पग वंदित फूल के;
अवनि३ में अभिनंदित४ हो सकी।
विफलिता तब क्यों बनती नहीं;
वनलता - कलिता - कुसुमावली ॥ २ ॥
सरसता उसमें वह है कहाँ;
वह मनोहरता न उसे मिली।

---

१ विधु = चंद्रमा । २ विधायकता = विधान रचने की शक्ति, नियम बनाने की शक्ति । ३ अवनि = पृथ्वी । ४ अभिनंदित = प्रशंसित ।

बन सकी मुदिता वनिता नहीं;
विकसिता लसिता बन की लता ॥ ३ ॥
विकच[1] देख उसे विकसी रही;
सह सकी हिम-आतप साथ ही।
पति-परायणता-व्रत में रता;
वनलता-तरु-अंक-विलंबिता ॥ ४ ॥
वह सदा पर हस्त-गता रही;
यह रही निजता अवलंबिनी।
उपवनोपगता बनती नहीं;
वनलता वन-भू प्रतिपालिता ॥ ५ ॥
झड़ पड़ी, न रुची हित-कारिता;
यजन में लगी यजनीय के।
सुमनता उसमें यदि है न तो;
वनलता-सुमनावलि है वृथा ॥ ६ ॥
कब नहीं भरता वह भाँवरें;
चित चुरा न सकी कब चारुता।
कब बसी अलि लोचन में न थी;
वनलता कुसुमावलि से लसी ॥ ७ ॥
विलसती वह है बस अंक में;
विकच है बनती बन संगिनी।
सफलता अवलंबन से मिली;
वनलता तरु है तव लालिता ॥ ८ ॥
उपल[2] कोमलता प्रतिकूल है;
अशनि[3]-पात निपातन-तुल्य है।

---

१ विकच=खिली हुई। २ उपल=पत्थर, रत्न। ३ अशनि=वज्र।

वरस जीवन जीवन दे उसे;
बनलता घन है तन पालिता ॥ ६ ॥
बनलता यदि है तरु - बंदिनी;
लसित क्या दल-कोमल से हुई।
किसलिये वर - बास - सुबासिता;
कुसुमिता फलिता कलिता रही ॥ १० ॥

(खद्योत)

प्रकृति चित्र-पट असित-भूत था, छिति पर छाया था तमतोम;
भाद्रमास की अमा निशा थी, जलद-जाल पूरित था व्योम।
काल - कालिमा - कवलित रवि था, कला-हीन था कलित मयंक;
परम तिरोहित तारक - चय था, था कज्जलित ककुभ[१] का अंक ॥ १ ॥
दामिनि छिपी निविड़ घन में थी, अटल राज्य तम[२] का अवलोक;
था निशीथ[३] का समय अवनितल का निर्वापित[४] था आलोक[५]।
ऐसे कुसमय में तम-वारिधि-मज्जित भूत निचय का पोत;
होता कौन न होता जग में यदि यह तुच्छ कीट खद्योत ॥ २ ॥

(ललना-लाभ)

खुला था प्रकृति-सृजन का द्वार,
हो रही थी रचना रमणीय;
विरचती थी अति रुचिकर चित्र,
तूलिका[६] विधि की अति कमनीय ॥ १ ॥
रंग लाती थी हृदय - तरंग,
बह रहा था चिंता का स्रोत;

---

१ ककुभ = दिशा। २ तम = अंधकार। ३ निशीथ = अर्द्ध रात, रात का सन्नाटा। ४ निर्वापित = गया हुआ, मरा हुआ। ५ आलोक = प्रकाश। ६ तूलिका = मूर्ति लिखने की लेखनी।

मंद गति से अवगति-निधि मध्य—
चल रहा था जग-रंजन पोत[१] ॥ २ ॥
चित्र-पट पर भव के उस काल—
खिंच गई एक मूर्ति अभिराम ;
सरलता कोमलता अवलंब,
सरसतामय मोहक रति काम ॥ ३ ॥
उमा-सी महिमामयी महान,
रमा-सी रमणीयता-निकेत[२] ;
गिरा-सी गौरव-गरिमावान,
मानवी जीवन ज्योति उपेत[३] ॥ ४ ॥
अलौकिक केलि-कला-कुल-कांत,
हृदय-तल सुललित लीला-धाम ;
मधुर माता-मानस-सर्वस्व,
नाम था ललना लोक-ललाम ॥ ५ ॥

मधुकर

(दोहा)

क्या न अरेंगे भौंवरें क्या भूलेंगे भौंर ?
क्या तज देंगे कुसुम को कंटक-मय से भौंर ॥ १ ॥
होती है पुलकित विपुल मिले अति ललित ओक ;
विकसित कली गुलाब की अलि-अवली अवलोक ॥ २ ॥
कहा मधुप लोलुप महा चपल अमंजुल गात ;
कहाँ गुलाब खिली कली कोमल कल अवदात[४] ॥ ३ ॥

---

१ पोत=नौका रूप यान, जहाज़ । २ निकेत=धाम, घर । ३ उपेत=उपाय से सिद्ध होने लायक़, पाने योग्य । ४ अवदात=सुंदर, श्वेत ।

विधि सगत होते नहीं विधि के बहु संबंध ;
है सुगंध पूरित सुमन, मधुप परम मधु अंध ॥ ४ ॥
रंग तुम्हारा है रुचिर, उनके काले अंग ;
सुमन तुम्हारी क्यों पटी[1], कपटी मधुकर संग ॥ ५ ॥

(कवि-कीर्ति)

पारस-समान लौह अलजित मानस को ,
परस - परसकर कंचन बनाते हैं ;
नव - नव रस के रसायन विविध कर ,
असरस उर में सरसता लसाते हैं ।
'हरिऔध' सुधामयी कविता कलित कर ,
कवि-कुल वसुधा में सुधा-सी बहाते हैं ;
गाकर अमरता अमर वृंद वंदित की ,
लोक - परलोक में अमर पद पाते हैं ।

(जीवन-मरण)

पोर-पोर में है भरी तोर मोर की ही बान ,
मुँह चोर बने आन-बान छोड़ बैठी है ;
कैसे भला बार-बार मुँह की न खाते रहें ,
सारी मरदानगी ही मुँह मोड़ बैठी है ।
'हरिऔध' कोई कस कमर सताता क्यों न ,
कायरता होड़ कर नाता जोड़ बैठी है ;
छूट चलती है आँख दोनों ही गई हैं फूट ,
हिंदुओं में फूट आज पाँव तोड़ बैठी है ।

× × ×

---

1 पटी = बनी, निभी ।

'दाब मानते हैं' यह भाव बार-बार दब,
दाँत तले दूब दाब-दाब के दिखावेंगे;
आँख देखने की है न उनमें तनिक ताव,
बात यह आँख मूँद-मूँद के बतावेंगे।
'हरिऔध' हिंदुओं में हिम्मत रही ही नहीं,
हार को सदा ही हार गले का बनावेंगे;
चोटी काट-काट वे सचाई का सबूत देंगे,
यूनिटी[१] को पाँव चाट-चाट के बचावेंगे।

× × ×

नवा-नवा सिर को सहेंगे सिर पड़ी सारी,
दाँत काढ़-काढ़ दाँत अपना तुड़ावेंगे;
रगड़-रगड़ नाक नाक कटवा हैं रहे,
पकड़-पकड़ कान कान पकड़ावेंगे।
'हरिऔध' और कौन काम हिंदुओं से होगा,
मिल-मिल गले गला अपना दबावेंगे;
पाँव पड़-पड़ मार पाँव में कुल्हाड़ा लेंगे,
जोड़-जोड़ हाथ हाथ अपना कटावेंगे।

× × ×

लट-लट बार-बार लोट-लोट जाते जो न,
कैसे तो हमारी ललनाएँ कोई लूटता;
फटे जो न होते दिल, फूटा जो न भाग होता,
कैसे लगातार तो हमारा सिर फूटता।
'हरिऔध' कटुता न जाति में जो फैली होती,
कैसे कूटनीतिवाला कूद-कूद कूटता;

---

१ यूनिटी=अँगरेज़ी शब्द unity एकता।

टूट हो रही है, टूट मंदिर अनेकों गए,
मूर्ति टूटती है, है कलेजा कहीं टूटता।

× × ×

आन-बानवाले बात अपनी बना हैं रहे,
आज भी हमारी आन लबी तान सोती है;
कान पर जूँ भी नहीं रेंगती किसी के कभी,
बद कर बदों की बदी विष-बीज बोती है।
'हरिऔध' हाथ मलते भी बनता है नहीं,
बार-बार चूर-चूर होता मान-मोती है;
ललनाएँ छिनीं, किंतु खौलता कहाँ है लहू,
लाल लुटते हैं आँख लाल भी न होती है।

× × ×

रोते-रोते रात हैं बिताते बहुतेरे लोग,
रेते जा रहे हैं गले घर होते रीते हैं;
आग हैं लगाते, हैं जलाते बार - बार जल,
चैन लेने देते नहीं पातकी पलीते हैं।
'हरिऔध' हिंदू मेमने हैं बने चेते नहीं,
चोट पहुँचाते लहू चाटवाले चीते हैं,
पटु१ हो रहे हैं पीटने में पीट - पीट पापी,
एक कीट२ से भी बीस कोटि गए बीते हैं।

× × ×

पातकी जो पातक-पयोनिधि-समान होंगे,
कौतुक तो कुंभ-योनि का-सा दिखलावेंगे;

---

१ पटु=दक्ष, चतुर, होशियार। २ कीट=कीड़ा।

एक मुख से ही पंच मुख का करेंगे काम,
दो ही बाहु मेरे चार बाहु कहलावेंगे।
अधम अधमता बनेगी 'हरिऔध' कैसे,
दो ही दृग सहस - नयन पद पावेंगे;
लोम१-लोम लोमश२लौं अजर-अमर३ होंगे मर्मी,
सारे रक्त-बिंदु रक्त-बीज बन जावेंगे।

× × ×

प्रेम के निकेतनों के प्रेमिक परम होंगे,
प्यार भरा प्याला प्यारवाले को पिलावेंगे;
हिंसक की हिंसा को कहेंगे कभी हिंसा नहीं,
मान वे अहिंसकों को दिल में दिखावेंगे।
'हरिऔध' मानवता मोल को अमोल मान,
अमिल मनों का मेल-जोल से मिलावेंगे;
जीवित रहेंगे नर जाति के हितों के लिये,
जीवन दे जीवन-विहीन को जिलावेंगे।
इत्यादि।

(निर्वेद)

मिलि जैहैं धूरि मैं पराभव४ भाजन ह्वै,
कालकूट५ सागर मलिन को कलंकि है;
बड़े - बड़े लोकपाल६ विपुल विभवधारे,
पल मैं बिलै हैं, ज्यों बिलाती धाक-दाबि है।

---

१ लोम=रोम, देह पर के बाल। २ लोमश=एक ऋषि का नाम। ३ अजर (अ=नहीं, जरा=बुढ़ापा) जो वृद्ध न हो। ४ पराभव=पराजय। ५ कालकूट=विष, ज़हर। ६ लोकपाल=राजा, दिक्पाल।

'हरिऔध' बात कहा तुच्छ तनधारिन की,
कबौं मेदिनी हूँ मीच-भय ते आँख मीचि है;
सरस बसंत है विरस सरसै है नाहिं,
बरस सुधा-रस सुधाकर न सींचि है॥ १॥
सारे लोक लोकपाल-सहित विलोप ह्वै हैं,
कुल कलानिधि काल गाल में समावैंगे;
तारकता तजि-तजि तारक तिरोहित[1] ह्वै,
प्रलय पयोधि में बबूले पद पावैंगे।
'हरिऔध' देव, देव-लोक हूँ दुरैंगे कहूँ,
दिवि[2] में दिवापति न दिपति दिखावैंगे;
मिलि जैहैं सारे भूत-हीन पंचभूत माँहि,
एक दिन पंचभूत, भूत बन जावैंगे॥ २॥
वासर बड़े हैं पै अवासर बनैंगे विधि,
लोमसता चाव कौ लौं लोमस दिखावैंगे;
चिरजीवी जेते हैं न तेऊ चिरजीवी अहैं,
कैसे चिरजीवन जगत जीव पावैंगे।
'हरिऔध' अमरावती न अमरावती है,
सारे लोक काल के उदधि में समावैंगे;
कौन है अमर[3]? है अमरता निवास कहाँ,
एक दिन अमर अमर मर जावैंगे॥ ३॥
चल फिर सकैं न परे हैं फेर माँहि तऊ,
बार-बार फेर पाप-पथ ते फिरे नहीं;
घरी-घरी घर के घनेरे दुख घेरे रहैं,
सब हूँ रुचिर राग घेरे ते घिरे नहीं।

---

१ तिरोहित=गुप्त। २ दिवि=आकाश। ३ अमर=देवता, जो कभी मरे नहीं।

'हरिऔध' आयु-भोग-भाजन भरत जात,
चित मोहमा तें तऊ उभरि फिरे नहीं;
गईं आँखि, तौ आँखि होति ओस पाहन की,
गिरे दाँत तऊ दाँत चित के गिरे नहीं ॥ ४ ॥
ऐसी ही लसैगी हरियारी हरे स्थान में,
ऐसी ही लतानता ललित लता लहि है;
ऐसोई करैंगे कूजि-कूजि कल गान खग,
सुमन सुरभि लै समीर मंजु बहि है।
'हरिऔध' एक दिन, तू हूँ आँख मूँदि लैहै,
ऐसी ही रहैगी मोदमयी जैसी महि है;
ऐसी ही चमक चारु चाँदनी चुरैहै चित,
ऐसोई हँसत मंद-मंद चंद रहि है ॥ ५ ॥

(जातीय गीत)

महती[1] महा पुनीता मधुरा मनोहरा है;
वसुधा ललाम[2] भूता भारत-वसुंधरा है।
नव सस्य-शालिनी है, सुप्रसून शालिनी है,
विदिता रसालिनी है, सुप्रसिद्ध उर्वरा[3] है।
सर्वांग सुंदरी है, प्रियकारिता भरी है;
सुख शांति सहचरी है, सुविभूति निर्भरा है।
नग गिरि किरीटिका है, शुभ सरि समन्विता[4] है;
बहु सर अलंकृता[5] है, सागरा ससागरा है।

---

1 महती=बड़ी, श्रेष्ठ, उत्तम। 2 ललाम=सुंदर। 3 उर्वरा=उपजाऊ। 4 समन्विता=सहित। 5 अलंकृता= सुशोभित है।

वर बोध विधु रजनि है, सुविचार चारु खनि है१ ;
मतिमानता जननि२ है, शुचि रुचि सहोदरा है।
कमनीय३ कृति४वती है, लसिता५ यती सती है ;
वर वीरता व्रती है, गति-मति अगोचरा६ है।
गौरव गरीयसी है, महिमा महीयसी है ;
विपुला बलीयसी है, उज्ज्वल कलेवरा है।
आमोद मोदिता है, परमा प्रमोदिता है ;
विभुता विनोदिता है, प्रथिता७ धनुर्धरा है।
सब सिद्धि-दायिका८ है, वांछित विधायिका है ;
संसृति९ सहायिका है, अनुरक्त१० श्रुति११वरा है।
अति दिव्यतम त्रिया है, भव भव्यतर क्रिया है ;
स्वाधीनता प्रिया है, कर्तव्य तत्परा है।

एक विनय

(छतुका)

बड़े ही ढँगीले घड़े ही निराले,
अछूती सभी रंगतों बीच ढाले ;
दिलों के वरों के कुलों के उँजाले,
सुनो ऐ सुजन पूत करतूतवाले।
तुम्हीं सब तरह हो हमारे सहारे,
तुम्हीं हो नई सूझ आँखों के तारे ॥ १ ॥

---

१ खनि है = खान है, आकर है। २ जननि = माता। ३ कमनीय = सुंदर, मनोहर। ४ कृति = उपकार। ५ लसिता = शोभायमान। ६ अगोचरा = (अ = नहीं, गोचर = इंद्रियों के सामने) अलख, छिपा हुआ, जो देखने में न आए। ७ प्रथिता = ख्यात, प्रसिद्ध। ८ दायिका = देनेवाली। ९ संसृति = संसार, जगत्। १० अनुरक्त = प्रेमी। ११ श्रुति = वेद।

तुम्हीं आज दिन जाति-हित कर रहे हो,
हमारी कमाई अमर कर रहे हो;
तनिक उलझनों से नहीं डर रहे हो,
सिकुड़ती नसों में लहू भर रहे हो।
तुम्हीं ने हवा यह अनूठी बहाई,
कि यों बेलि हिंदी उलहती[1] दिखाई ॥२॥

इसे देख हम हैं न फूले समाते,
मगर यह विनय प्यार से हैं सुनाते;
तुम्हें रंग ये हैं न अब भी लुभाते,
कि जिनमें रँगे क्या नहीं कर दिखाते।
किसी बागवाले को लगती है जैसी,
तुम्हें आज भी लौ लगी है न वैसी ॥३॥

सुयश की ध्वजा[2] जो सुरुचि की छड़ी है,
सुदिन आह जिसके सहारे खड़ी है;
सभी को सदा आस जिससे बड़ी है,
सकल जाति की जो सजीवन जड़ी है।
बहुत-सी नई पौध ही यह तुम्हारी,
नहीं आज भी जा सकी है उबारी ॥४॥

जननि-गोद ही में जिसे मोद पाया,
जिसे बोल घर में मनों को लुभाया;
दिया प्यार, जिसका सुगम मधु मिलाया,
उमग[3] दूध के साथ माँ ने पिलाया।

---

१ उलहती = उमड़ती हुई। २ ध्वजा = पताका। ३ उमग = उमंग हो।

बरन१ ब्योंत के साथ जिसके सुधारे,
कढ़े तोतली बोलियों के सहारे ॥ ८ ॥

सभी जाति के लाल सुध-बुध के सँभले,
वही मा की भाषा ही पढ़ते हैं पहले;
इसी से हुए वे न पचड़ों से पगले,
पड़े वे न दुविधा में सुविधा के बदले।
भला किसलिये वे न फूलें-फलेंगे,
सुकरता सुकर२ जो कि पकड़े चलेंगे ॥ ६ ॥

× × ×

भला कौन लिपि नागरी-सी भली है,
सरलता मृदुलता में हिंदी ढली है;
इसी में मिली वह निराली थली है,
सुगमता जहाँ सादगी से पली है।
मृदुल मति किसी से न ऐसी खिलेगी,
सहज बोध भाषा न ऐसी मिलेगी ॥१०॥

अगर अपनी जातीयता है बनाना,
अगर चाहते हो न निजता गवाना;
अगर लाल को लाल ही है बनाना,
अगर अपने मुँह में है चंदन लगाना।
सदा तो मृदुल बाल-मति को सँभालो,
उसे वेलि हिंदी-विटप की बना लो ॥१२॥

समय पर न कोई प्रभो चूक पावे,
भली कामना वेलि ही लहलहावे;

---

१ बरन = वर्ण। २ सुकरता सुकर......चलेंगे = अच्छे कार्य को भले प्रकार अपनाकर जो पकड़े चलेंगे।

विकसती हृदय की कली दब न जावे,
स्वभाषा सभी को प्रफुल्लित बनावे।
खिले फूल जैसे सभी के दुलारे,
फलें और फूलें बनें सबके प्यारे ॥ १२ ॥

श्रीपं० सेंतूलालजी बिल्थरे

पं० सेंतूलालजी बिल्थरे, जबलपुर का जन्म वैशाख शुक्ल ६ संवत् १६२६ वि० में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० जगन्नाथप्रसादजी बिल्थरे था। आपके पूर्वज मोठ (झाँसी) के रहनेवाले थे, किंतु तीन पीढ़ी से वे मऊ (झाँसी) में रहने लगे थे। अब आप व्यवसाय-वश चालीस वर्ष से जबलपुर में रहने लगे हैं। आपका रचना-काल प्रायः सं० १६५६ वि० से प्रारंभ होता है। जबलपुर के 'भानुकवि-समाज' के आप उत्साही सदस्य रहे हैं। जबलपुर-कवि-समाज ने 'श्याम कवि' की आपको उपाधि दी थी।

पं० गंगाधर व्यास, छतरपुर से भी आपका परिचय और प्रेम था। आपने 'नव-रस-सुधा'-नामक ग्रंथ की रचना की है, किंतु अभी वह अप्रकाशित ही है। समस्या-पूर्तियाँ तथा अन्य स्फुट रचनाएँ आपकी पर्याप्त संख्या में हैं। आजकल भी आप कविता करते हैं। आपकी कविताएँ सरस और मनोहर होती हैं।

उदाहरण—

लायक हैं ऋधि के सिधि के, उर बुद्धि विशाल सदा सुखदायक;
दायक दीन दया जन के, हर के सुत हो सुख संपति लायक।
लायक जो जन जाहि रटैं, सु कटैं दुख द्वंद गहे चितचायक;
चायक चित्त सदा द्विज श्याम, सुगजानन हैं सबके गणनायक।

मुक्ति को महेश औ रमेश जैसे साधुन को,
विश्व को विधाता जैसे, धन को धनेश१ हैं;
पापिन को गंग औ अनंग जैसे शोभा को हैं,
हंसन को मानसर, पच्छिन खगेश हैं।
जल जैसे जीवन को, अन्न जैसे प्राणिन को,
संशय को संत जैसे पंकज दिनेश हैं;
बिघन बिनाशबे को, संपत प्रकाशबे को,
श्याम शर्ण राखिबे को, संकट गनेश हैं।

× × ×

शंकर शीस जटा जु लसैं उर हेम-सुता सिर सुंदर सारी;
चंदन खौर दिए हर के तन पारबती सुच बिंदु महारी।
अंग भभूत लसैं मुँडमाल, सुगौर गले हियमाल जु प्यारी;
शंभु उमा शरणागत हौं, अब बेग सहाय जु होय हमारी।
काव्य-भेद जानौं नहीं, मैं मतिमंद गँवार;
शिव-चरित्र सागर-सरिस, वेद न पावत पार।

× × ×

सुंदर रूप सरूप दियो हरि भूलो फिरो ममता लपटानी;
काम अरु क्रोध पगो निश बासर, वेद-पुरान सुनो नहिं कानी२।

---

१ धनेश=कुबेर। २ कानी=कानों से।

उत्तम धर्म न कर्म करे कछु स्याम सदा सतसंग न छानी ;
आतम ज्ञान बिचारे बिना पर प्रात भयो पै निशा[1] न नशानी ।

× × ×

तेरो मुख निरख कंज जल में दुरे हैं जाय ,
द्रगन को देख मृगा बन को पराने हैं[2] ;
नासिका को देख सुआ वृच्छन निवास कीन्हों ,
कपोलन को देख एना[3] तड़ि के दिखाने हैं ।
दंतन को देख-देख दाड़िम दरार खाई ,
ग्रीवा को देख कंबु अंबु में छिपाने हैं ;
श्याम द्विज दीन होत, चंद्र - छबि छीन होत ,
वैनी को बिलोक लोक पन्नग[4] लजाने हैं ।
तेरो मुखचंद्र कहौं सो तो कलाहीन प्यारी ,
नैनन को कमल कहौं निश में दुखारे हैं ;
नासिका को कीर कहौ सो तो बन माँझ बसे ,
दशन अनार कहौं सो तो हियो फारे हैं ।
ठोड़ी को रसाल कहौं ऐसो न मिठास जामें ,
ग्रीवा कहौं संख सो तो सिंधु से निकारे हैं ;
श्याम कवि श्रीराधे की उपमा कहाँ लौं कहौं ,
पटतर न पाई तासौं तीन लोक हारे हैं ।

× × ×

उदर अगाध बीच बहुत तें कष्ट पायो ,
करकें कबूल भक्ति प्रभु पै पुकारा है ;

---

१ निशा=रात । २ पराने हैं=भाग गए हैं । ३ एना=आइना, शीशा । ४ पन्नग=साँप ।

सुनके तुरंत तोहि ऐसी नर - देह दई,
यहाँ आय भूलो शठ, प्रभु को बिसारा है।
बालपन खेल खाय-खाय के खराब करौ,
ज्वानी जोर जोबन में निरखत दारा है;
नमकहराम होत हरि सों भनै ये श्याम,
सोने सो शरीर तैं ने नाहक बिगारा है।
पूरवज सनाढ्य थे, अत्रि मुनि पाराशर,
व्यास हू प्रसिद्ध जो पुरान कथि गाए हैं;
ज्ञान - ध्यान ब्रह्मवेता जो गुरु बशिष्ठ भए,
'जोग हू बशिष्ठ' जिन राम को सुनाए हैं।
कलियुग केसौदास काव्य - कला कुशल थे,
रामचंद्रिका को रच राम - गुण गाए हैं;
भनै द्विज श्याम ब्रह्म बंश की प्रशंसा कहा,
वे जुगान जुग हू सें कवि होत आए हैं।

× × ×

आपने दादरे, फागें आदि भी अच्छी लिखी हैं। उदाहरणार्थ दो नमूने देखिए—

(होरी)

आज सदा शिव दूला बनौ री,
शृंगी रिष शृंगार करौ री;
सरपन को शिर मुकट विराजे,
बिच्छू कान परौ री।
कंकन व्याल हाथ बिच सोहैं,
कर तिरसूल धरौ री;
शृंगी नाद करौ शंकर ने,
भए भूव यकठौरी।

ब्रह्मा विष्णु सकल सुर आए,
बाहन बिबिध सजौ री।

× × ×

'श्याम' सुकवि शंकर की महिमा—
को कवि वरण सकौ री।
शेष - गनेश पार नहिं पावत,
या से शरण गहौ री।

× × ×

सूनो सदन है मेरा,
या में करौ मुसाफिर डेरा;
घर नहिं सास, ननद गई नेउतें,
पिय परदेश बसेरा।
सरसिज[1]-सेज सुभग जल शीतल,
है आराम घनेरा;
भोजन भोग भवन में हाजिर[2],
नारंगी फल केरा।
'श्याम' कहैं यों कहती प्यारी,
जईयो[3] होत संवेरा।

× × ×

श्रीनर्मदाजी के विषय में भी आपने कुछ कवित्त लिखे हैं, उसकी भी बानगी देख लीजिए—

रेवा[4]-तट वास किए पाप-पुंज दूर होत,
दारिद रहैं ना गेह, ध्यावत जो प्राणी है;

---

१ सरसिज=कमल। २ हाजिर=उपस्थित। ३ जईयो=जाइएगा। ४ रेवा=नर्मदा।

ध्यान के किए ते धरणी औ धन-धाम मिले ,
नाम के लिए ते होत शुद्ध मन-बानी है।
एक बुंद पान कीन्हें पाप सब दूर होत ,
मुक्ति की निशानी तासे शिव मनमानी है ;
श्याम-दुख दंडन को, पाप-पुंज खंडन को ,
भक्ति उर मंडन को रेवा महारानी है।
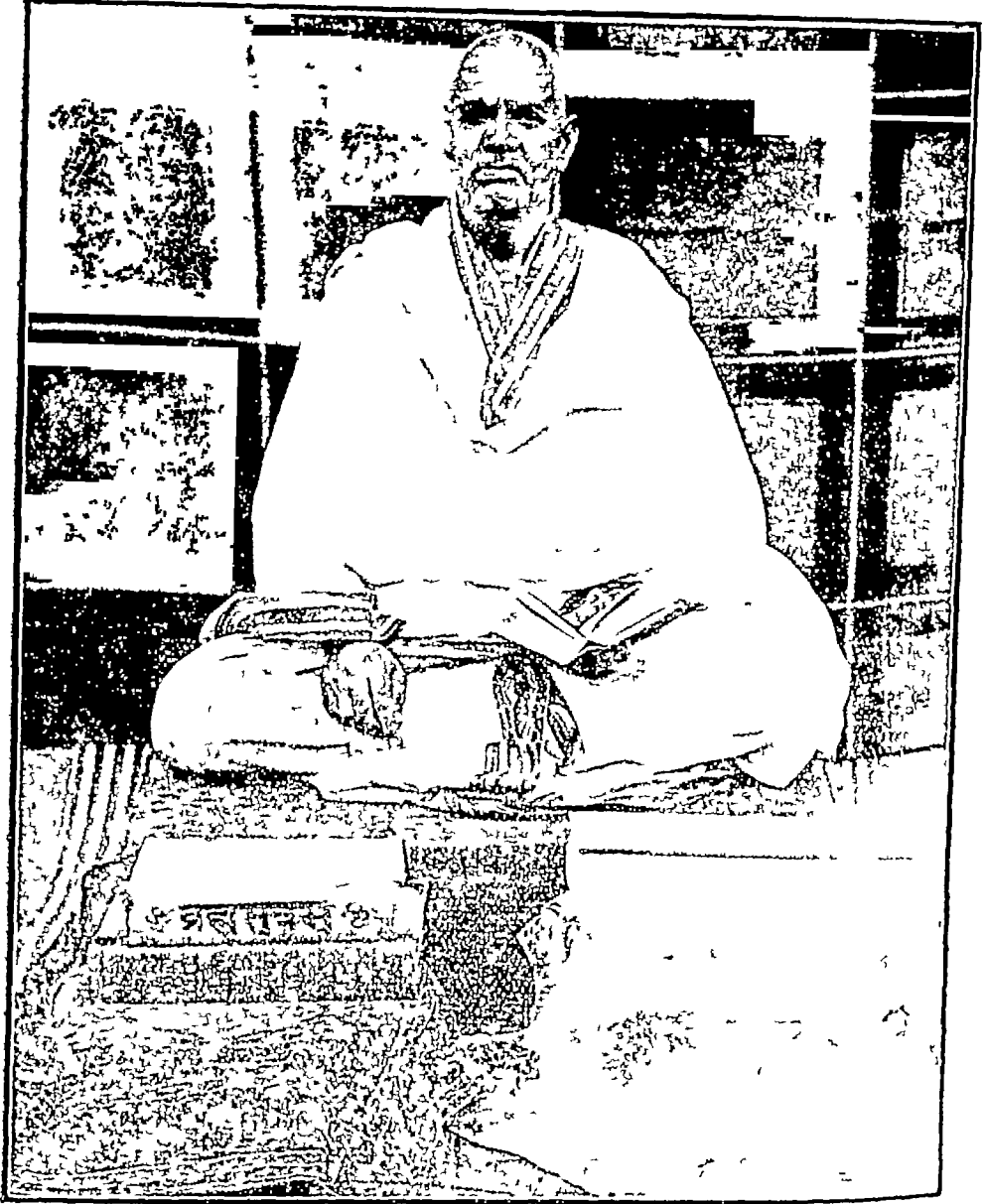
सिद्धांत-वागीश श्रीपं० दशरथजी द्विवेदी शास्त्री, वैयाकरण-भूषण, सोरों

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीपं० दशरथजी द्विवेदी

सिद्धांत-वागीश श्रीपं० दशरथजी द्विवेदी शास्त्री, वैयाकरण-भूषण का जन्म पौष कृष्ण ८ भृगुवार सं० १९३० वि० को सोरों (वाराह-क्षेत्र) जिला एटा में हुआ था।

आपके पिता का नाम पं० नारायणजी तथा माता का नाम देवकी था। आपका गोत्र भारद्वाज, यजुर्वेद, त्रिप्रवर (भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य), दक्षिणपाद, दक्षिणशिखा, दक्षिणद्वार, कात्यायन श्रौत सूत्र एवं त्रिवेदी उपाधि है। किंतु आपके वृद्ध प्रपितामह पं० मयारामजी द्विवेदी-कुल के दौहित्र थे। इनके द्विवेदी मातामह के कोई पुत्र न था, अतः उन्होंने अपने दौहित्र (धेवते) को अपनी गोद (दत्तक) रख लिया था। और तभी से आपके प्रपितामह पं० मयारामादि पूर्वज तथा स्वयं भी द्विवेदी करके प्रसिद्ध हैं।

आपके पूर्वजों की कुल-वृत्ति तीर्थ-पौरोहित्य थी। आपके पिताजी बड़े ही उदार-प्रकृति, सरल एवं भगवद्भक्त तपस्वी थे, इसी कारण लोग इनको ऋषिजी कहकर संबोधित करते थे। उन्होंने सनाढ्य-शब्द को चरितार्थ कर दिखाया था। ऋषिजी ने

(अपने पुत्र) हमारे चरित्रनायक द्विवेदीजी को ६ वर्ष की आयु में हिंदी-वर्ण-माला का आरंभ करा दिया था। कुशाग्र-बुद्धि पंडितजी ने ८ वर्ष की आयु में हिंदी लिखने-पढ़ने की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। ६ वर्ष की अवस्था होने पर स्वकीय तीर्थ-पौरोहित्य कर्म भी भली भाँति संपादन करने लगे थे। ११ वर्ष की आयु तक देवस्तोत्र-पाठ, फुटकर मंत्रादि कंठस्थ करते रहे। आपका चित्त पढ़ने में खूब लगता था, और इसी कारण आपसे अध्यापक प्रसन्न रहते थे। १२ वर्ष की आयु में पं० लक्ष्मणजी मिश्र ने सोरों से अमरकोष और लघु-सिद्धांत कौमुदी का प्रारंभ किया। १४ वर्ष की आयु में मारहरा-निवासी पं० रामनाथजी गौड़ शास्त्री से अंतिम भाग कौमुदी समाप्त कर अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य, काव्य आदि यथाक्रम प्रारंभ कर १६ वर्ष की अवस्था में समाप्त किए। साथ-ही-साथ अपनी प्रखर बुद्धि के बल से ज्योतिष एवं वैद्यक का अभ्यास कर आपने श्रीपं० मेवारामजी मिश्र-कृत 'वैद्य-कौस्तुभ'-नामक चित्र-काव्य (आयुर्वेद-विषयक एक क्लिष्ट ग्रंथ) की मिताक्षरा शास्त्र-नामक संस्कृत-टीका की।

आपकी अवस्था अभी १६ वर्ष ही की पूर्ण नहीं होने पाई थी कि आपके पिताजी स्वर्गगामी हो गए। विद्यार्थी-अवस्था में आप पितृ-हीन होने पर तथा गृहस्थी का सब भार आपके ऊपर आ पड़ने पर तथा और भी अनेकानेक कठिनाइयों के होते हुए भी आपने विद्याध्ययन में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होने दी।

२० से २३ वर्ष की आयु तक आपने स्वामी आत्मानंदजी पुरी से वेदांत-विषयक पंचदशी, सांख्यतत्त्व-कौमुदी, सांख्य-प्रवचनीय भाष्य और स्वामी प्रकाशानंदजी पुरी से प्रस्थान-त्रय का अध्ययन किया। पश्चात् उपर्युक्त स्वामी प्रकाशानंदजी पुरी के काशी प्रस्थान करने पर आप भी काशी चले गए, और उक्त स्वामीजी से ही माथुरी, जागदीशी, पक्षता, व्यधिकरण आदि नव न्याय-ग्रंथों का तथा गोपाल-मंदिर में पं० राम शास्त्रीजी से व्याकरण के शेखरादि टीका-ग्रथों का अध्ययन कर २५ वर्ष की आयु में अपने गृह सोरों लौट आए।

सोरों में संस्कृत-विद्या के प्रचारार्थ आपने सज्जनानंदिनी-नामक पाठशाला स्थापित की, जिसमें कई वर्ष तक आप अवैतनिक अध्यापक रहकर लगभग ८० विद्यार्थियों को विद्यादान करते रहे। आपके प्रशंसनीय परिश्रम से आपके कितने ही विद्यार्थी शास्त्री, आचार्य, काव्यतीर्थ आदि-आदि उपाधिधारी अच्छे-अच्छे विद्वान् हुए।

सोरो-तीर्थ मे संस्कृत-भाषा के प्रचार का श्रेय केवल आप ही को है। आप व्याकरण और संस्कृत-साहित्य के महान् विद्वान् होने के अतिरिक्त आयुर्वेद के पूर्ण मर्मज्ञ हैं, तथा उच्च कोटि के प्रतिभाशाली कवि हैं। आप ईश्वर-भक्त, षट्कर्म-परायण, वेदाध्यायी, धर्मनिष्ठ, साधु-प्रकृति के व्यक्ति हैं। देश में जाति-सुधार, सनातन, वैदिक धर्म तथा संस्कृत-विद्या के

प्रचारार्थ आप सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। विद्वत्समाज तथा स्वर्गीय सवाई माधौसिंहजी जयपुर-नरेश आदि कतिपय गुण-ग्राही राजाओं द्वारा भी आप सम्मानित हैं।

आपके तीन पुत्र हैं; तीनो ही विद्याध्ययन कर रहे हैं, और ये भी आप ही के समान होनहार प्रतीत होते हैं। उनके नाम क्रमशः बालहरि (ज्येष्ठ), हरियश (मध्यम) और यशोधर (कनिष्ठ) हैं।

२६ वर्ष की आयु से ५३ वर्ष की आयु तक अध्यापन-कार्य के अतिरिक्त आपने निम्न-लिखित १४ पुस्तकों की रचना की है। तथा दो पुस्तकों (वैद्य-कौस्तुभ काव्य तथा सूकरक्षेत्र-माहात्म्य) को संस्कृत और भाषा-टीका की है—

(१) कृषि शासन (२) विधानमार्तंड (३) आधुनिक मतमर्दन (४) कातन्त्रचंद्रिका (५) श्लोकबद्ध लघुसिद्धांत कौमुदी (६) वियोगिनीवल्लभ काव्य (७) सर्प-चिकित्सा (८) विषोपविष-मीमांसा (९) समस्या-पूर्ति काव्य (१०) देवस्तोत्र (११) गोत्र-कौमुदी काव्य (१२) प्रति-निधि काव्य (१३) दिल्लगीदर्पण भाण (१४) डुकरिया पुराण (बुढ़िया पुराण)।

इनमें उपर्युक्त प्रथम तीन पुस्तकों को छोड़ शेष सब अप्रकाशित हैं।

आपकी कविता के कुछ नमूने निम्न-लिखित हैं—

(कृषि-शासन)

*इच्छागोदारयाद्येन येनाकृष्यात्मकाश्यपीम् ;
उक्तं संपादितं विश्व महस्किमपि मन्महे ॥ १ ॥

†असारे खलु संसारे घोरापत्तिसुदुस्तरे ;
धर्मज्ञो ना कथं जीवेद्यत एतद्विचार्यते ॥ २ ॥

‡कृषिक्रिया सर्वयुगेषु पूजिता
द्विजैर्न निन्द्या कथिता कदापि च ;
अतः सुसेव्या भुवने द्विजाग्रजैः
सदा चतुर्वर्गफलेप्सुभिर्जनैः ॥ ३ ॥

§सुसूक्ष्मदृष्टिप्रविचारतोऽपि
भातीति नो स्थूलदशा कदापि ;
वेदान्तसिद्धान्तविचारदक्षः
पाथःपतिर्वै भृगवे समूचे ॥ ४ ॥

---

* जिसने इच्छारूपी बैलों द्वारा आत्मारूपी पृथिवी को जोतकर अखिल विश्वोत्पत्ति (विश्वरूप फल) की, वह कोई महान् (परब्रह्म) व्यक्ति है।

† विशाल आपत्तियों से असार संसार में पार पाने के लिये धर्मात्मा मनुष्य कैसे जिए, यह विचार मैं उपस्थित करता हूँ।

‡ कृषि-कार्य सर्वयुगों में महनीय माना गया है और द्विजोत्तमों द्वारा कभी भी निंद्य नहीं कहा गया है। अतएव धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के फलेच्छुक द्विजों द्वारा यह कृषि-कार्य सदा आदरणीय एवं करणीय है।

§ अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर भी मुझे उत्कृष्ट हालत कभी भी दृष्टिगोचर नहीं हुई है। इस प्रकार वेदांतसिद्धांत के पारगामी समुद्र ने भृगुजी से कहा।

*प्रकर्षका धर्म्यकृषिक्रियापराः
स्वाध्याययागादिरता अदम्भिनः ;
सद्ब्राह्मणाः पूज्यतमाः प्रकीर्तिताः
हव्येषु कव्येषु च पङ्क्तिपावनाः ॥ १ ॥

†षट्कर्माणि कृषिं ये च कुर्युर्ज्ञात्वा विधिं द्विजाः ;
देवादिभ्यो वरं प्राप्य स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥ २ ॥

‡रागिण्यः किं नागदेवललना गन्धर्वबाला किमु
किं वा यतीसुदक्षलोलनयनाः किं वाऽप्सरः संचयाः ;
किं वा चञ्चलविद्युतः सुनयनाः किं मेघमालागणाः
एताः सुन्दरभूषणांबरधरा आयान्ति गायन्ति किम् ॥ ३ ॥

§रक्ताम्बरा सुवर्णाभा बिम्बाधरा हसन्त्यसौ ;
उद्गच्छन्ती शुभा भाति पूर्वा संध्या वधूरिव ॥ ४ ॥

---

* धर्म और कृषि-संबंधी क्रियाओं में तत्पर, स्वाध्याय और यज्ञ आदि क्रियाओं में आसक्त, अभिमान-शून्य, हवन और तर्पणान्न-दान की पंक्ति में पवित्र और प्रकर्षशाली उत्तम ब्राह्मण अति पूज्य माने गए हैं।

† जो ब्राह्मण शास्त्रीय विधि-पूर्वक दैनिक षट्कर्म और कृषि को करते हैं, वे देवादिकों से वर प्राप्त कर स्वर्ग पाते हैं।

‡ जो मनोहर वस्त्राभूषणों को धारण करनेवाली ये सुनयनियाँ आ रही हैं और गा रही हैं, वे क्या गाती हुई सर्पराज की ललनाएँ हैं या गंधर्वों की कन्यकाएँ हैं अथवा लयों में चतुर एवं चपलाक्षी अप्सराओं के समूह हैं। या चंचल बिजलियाँ हैं अथवा सगर्ज मेघमालाएँ हैं। क्या हैं।

§ रक्तवस्त्रों को धारण करनेवाली, गौरवर्णवाली, रक्तौष्ठवाली, हँसती हुई, जाती हुई यह कोई नायिका, मनोहारिणी पूर्व-संध्या के समान शोभायमान होती है।

*कान्ते कोकिलकोमलस्वरकले कञ्जाक्षि कुम्भस्तनि
काम मुञ्च मृणालबाहुलतिकाबद्धं च मां मानिनि;
यातो निखिलनगरेऽधुना प्रियतमे बाले समुत्ताडितो
होलीडिण्डिमकः प्रबोधयति नॄनेकादशीमागताम्‌ ॥ ५ ॥

†अलिलसिता कोकिलरवरम्या
नवदलहृद्या कुसुमविचित्रा;
प्रमितसुवाता ललितनमेरु-
र्ननु विपिनालिर्भवति वसन्ते ॥ ६ ॥

‡द्विषन्तु निन्दन्तु नुवन्तु नित्यं
भजन्तु सन्तं प्रणमन्तु तस्य;
पुनर्निजानन्दनिलीनकस्य
न कापि हानिर्न च कोऽपि लाभः ।

---

* अयि कोकिलवत्कोमलस्वरधारिणी कमल-नेत्री ! कलशस्तनी मानिनी ! प्रियतमा ! बाले ! मृणाल-समान बाहुवल्लीवद्ध मुझको छोड़ो । इस समय संपूर्ण नगर में व्याप्त, ताड़ित होली के नगाड़े का शब्द मनुष्यों के होली की एकादशी के आगमन को सूचित करता है ।

† वसंत-ऋतु में विपिन-पंक्ति भ्रमरों से शोभित, कोकिलाओं की गुंजारों से मनोहर, नूतन पल्लवों से हरी-भरी, पुष्पों से नाना वर्ण, मंद वायुवाहिनी और हृदयहारी कल्पवृक्षों से सुशोभित हो रही है ।

‡ सतत अविकारी उस देव से कोई भी व्यक्ति सदा इच्छा-नुसार द्वेष करे, उसकी निंदा, स्तुति वा पूजा करे तथा उसको नमस्कार भी करे, किंतु सतत स्वात्मानुभव में लीन उन भगवान् के उन बातों मे हानि और लाभ (राग-द्वेष) कुछ भी नहीं है ।

*नियमित परिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादै-
हिमगिरितनया तन्निष्क्रियं रोचमाना ;
स्मितवदनसरोजा भ्रूविलासान्किरन्ती
कृतदृढभुजपाशा वल्लभं स्वालिलिङ्ग।
†साहित्यशास्त्ररसपानविलोलुपानां
विद्यावतां सदसि लोलदृशां विलासः ;
दोषोज्झितो गुणयुतः कविवाक्यगुम्फो
भूषायुतो वितनुते सरसः प्रसादम्।
‡वाग्जालसिन्धुपरपारसमाश्रितानां
वक्ता सभा सुवद साधु गिरो जनानाम् ;
कोऽस्तीति निर्दिशति कान्तजनो निशम्य
दक्षः प्रिये स इह पाणिनियोग एव।

---

* श्रीगिरीश के शेखरस्थ चंद्र-किरणों की तरावट से थकावट-रहित, स्थिरता शोभित होती हुई, हास्य-युक्त मुख-कमल को धारण करनेवाली, कटाक्षों को फेकनेवाली, भुज-पाश को दृढ़ करनेवाली पार्वती ने महादेव का गाढ़ालिंगन किया।

† साहित्य-शास्त्र के रस-पान में लोलुप, विद्वानों की सभा में दोषातीत, सगुण, कवि-वचनों की रचना-विशिष्ट, अलंकार-युक्त ललनाओं का सरस विलास प्रसन्नता उत्पादन करे।

‡ वचनजाल रूपी समुद्र की पारंगत स्त्रियों की सभाओं में रसमयी वाणियों (वैवाहिक गीतों) का सुरीत्या कथन करनेवाला इस विवाह-मंडप में कौन है ? कहिए, इस प्रकार किसी चपल नायिका द्वारा पृष्ट नायक (वर) सुनकर बोला कि हे प्रिये ! जो इस विवाह-मंडप में पाणिग्रहण-कार्य में आरूढ़ है, वही उक्त कार्य में समर्थ है।

ॐ हे कंस ! नीतिनिपुण ! स्मृतिदक्ष ! वीर !
खेऽटित वाचमविचार्य विनाऽपराधम् ;
आर्यस्य सत्कुलभवस्य वधो भगिन्या
न्याय्यस्तवाद्य नहि पाणिनियोग एव ।

† विमानमारुह्य ससैनिकानुजः
प्रयान्पुरीं तां रणवृत्तकं वदन् ;
तदेत्युवाचेयमभूद्वदामि किं
प्लवंगरक्षस्तरसाऽऽर¹सारसा ।

‡ देवाः प्रसन्ना न्यवसन्यथासुखं
देवाधिराजे त्रिदिवं मुदाऽवति ;
श्रीकान्तमन्तः सुखिनो जनास्तथा
श्रीलश्करेशे पृथिवीं प्रशासति ।

ॐ कोई देवी भगिनी-सुत-संहारक कंस से कह रही है कि हे कंस ! आप तो नीति-निपुण, स्मरणशील और वीर हो, तुम्हें आकाशोत्पन्न, अनिश्चयात्मक वचन पर पूर्वापर विचार किए विना ही भगिनी की संतान पर निरपराध दुष्ट-पाणिप्रहार करना उचित नहीं ।

† श्रीरामचंद्रजी सैनिक और लक्ष्मण-सहित विमानारूढ़ होकर सीता से युद्ध के वृत्तांत को कहते हुए अयोध्या को रवाना हुए । उस समय पृष्ट सीता बोली कि उस समय दुष्टग्रहों से पीड़ित मैं अब क्या कहूँ कि वानरों और राक्षसों के सैन्य से क्या पुरुषार्थ हुआ ।

¹आर = दुष्टग्रह ।

‡ जैसे स्वर्ग का इंद्रराज के द्वारा पालन होते हुए आनंदित देव सुख-पूर्वक रहते हैं, उसी प्रकार लश्कर महाराज के द्वारा पृथ्वी का पालन होते हुए सुखित जनता श्रीविष्णु भगवान् में बस गई (लीन हो गई) ।

मिथिलेश-सुता हरि कै तुमने कछु ना फल उत्तम पाय लियो;
सब मंत्रि सखा प्रिय जाति पुरोहित कौ कहनो तुमने न कियो।
कपि एक यहाँ सुत मारि जराय पुरी पहुँचो सुनि बानरि हौ;
दल चारि दिशा बिच छाय गयो कुलदीपकजू अब का करिहौ?

× × ×

बिलोकि कर धनु भौंह धरि शर लाल नयन चलाइए;
अति कंज[1]-बदनी फरकि करि बिंबाधरन न चबाइए।
कछु कहत - सुनत न पूँछति सब चतुरता निफलाइए;
चलि आप दशरथ सान्हि गुनगन गाइकै सु रिझाइए।

आपके रचित छत्रबंधों में से उदाहरणार्थ एक छत्रबंध भी देखिए—

1 कंज = कमल।

*चतुर्वेदः१ खलच्छेत्ता२ चक्रधारी सदावतात्।
पद्रीतिप्रदः३ कृष्णोऽपखः४ स नन्दनन्दनः॥

(१) चतुर्भिर्वेदैर्वेदो ज्ञानं यस्य, (२) दुष्टनाशक, (३) पद्रीतेः प्रचारस्य प्रदो दाता, (४) अपगतः खेभ्य इंद्रियेभ्य इन्द्रियागोचरः।

---

* चतुर्वेदज्ञानी, दुष्टसंहारक, चक्रधारणकारी, संचारप्रद, इन्द्रियागोचर, नंदपुत्र श्रीकृष्ण हम सबकी रक्षा करें।

श्रीपं० दिवाकरदत्तजी

पं० दिवाकरदत्तजी शास्त्री का जन्म हाथरस जिला अलीगढ़ में, सं० १९३१ वि० के पौष कृष्णपक्ष में, सप्तमी तिथि रविवार के दिन, मध्याह्न से पूर्व, हुआ था। आपके पिताजी का नाम पं० छोटेलालजी था। आप ज्योतिष एवं कर्मकांड के अच्छे विद्वान् थे, आपका गोत्र गौतम है। आपका कुल 'वल्लाजीवारे' के नाम से प्रसिद्ध है।

हमारे चरित्र-नायक ने अपने पिताजी के प्रायः सभी सद्गुणों को भले प्रकार अपनाया है। आपने व्याकरण, ज्योतिष, काव्य और कर्मकांड आदि के ग्रंथों में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है। आजकल आप अपने ग्राम हाथरस ही में 'राधारमण-संस्कृत-पाठशाला' के प्रधान अध्यापक हैं।

आपका स्वभाव बड़ा ही सरल है। आप परम आस्तिक, ईश्वर-भक्त और विद्या-व्यसनी हैं। हाथरस में आपका बहुत ही मान है। जातीय कार्यों में भाग लेने के लिये आप सदैव प्रस्तुत रहते हैं। आप समय-समय पर 'सनाढ्योपकारक' में अपनी रचित कविताओं को भी भेजते रहते हैं। आप प्राकृतिक कवि हैं, आपकी कविताएँ प्रायः संस्कृत ही में होती हैं।

आप ख्याति के भूखे नहीं हैं। आपकी 'स्तुति-चतुष्टयम्'-नामक पुस्तक ही अभी प्रकाशित हुई है।

आपकी सुकविताओं के नमूने निम्न-लिखित हैं—

*सनस्य मूलं हृदयं सनस्य सनस्य बीजं सनकादिवन्द्यम्;
सनेन वेद्यं सनके प्रतिष्ठित सनातनं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ १ ॥

†सनेन ब्रह्मा स्वसुतान् ससर्ज विप्रान् सनाढ्यान् सनकादिसंज्ञान्;
धर्मप्रचाराय सनाढ्यपुत्रान् सनातनोऽव्यात्सततं सनातनान् ॥ २ ॥

‡धनाढ्यैः सनाढ्यैर्धनैः पोषणीयम्
पवित्रैः सुवृत्तैर्बुधैः पूरणीयम्;
वरीवर्तु पत्रं सदा जातिमध्ये
करोतूपकारं सनाढ्यद्विजानाम् ॥ ३ ॥

§स्वविक्रमाद्वैरिपराक्रमाणाम्
हन्तुर्धरापालविकर्तनस्य ;
श्रीविक्रमस्यामितविक्रमस्य
वेदाद्रिवन्देन्दुमिते सुवर्षे ॥ १ ॥

---

* जो सन (तप, आत्मा) का आदि कारण, हृदय, बीज और ब्रह्मपुत्र आदि द्वारा पूजनीय, आत्मवेद्य एवं आत्मा में ही प्रतिष्ठित हैं, उन शरण-भूत ब्रह्मा का हम सब आश्रय लेते हैं।

† जिसने अपने (तप, आत्मा) द्वारा ब्रह्मपुत्र आदि स्व पुत्र-स्वरूप सनाढ्य ब्राह्मणों को बनाया, वह ब्रह्मा धर्म-प्रचार के हेतु उन प्राचीन (सनातनधर्मी) सनाढ्य-पुत्रों की सदा रक्षा करे।

‡ धनवान् सनाढ्य ब्राह्मणों द्वारा सदा धन से पोषणीय, विद्वानों द्वारा उत्कृष्टोत्कृष्ट समाचारों से भरणीय कोई समाचार-पत्र इस जाति में सदा शाश्वत रहे, जो सनाढ्य ब्राह्मणों का उपकार करे।

§ अपने विक्रम से शत्रुओं के पराक्रम के विध्वंसक, समस्त

* वन्दत्रिनागेन्दुमिते शकाख्ये
चैत्रादिमासे युगनेत्रभाग ;
अंकान्सुलेखेन समङ्कितान्स्वान्
क्रमेण दद्यादिह पाक्षिकेण ॥ २ ॥
(युग्मम्)

× × ×

(स्व० श्रीपं० दुर्गादत्तजी द्विवेदी, वृंदावन की मृत्यु के शोक में लिखित)

† हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! कठोरचित्त !
हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! दया न तेऽस्ति ;
मुष्णासि रत्नानि मुहुः पृथिव्याः
रत्नाकरस्त्वं न तथापि तेऽस्ति ॥ १ ॥
‡ श्रीदुर्गयातीव प्रसन्नचित्तया

राजमंडल में सूर्य-समान तेजस्वी, अमित पराक्रमी श्रीविक्रम राना के संवत् वि० १९७३ के शुभ वर्ष में—

* और १८४८ शकीय संवत् में चैत्र आदि मासों में मासांत में एक ही साथ दो-दो अंकों को मुद्रित करनेवाला सनाढ्य-सभा का यह पत्र अब आगे अच्छे लेखों से सुसज्जित अपने प्रत्येक अंकों को यथाक्रम पाक्षिक ही प्रकाशित करे।

† हा हा हा हे कठोरचित्त कृष्ण ! तू बड़ा निर्दयी है कि पृथिवीमाता के लालों को अनेक वार चुरा लेता है। पर आश्चर्य है कि चौरत्व से बाज़ न आते हुए भी आपने रत्ननिधि संज्ञा अभी तक नहीं प्राप्त की है।

‡ अतिप्रसन्न दुर्गाजी ने विद्वत्सभा में आनंद के हेतु यह

श्रीपं० दिवाकरदत्तजी

दत्तं सुरत्नं विदुषां ग्रहे मुदे
अतो हि लोकाः प्रवदन्ति तं बुधम्
श्रीदुर्गदत्तं भुवि रत्नभूतम् ॥ २ ।
* अहो विचित्रं भवता कथं कृतम्
क्यापि दत्तं भवता कथं हृतम्;
सनाढ्यरत्नं बुधवृंदरत्नम्
दिव्या सुरत्नं कवितासुरत्नम् ॥ ३ ॥
† धनैर्विहीना धनिनोऽतिदुःखिनः
विद्याविहीनास्तु द्विजा यथासन्;
मणेर्विहीनास्तु यथा सरीसृपाः
तद्रत्नहीनास्तु वयं तथैव ॥ ४ ॥
(श्रीपं० जगन्नाथजी ज्योतिर्विद् के शोक में लिखित)
‡ अहोऽतिकष्टं सततं समागतम्
भाग्यस्य दौर्बल्यमतस्समागतम्;
श्रीमज्जगन्नाथ विदांवरेण्यः
श्रीमज्जगन्नाथपदं प्रयातः ॥ १ ॥

(दुर्गादत्त-नामक) मनोहर रत्न दिया था, अतएव भूतल पर रत्न-स्वरूप उसको जन-समुदाय दुर्गादत्त नाम से पुकारता है।

* हे कृष्ण ! आपने यह आश्चर्यकारक कार्य क्यों किया कि अन्य द्वारा प्रदत्त विद्वच्छिरोमणि, कविजनवरमणि, सनाढ्य-कुलावतंस, सर्वाग्रणी उन दुर्गादत्त का आपने हरण कर लिया।

† जिस प्रकार निर्धन होने पर धनी, विद्या-विहीन होने पर ब्राह्मण, मणि-विहीन होने पर सरीसृप (सर्प) दुःखी होते हैं, उसी प्रकार उक्त कवि के वियोग से हम सब दुखी हैं।

‡ खेद है कि हमें अब निरंतर महादुख और हतभाग्यता

*शून्या बभूव नगरी विलसी विना तं
शून्याश्च बांधवजनाः स्वजना विना तं ;
शून्यञ्च वर्षमखिलं वयमत्र शून्याः
शून्याश्च मासतिथिपक्षभवासराश्च ॥ २ ॥

इत्यादि ।

(स्तुतिचतुष्टयम् से)

†गजास्यं रक्तास्यं सकलसुखदं दुःखहरणं
गिरीशं सिद्धीशं सुरदनुजमर्त्यैश्च विनुतम् ;
सहासन्नोयोऽसौ पवनसुतवीरेण बलिना
गणेशं वंदेऽहं मिलितकरयुग्मो दिनकरः ।

‡सबालाजीनाम्ना जगति विदितः सर्वफलदः
जगन्नाथो देवः परिजनसमेतः समवसत् ;
समीपे यस्यास्ते प्रियजनवशी भक्तिकरणात्
हनूमन्तं वन्दे मिलितकरयुग्मो दिनकरः ।

प्राप्त हुई है कि विद्वद्वर पं० जगन्नाथजी वैकुंठधाम-वासी हो गए हैं ।

* आज श्रीपं० जगन्नाथजी विना विलसी नगरी, बांधव और कुटुंबीजन, हम सब, वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, दिन और नक्षत्र सभी शून्य हो गए हैं ।

† जो शूरवीर, बली हनुमान के साथ बैठा है, उस सकल-प्राणिसुखदायक, दुःखसंहारक, अद्रीश्वर, सिद्धि-संपन्न, मानवसुरासुर-नमस्कृत, रक्तानन, गजानन गणेश को मैं दिनकर कवि बद्धांजलि होता हुआ नमस्कार करता हूँ ।

‡ भूमंडल पर बालाजी नाम से प्रसिद्ध, सर्वफलप्रदाता,

(विष्णुस्तुतिः)

*वशी काशीवासी त्रिभुवननिवासी सुविदितः
विहारी गोपीनां स्वजनसुखकारी समुदितः ;
स्वभक्ताधीनोऽयं सफलयति सर्वान्निजजनान्
सकल्याणः पुंसां वपुषि कुरु कल्याणमनिशम् ।

भक्ति से भक्तजनों के वशीभूत, जगन्नाथ देव परिजन-सहित जिसके निकट रहते हैं, उस हनुमान को मैं कर जोड़ प्रणाम करता हूँ ।

* जितेंद्रिय, काशीवासी होते हुए भी त्रिभुवन-निवासी, रूप से निश्चित, गोपियों के विहारी (कांत, आनंददायी) होते हुए भी स्वभक्तों के सुखकारी, स्वभक्ताधीन होते हुए भी सकल निज बंधुओं को सफल (सिद्धि संपूर्ण) करनेवाले, और स्वयं कृतकल्याण विष्णु भगवान् पुरुषों पर सतत करुणा करें ।

श्रीपं० देवकीनंदनजी मिश्र

पं० देवकीनंदनजी मिश्र, फुटेरा (झाँसी) का जन्म सं० १९३३ वि० के कार्त्तिक मास की प्रतिपदा को, बुधवार के दिन, हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० लालताप्रसादजी मिश्र था। आप कवि-कुल-कमल-दिवाकर पं० केशवदासजी मिश्र के वंशज हैं।

आप लिखे-पढ़े तो साधारण ही हैं, किंतु आपकी रचनाएँ अच्छी होती हैं। आपके पढने का ढंग भी अच्छा है। आपने कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं, किंतु वे सब अभी अप्रकाशित ही हैं। आपने पर्याप्त संख्या में स्फुट कविताएँ लिखी हैं, जो साधारण श्रेणी की, किंतु मनोहारिणी हैं। उदाहरण—

(कार्त्तिकाष्टक से)

जाके पंकज१-पदन को नेकहु२ शीस नवाय ;
करैं काज पूरैं३ तुरत४ सो गन होहु सहाय।

कौन-कौन कीर्ति कहैं, वीरताई पुंज मंजु५ ,
अरिदल दलवे को वज्रहूते पैनी है ;

---

१ पंकज = कमल । २ नेकहु = थोड़ा ही । ३ पूरैं = पूरी करैं। ४ तुरत = शीघ्र । ५ मंजु = शुद्ध, सुंदर, मनोहर।

रोग-दोष तूलन१ को पूरण प्रचंड अग्नि,
तन, मन स्वच्छ करवे को तू त्रिवैनी है।
दीन को तू द्रव्य देत, अंधन को नेत्र देत,
हिय अभिलाष पूरिवे को२ कामधैनी है;
देवकी दुहाई मातु, सब सुख कारनी है,
तेरी भक्ति नर को अमरफल दैनी है।

× × ×

(श्रीरामाष्टक से)

नावत तेरे पद कमल बल-बुधि देन गणेश;
गावत तव अष्टक सुखद होहु प्रसन्न रमेश।
होहु प्रसन्न रमेश शारदा पद उर ध्याऊँ;
दीजे बुद्धि विवेक पार जिससे मैं पाऊँ।
बलि जाऊँ पद कंज मंजु रज शीस चढ़ावत;
अंक लिखा वहु मजु 'देवकी' मस्तक नावत।
वारी बिच घेरो ग्राह, गजपति को ज्यों ही त्यों,
हिय घबरायो ताके कोप के दरेरे ते;
कीनो उपाय किंतु कोई भी न आयो काम,
सुधि-बुधि भूलो विपत्ति के सुफेरे ते।
देख के असाध्य दशा हरि सों पुकार करी,
धाए तज वाहन रकार शब्द टेरे ते;
लीनों तब उबार जब 'देवकि' मकार कढ़ी३,
यों नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे ते।
नाचत हैं प्रतिबिंब निहारी;
नाचत गावत श्रीरघुलालजी, बाजत है करतारी।

---

१ तूलन = रुई, निर्जीव रुई। २ पूरिवे को = पूरी करने के लिये। ३ कढ़ी = निकली, मुँह से 'मकार' जब निकली।

शीश मुकुट श्रुत कुंडल सोहैं, मोहैं कोटि तमारी;
गज मुक्तन के कंठा सोहैं, मनो चंद्र उजयारी।
श्यामल गात पीतांबर सुंदर, जापादिक जबतारो;
माल वैजयंती उर ऊपर, भृगु-पद-चिह्न अगारी।
छुम-छुम-छुम-छुम नूपुर बाजत, छुद्र घंटिका न्यारी;
मंद-मंद मुसक्यात ललाजू, कबहुँ धरत किलकारी।
श्रीकौशिल्या गोद खिलावैं, बार-बार बलिहारी;
'देवकि' नाथ! दीजिए दर्शन, क्यों अति कीन अबारी।

× × ×

देखो-देखोरी वीर श्रीदसरथजी के छौना;
कटि पट पीत निखंग सुहाए सुंदर श्याम सलौना।
आभूषण दुति दीप्ति देखकर पूषण भयो लजौना;
मंद-मंद मुसकान निरखकर चंद गयो सकुचौना।
कौन भनै श्रीसियजी देखे हाथ सुमन के दौना;
'देवकि' दर्श दिखा दृढ़ गहियो कौनहु काल तजौना।

× × ×

देखो-देखोरी आज दूलह्य श्रीराम नगीना;
कंचन मौर खौर शिर सोहै, बिच-बिच टिपकी दीना।
कानन कुंडल हिय वैजंती, विप्र-चरण शुभ चीना;
श्रीब्रह्मा शंकरजी मोहे, मोह गए पुर तीना।
जो न मोहि शोभा लखि प्रभु की तिनको धृक-धृक जीना;
'देवकि' दीन दरस को तरसे, नाथ! बिलम क्यों कीना।

× × ×

एकन कों बल तात सुमात के,
एकन भ्रात सुसाह दिमान के;

कोउ सुरूप गुमान१ भरे कोउ—
भूप बढ़े बल जंग२ जहान३ के।
कोउ प्रवीन४ मृदंग सुबीनन—
कोउ महा निज गान सुतान के;
देवकिनंदन है शरणागत
श्रीरघुनंद की आन के बान के।

× × ×

कीजिए विलंबा जगदंबा अब अंबा५ नहीं,
कष्ट, रोग, दोष आदि शीघ्र हर लीजिए;
भंजिए६ कुबुद्धि-शत्रु, दीजे बल, बुद्धि-ज्ञान,
काव्य-शक्ति, मंजु भक्ति मातु, शीघ्र दीजिए।
दर्शन दे करके कृतार्थ निज सेवक को,
देवि देवि सतत कृपा की कोर कीजिए;
'देवकी' सदैव हिय-मंदिर निवास कीजे,
लाज रही आवै सो इलाज७ कर दीजिए।

× × ×

श्रीराघौजी दूल्हा आयोरी।
केशर खौर मौर रतनन के, चंद अनंग८ लजायोरी।
पुक्खराज बहु मनी पिरोजा, भाल लाल दमकायो री।
मकराकृत कुंडल कानन में, मुनि-मन मोद खिलायो री।

---

१ गुमान = अभिमान। २ जंग = युद्ध, लड़ाई। ३ जहान = संसार। ४ प्रवीन = चतुर। ५ अंबा = माता। ६ भंजिए = दूर कीजिए, नाश कीजिए। ७ इलाज = उपचार। ८ अनंग = कामदेव।

नैना कजरारे बनरा के , देख हृदय ललचायो री।
मंद-मंद मुसकाय नाथ ने भक्तन मन हुलसायो री।
'देवकिनंदन' रूप मनोहर मेरे हृदय समायो[1] री।

× × ×

कंचन की लंका परियंका[2] आदि कंचन के,
कंचन के धाम मणि-माणिक जड़े रहे;
देश-देश के नरेश जिससे सशंक रहे,
शूरन में शूरवीर जिसके बढ़े रहे।
ऐसे दशकंध का भी अंत में विनाश हुआ,
इष्ट - मित्र - सखा सभी देखत खड़े रहे;
छोड़ देह अंबर[3] दिगंबर भए विधान,
आसन वभूत कैसे बासन पड़े रहे।

---

१ समायो = पैठ गया, समा गया। २ परियंका = पलंग। ३ अंबर = आकाश।

कविरत्न पं० अखिलानन्द शर्मा पाठक

साहित्य रत्नाकर, भारतभूषण

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीपं० अखिलानंदजी पाठक

पं० अखिलानंदजी पाठक कविरत्न, साहित्य-रत्नाकर, भारत-भूषण का जन्म वि० सं० १६३७ माघ शुक्ल तृतीया मंगलवार को, शतभिषा नक्षत्र में, ग्राम चंद्रनगर, परगना रजपुरा, जिला बदाऊँ मे, हुआ था। आपके पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० टीकारामजी शास्त्री तथा माताजी का सुबुद्धिदेवी था।

आपके पिताजी कुटुंब-शास्त्री थे, जो सर्वदा संस्कृत ही मे संभाषण किया करते थे। इसका प्रभाव हमारे चरित्र-नायक के ऊपर यह पड़ा कि आपकी मातृ-भाषा संस्कृत ही हो गई।

आपके पिताजी शैव थे। इस कारण जब आपकी अवस्था एक वर्ष की हुई, तब आपके पिता आपको काशी ले गए। काशी से चलकर नर्मदा के अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए आपके पिताजी आपको लेकर बंबई पहुँचे। इस समय हमारे चरित्र-नायक की अवस्था केवल पौने तीन वर्ष की थी। बंबई में भारतमार्तंड श्रीपं० गट्टूलालजी आपके पिताजी के परम मित्र थे। उन्होंने भाटिया गोकुलदासजी के यहाँ आपके पिताजी को टिकाया। वहीं आपका तीसरा वर्ष पूरा हुआ। उस समय

आप धारा-प्रवाह संस्कृत बोलते थे। इस कारण 'त्रिवार्षिकः पंडितः' ऐसा एक लेख पं० गट्टूलालजी ने समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराया था।

बंबई से चलकर आपके पिताजी पूना पहुँचे। वहाँ स्वामी दयानंदजी से भेंट हुई। वहाँ से चलकर पुष्कर-क्षेत्र में ब्रह्माजी का दर्शन करके आपके पिताजी चंद्रनगर पहुँचे। यहाँ से दूसरी यात्रा आरंभ हुई, अब की बार आपकी माताजी भी साथ थीं। सबसे प्रथम अपनी कुल-देवी 'श्रीअमतिकादेवी'जी का दर्शन किया। यह स्थान चंद्रनगर से सात कोस पर है। कुल-प्रथानुसार यज्ञोपवीत से पहले यहाँ पर मुंडन कराना होता है। इसीलिये आपको लेकर आपके माता-पिता यहाँ आए थे। यहाँ पर माधवानंद-ब्रह्मानंद नाम के दो परमहंस विद्वान् रहा करते थे। उनसे आशीर्वाद लेकर आपके पिताजी यहाँ से हरद्वार, हृषीकेश आदि तीर्थों में भ्रमण करते हुए गंगोत्तरी पहुँचे। यहीं आपका पाँचवे वर्ष में पिताजी ने उप-नयन-संस्कार कराया। वहाँ से आप कर्णवास पहुँचे। यह स्थान भागीरथी के तट पर चंद्रनगर से पाँच कोस पर है। यहाँ आपके पितृव्य पं० जीवारामजी रहते थे, इसी कारण आपके पिताजी भी आपको लेकर यहीं रहने लगे।

यज्ञोपवीत से पूर्व स्तोत्र-रत्नाकर, भगवद्गीता, अध्यात्मरामा-यण, अष्टाध्यायी आदि ग्रंथ पिताजी ने आपको कंठस्थ कराए थे। बाल्यावस्था में आपकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण थी। धारणा

बढ़ी हुई थी। एक बार श्लोक सुनकर दूसरी बार सुना देना आपके लिये मामूली बात थी।

यज्ञोपवीत के अनंतर ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्ण रीति से पालन करते हुए आपने अपने पितृव्य पं० जीवारामजी से यजुर्वेद, ऋग्वेद, लघुकौमुदी, अमरकोष, कुमारसंभव आदि पढ़ा। इसके बाद पिताजी आपको मथुरा ले गए। वहाँ पर आपने श्रीपं० युगलकिशोरजी शास्त्री से, जो विरजानंदजी के प्रधान शिष्य थे, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, सिद्धांतकौमुदी आदि ग्रंथ पढ़े।

वृंदावन में श्रीपं० सुदर्शनाचार्यजी से न्याय पढ़ा। वेद, व्याकरण, न्याय, इन तीन विषयों को पढ़कर कूर्माचल-निवासी श्रीपं० विष्णुदत्तजी से, जो २५-३० वर्ष से अनूपशहर में आकर रहने लगे थे, आपने साहित्य का अध्ययन किया। साहित्याचार्य-परीक्षा के समस्त ग्रंथ आपने श्रीपं० विष्णुदत्तजी ही से पढ़े। आपसे साहित्य का अध्ययन करके आपने दर्शनों का अध्ययन किया। परीक्षाएँ दीं। अंत में पिताजी से वेदांत पढ़ा। वेदांत पढ़ने के अनंतर आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया।

इस समय आपकी अवस्था २२ वर्ष की थी। कर्णवास में पिताजी का वार्षिक श्राद्ध करके आपने चार वर्ष तक फिर यत्र-तत्र जाकर अध्ययन किया।

इस प्रकार २७ वर्ष की अवस्था तक स्वाध्याय समाप्त करके आपने प्रथमाश्रम का कर्तव्य पूरा किया।

विद्याध्ययन के पश्चात् अनूपशहर के सुविख्यात स्वनाम-धन्य श्रीपं० गंगाप्रसादजी की सुपुत्री श्रीमती मालतीदेवी से आपका पाणिग्रहण-संस्कार हुआ। विवाह के अनंतर द्रव्यो-पार्जन की आवश्यकता हुई। इस कारण कुछ दिन तक आपने सहसवान में पढ़ाया। वहाँ से जाकर कुछ दिन तक थगरवाँ-रियासत में, जो हरदोई-जिले में है, पढ़ाया। इसी अवसर में फ़र्रुखाबाद के गुरुकुल से आपको निमंत्रण आया। उसमें जाने पर स्वामी नित्यानंद, पं० तुलसीराम आदि ने आर्य-समाज का कार्य करने के लिये आपसे अनुरोध किया। आपने मित्र-भाव से उनका आग्रह मानकर आर्य-समाज में पदार्पण किया।

आर्य-समाज में रहकर आपने कई ग्रंथों का संपादन किया। दयानंद-दिग्विजय (महाकाव्य) उनमें से एक उदाहरण है। इस महाकाव्य की मैकडॉनल्ड साहब ने बड़ी प्रशंसा लिखी है। समाज में इसकी टक्कर के दूसरे ग्रंथ हैं, इसमें संदेह है। इसी प्रकार और भी अनेक ग्रंथ आपने समाज में रहकर लिखे, जिससे आपकी विद्वत्ता का सर्व-साधारण को भले प्रकार पता लग गया था।

समाज में विद्वान् लोग आपकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। कुछ दिनों पश्चात् आपने सामाजिक ग्रंथों का अवलोकन किया, और उसकी निःसारता देखकर आपकी रुचि उस ओर से हट गई। फिर आपने 'ब्राह्मणमहत्त्वादर्श-काव्य' लिखा। इसके प्रकाशित होने पर समाज में ब्राह्मण-पार्टी खड़ी हो गई।

इस पार्टी की ओर से आपने फिर एक 'वैदिक वर्ण-व्यवस्था'-नामक ग्रंथ लिखा, जिसके छपते ही समाज में खलबली मच गई। संवत् १९७० में गुरुकुल वृंदावन का जो उत्सव हुआ था, उसमें आपने 'वैदिक विज्ञान-मीमांसा'-नामक एक संस्कृत-निबंध पढ़ा था। इसमें आपने समाज के अवैदिक सिद्धांतों का सर्व-साधारण के समक्ष खंडन किया। और 'अथर्ववेदा-लोचन'-नामक ग्रंथ में सनातनधर्मावलंबियों का मंडन करके समाज को नोटिस दे दिया था। नोटिस देने पर सिकंदराबाद, लाहौर, ज्वालापुर आदि कई स्थानों में समाजियों के साथ वर्ण-व्यवस्था पर आपका शास्त्रार्थ हुआ।

उसमें आपने स्वामी दयानंदजी के ग्रंथों ही से जन्म से वर्ण-व्यवस्था मानना सिद्ध कर दिया।

अंत में आपने सं० १९७२ में समाचार-पत्रों द्वारा जनता को सूचना देकर आर्य-समाज से अपना संबंध सर्वदा के लिये हटा लिया। पं० भीमसेनजी के बाद आप ही समाज में विद्वान् माने जाते थे। आपके अलग होते हुए ही ४५ व्याख्यानदाता समाज से अलग हो गए थे।

आपने आर्य-समाज क्यों छोड़ा, इस विषय पर आपका एक लेख 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में निकला था।

'सनातनधर्म' में आकर आपने कई विद्वानों की कमी को पूरा किया। जो कार्य कुमारिल भट्ट ने बौद्धों के यहाँ जाकर किया था, वही काम आपने समाज में रहकर किया।

आर्य-समाज छोड़ने पर सनातनधर्म मे आपका बड़े जोरों में स्वागत हुआ। बंगवासी, वेंकटेश्वर, पाटलिपुत्र, ब्रह्मचारी, ब्राह्मण-सर्वस्व, निगमागमचंद्रिका, मिथिलामिहिर आदि प्रायः सभी सामयिक पत्रों ने खूब आपके लिये अभिनंदन दिया। और, सनातनधर्मी विद्वान् आपके सनातनधर्म में आने पर अति प्रसन्न हुए। अनेक स्थलों से अभिनंदन-पत्र आपके पास भी पहुँचे। सनातनधर्मावलंबी जनता के हर्ष का तो कहना ही क्या है। और, बात है भी ठीक, अपना खोया हुआ रत्न पाकर किसे हर्ष न होगा!

सनातनधर्म मे आकर आपने व्याख्यानों, शास्त्रार्थों, लेखों तथा पुस्तकों द्वारा सनातनधर्म की बड़ी तत्परता से सेवा की, और कर रहे हैं। आपका अध्ययन और अनुभव इतना बढ़ा हुआ है कि आपसे शास्त्रार्थ में विजय पाना असंभव ही सा है।

आपके कार्य से प्रसन्न होकर इस वर्ष जगन्नाथपुरी के गोवर्धन-मठाधीश श्री १०८ मधुसूदन तीर्थजी ने आपको 'भारत-भूषण' उपाधि देकर आपका यथोचित सम्मान किया है।

भारतधर्म-महामंडल से आपको 'साहित्य-रत्नाकर' तथा सरकार की ओर से आपको 'काव्य-रत्न' की उपाधियाँ भी मिली हैं। आपकी और-और उपाधियाँ परीक्षाओं आदि की हैं, जो समय-समय पर आपको मिलती रही हैं।

आपका रहन-सहन बिलकुल ही सादा है। सादी पोशाक, सादा भोजन और सादा व्यवहार आपको पसंद है।

आपकी वातें सुनकर हृदय मुग्ध हो जाता है। मित्रों से भी आप सरल, प्रेम-पूर्ण और निष्कपट व्यवहार रखते हैं। आप प्रायः प्रसन्नचित्त ही रहते हैं। उदासी आपके चेहरे पर कभी आती होगी, इसमें संशय है। आप अपनी धुन, अपनी मस्ती में सदैव मस्त रहते हैं। आप सनातनधर्म के एक स्तंभ, सनाढ्य-जाति के आभूषण तथा भारतवर्ष के संस्कृत-भाषा के प्रसिद्ध महाकवि, वक्ता तथा लेखक हैं।

आपकी अवस्था अभी केवल ५३ वर्ष ही की है। किंतु आपके ग्रंथों की संख्या, उनमें वर्णित विषयों और भावों की प्रौढ़ता को देखते हुए आपकी मुक्त कंठ से प्रशंसा ही करते बनता है। आपने क्या उपदेशों द्वारा और क्या साहित्यिक ग्रंथों द्वारा समाज की चिरस्मरणीय सेवा की है। आपने लगभग ६५ ग्रंथ अब तक लिखे हैं, जिनमें से आधे से अधिक प्रकाशित हो चुके हैं।

आपके अनुज पं० सुबोधचंद्रजी पाठक भी होनहार हैं। कविरत्नजी के अब तक तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं।

आपके मुख्य-मुख्य ग्रंथों की नामावली निम्न-लिखित है—

सनातनधर्म-विषयक

१—सनातनधर्मविजयम् (महाकाव्यम्), २—शतपथ-ब्राह्मणालोचनम्, ३—वैदिक वर्ण-व्यवस्था, ४—सत्यार्थ-प्रकाशालोचनम्, ५—अथर्ववेदामूलोचन, ६—वेदत्रयी समालोच-

नम्, ७—भूमिकालोचनम्, ८—वेदभाष्यालोचनम्, ९—संस्कार-विधि-विमर्शः, १०—सनातनधर्मतत्त्वम्, ११—वैदिक सत्यार्थ-प्रकाशः, १२—व्याख्यान-पचदशी, १३—वेद और आर्य-समाज, १४—वैदिक सिद्धांतवर्णन, १५—निबंध-पंचकम् ।

जातीय ग्रंथ

१६—सनाढ्यगौरवादर्शः, १७—ब्राह्मणमहत्त्वादर्श-काव्यम्, १८—सनाढ्य-विजय-काव्यम्, १९—सनाढ्य-विजय-पताका, २०—सनाढ्य-विजय-चंपू ।

अन्य ग्रंथ

२१—संस्कार-विधि-पर्यालोचन, २२—भगवद्भक्ति-रहस्य, २३—अनुपम चतुर्थविज्ञान, २४—देव-सभा में वेदों की अपील, २५—सनातनधर्म-सर्वस्व, २६—वैदिकेतिहास-विवरण, २७—रमादयानंद-सवाद, २८—पिंगलछंदः सूत्र सभाष्य, २९—काव्यालंकार सूत्र सभाष्य इत्यादि ।

आपकी रचनाएँ ऊँची श्रेणी की सरस, मनोहर और प्रौढ़ भावों से भरी हुई होती हैं । कुछ उदाहरण देखिए—

श्रीसनातनधर्मविजयम् से

*धन्यास्ते धरणितले त एव वंद्या
मान्यास्ते गुणिगणनासु वर्णनीयाः ।

---

* इस अवनीतल में वही धन्य हैं, वही वंदनीय हैं और गुणि-जनों की गणना में वही वर्णनीय हैं, जिन्होंने धर्म की रक्षा के

धर्मार्थे सकलसुखोपभोगभव्यं
सत्यक्तं वनमधिगत्य यैः स्वराज्यम् ॥ १ ॥
(प्रथमः सर्गः)

*दिवं प्रयाते विधिपारवश्या-
द्युधिष्ठिरे मंदबलं विलोक्य ।
बलेन धर्मं चिरदत्तदृष्टिः
कलिस्तदीयं पदमाविवेश ॥ १ ॥
(षष्ठः सर्गः)

× × ×

†जपन्ति मृत्युञ्जयनाम दिव्यं
भजन्ति ये श्रीपतिमादरेण ।
विहाय तानत्र समस्त जीवा-
नहं स्वपाशे विनिबंधयामि ॥ ४८ ॥
(षष्ठः सर्गः)

× × ×

लिये समस्त सुख-पूर्ण स्वराज्य को भी धर्म-विरुद्ध होने के कारण छोड़कर वन में रहना स्वीकार कर लिया है । (प्रथम सर्ग)

* दैवयोग से युधिष्ठिर के स्वर्ग जाने पर धर्म को दुर्बल देखकर बहुत दिनों के अनंतर कलिदेव धर्म के स्थान पर उपस्थित हुए । (६ सर्ग)

× × ×

† जो सज्जन मृत्युंजय भगवान् शंकर का तथा भगवान् लक्ष्मी-पति का नाम लेते हैं, वे ही मेरे पास नहीं आते हैं । बाक़ी सब मेरे पाश में फँस जाते हैं । (छठा सर्ग)

× × ×

*विश्वात्मकस्य पुरुषस्य यथाऽवताराः
प्रादुर्भवन्ति भुवने भुवनोदयाय।
धर्मात्मकस्य पुरुषस्य तथाऽवतारा
धर्मोदयाय नियते समये भवन्ति ॥ १ ॥
(नवमः सर्गः)

† धर्मप्रवर्त्तनकृते धरणीतलेऽस्मि-
न्ये ये विशिष्टमनुजा भगवन्निदेशात्।
आयान्ति ते भगवदंशविशेषभूताः
सौभाग्यतो जनिभृतां प्रवदन्ति धर्मम् ॥ २ ॥
(नवमः सर्गः)

‡आवेशमेति भुवनाधिपतिः स्वशक्त्या
सत्त्वेषु येषु विविधेषु चराचरस्थः।
सर्वाणि तानि महनीयकलानिवेशा-
दुत्कृष्टतामनुभवन्ति तदंशजत्वात् ॥ ३ ॥
(नवमः सर्गः)

---

* जिस प्रकार विश्वात्मक भगवान् के अनेक अवतार विश्व के उदय के लिये होते हैं, उसी प्रकार धर्म के अवतार भी नियत समय में धर्म के उदय के लिये होते हैं। (सर्ग ९)

† भगवान् के भेजे हुए जो-जो विशिष्ट पुरुष भूतल में धर्म की वृद्धि के लिये आते हैं, वे सब भगवान् के ही विशेष अंश-स्वरूप धर्म का उपदेश देते हैं। (सर्ग ९)

‡ जगदीश्वर अपनी शक्ति से जिन पदार्थों में आविष्ट होता है, वे सब उसके अंश से उत्पन्न होने के कारण उत्तम कलाओं के योग से उत्तम बन जाते हैं। (सर्ग ९)

*ताहग्विधाधिकगुणोद्भवतोपतुष्टे
यान्युद्भवन्ति समयेऽतिविलक्षणानि ।
सल्लक्षणानि जगतामशिवापनुत्यै
तेषामनुक्रमणिका पुरतः स्थितेयम् ॥ ४ ॥
(नवमः सर्गः)

† आविर्भवन्त्यसमये कुसुमान्यगेषु
वह्निः प्रदक्षिणगतिं समुपैति दर्पात् ।
आनन्ददाः परिवहन्ति मठेन वाता
धर्मावतारसमये ककुभः प्रसन्नाः ॥ ५ ॥
(नवमः सर्गः)

‡ देवाङ्गनाखिदशमञ्जुलमन्दिरेषु
नृत्यन्ति मन्थरपदं बृहतीमुपेताः ।
विश्वावसु प्रभृतयो गुणगर्भितानि
गायन्ति मङ्गलपदानि मदातिरेकात् ॥ ६ ॥
(नवमः सर्गः)

---

* ऐसे उत्तम महानुभावों के उद्भव से अलकृंत समय में जो सुंदर लक्षण होने लगते हैं, उनकी अनुक्रमणिका हम यहाँ पर उपस्थित करते हैं। (सर्ग ९)

† असमय में वृक्षों में फूल लग जाते हैं, अग्नि प्रदक्षिण गति से चलने लगती है, मंद, सुगंध और शीतल वायु अकस्मात् बहने लगती है, और दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं। (सर्ग ९)

‡ देवालयों में देवांगनाएँ नृत्य करती हैं, और विश्वावसु आदि गंधर्व गण बृहती-नामक अपनी वीणा हाथ में लेकर मंगलमय गीत गाने लगते हैं। (सर्ग ९)

*सूते समुज्ज्वलमणीनवनिः प्रशस्ता
रत्नाकरो विमलरत्नचयं प्रसूते।
नव्यं वनस्पतिरपि प्रददाति पुष्पं
पुष्पोद्‌गमोऽधिकतया दलमावृणोति ॥ ७ ॥
(नवमः सर्गः)

†तपसि स्वतः प्रवृत्तं धातारं वीक्ष्य सत्वसम्पन्नम्;
लोके सनाढ्यवंशस्थापयिता त्वं भविष्यसीत्याह।
जगदीशवाक्‌प्रपञ्चो मृषा न भूयाददः स्वयं स्वान्ते;
ब्रह्मा विविच्य चक्रे सनाढ्यवंशं तपःप्रभावेण।
सनक सनन्दन मुख्या यस्मिन्नभवन्नशेष मुनि मुख्याः;
सोऽयं सनाढ्यवंशश्चकास्ति लोके निरस्तपरवंशः।
अयमेव भूसुराणामाद्यो वंशस्तपोविशिष्टत्वात्;
साम्राज्यमीश दत्तं पुरा समागाद्विधातृसंसृष्टः।
॥ १२, १३, १४, १५ ॥
(पंचविंशः सर्ग)

---

* रत्नगर्भा पृथ्वी रत्नों को प्रकट करती है। रत्नाकर अच्छे-अच्छे रत्न प्रकट करता है; जिनमें कदापि पुष्प नहीं लगता वे भी वृक्ष पुष्पवान् हो जाते हैं, और वृक्ष-मात्र में फूल अधिक होने के कारण पत्ते छिप जाते हैं। (सर्ग ९)

† सत्वगुण-संपन्न ब्रह्माजी ने प्रकट होते ही तप करना आरंभ किया। यह देखकर भगवान् ने "यही ब्रह्माजी संसार में तपोविद्या-विशिष्ट सनाढ्यों का वंश प्रकट करेंगे" ऐसा कहा। 'सन' शब्द तप का वाची अनेक कोषों में उपलब्ध होता है। यही बात (तप्त तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात् स्वतपसः स चतु सनोऽभूत्) श्रीमद्भागवत स्कंध २, अध्याय ५, पद्य ७ में कही है। (सर्ग २५)

*देशेष्वनेकभेदैर्विभक्तिमाप्तेषु भारतीयेषु ;
संवसनादुपयाता सनाढ्यवर्या बहूनि नामानि ।
नानाविधगोत्रवशाच्छाखभेदादनन्ततामाप्ताः ;
सर्वे सनाढ्यवंश्या भारतवर्षे वसन्ति सर्वत्र ।
ब्रह्मर्षिदेश एषामाद्यो देशः सनाढ्यविप्राणाम् ;
सर्वत्र विश्रुतो यः स्वनाम धन्यैर्महर्षिभिः पूतः ।
अद्याप्यस्मिन्देशे कलिकालवशादपास्तसद्देशे ;
केवल सनाढ्यभूसुरवंशोत्पन्ना वसन्ति भूदेवा. ।
तत्तद्देशनिवासीदैशिकनाम्नां य एषु सवेशः ;
गौणः स नास्ति मुख्य. प्रमाणमस्मिन्नुपस्थितो वेदः ।
॥ १६, १७, १८, १६, २० ॥ (पंचविंशः सर्गः)

भगवान् का कथन निरर्थक न हो, यह समझकर ब्रह्माजी ने 'सनाढ्यवंश' का सूत्र-पात प्रारंभ किया। (सर्ग २५)

सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार ये चारो ऋषि जिस सनाढ्य-वंश के प्रथमावतार थे, वही सनाढ्य-वंश आज तक संसार में प्रचलित है। (सर्ग २५)

तपोविद्या विशिष्ट होने के कारण यही 'सनाढ्य'-वंश ब्राह्मणों का प्रथम वंश होकर ईश्वर की सृष्टि में सब पर आधिपत्य करने का अधिकार रखता है। (सर्ग २५)

* महाप्रलय के अनंतर जैसे-जैसे देशों का आविर्भाव होने लगा, तैसे-तैसे अनेक देशों में रहने के कारण ये ही सनाढ्य अनेक दैशिक नामों को धारण करने लगे। (सर्ग २५)

गोत्र-भेद तथा शाखा-भेद से अनेकता को प्राप्त हुए, वे ही सनाढ्य आजकल समस्त देशों में अनेक नामों से विख्यात हो रहे हैं। (सर्ग २५)

सनाढ्यविजय-पताका से

*न ब्राह्मणे भेद लवोऽपि नूनं
संदृश्यते देशविशेषवासात्।
उपाधिभेदोऽस्ति स चाप्यनित्य-
स्तस्मात्त्यजन्तु भ्रमवृत्तिमेताम्॥ ११॥
†विहाय देशान्तरमेकदेशं
यथा गतस्तद् व्यवहारभेदात्।

सनाढ्यों का प्रथम (पहला) निवास-स्थान 'ब्रह्मर्षि' देश है, जिसका वर्णन (कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च) इस मनु के पद्य में किया गया है। प्रायः महर्षि प्राचीन समय में यहीं पर रहा करते थे। कुरुक्षेत्र से ब्रह्मावर्त (बिठूर) तक लंबा और व्रज से हरद्वार तक चौड़ा ब्रह्मर्षि देश है। (सर्ग २५)

आज भी इस ब्रह्मर्षि देश में प्रायः सनाढ्य ही अधिकतर निवास करते हैं, जो अन्य दैशिक नामों में विभक्त होने पर भी घटते-घटते पैंसठ लाख (६५०००००) रह गए हैं। (सर्ग २५)

तत्तद्देशों में रहने के कारण ब्राह्मणों में जो आजकल कान्यकुब्ज आदि दैशिक नामों का प्रयोग मिलता है, वह गौण है, मुख्य नहीं है। क्योंकि वैदिक साहित्य में इनका नाम उपलब्ध नहीं होता है। (सर्ग २५)

* ब्राह्मण-जाति में भेद का लेश-मात्र भी नहीं है। क्योंकि वह सब एक है, अनेक देशों में उपदेशार्थ आने-जाने से जो उनमें काल्पनिक उपाधि-भेद पाया जाता है, यह भी अनित्य है। इस-लिये दश विधत्व का आग्रह छोड़िए।

† जिस प्रकार एक देश से दूसरे देश के जाने में पहले देश के समस्त व्यवहार बदल जाते हैं, उसी प्रकार उस देश से भी अन्यत्र

पुराणदेशाश्रितिजन्यभेद-
न्तथा ततोऽन्यत्र जहाति यातः ॥ १२ ॥
* निदर्शिता मानवधर्मशास्त्रे
विभागभिन्ना बहुदेशभेदाः ।
अणं भवार्थे विनियोज्यतेषु
भवन्ति सर्वे पशवोऽपि तज्जाः ॥ १३ ॥
† वाक्ये यथा साहसिकः कलिंगो
यातीति देशार्थगुणं समुज्झन् ।
कलिंग शब्दो भजते पुमांस
तथान्यदेशस्यपदेषु सक्तः ॥ १४ ॥

जाने पर वहाँ के सब व्यवहार बदल जाते हैं, इसलिये दैशिक उपाधियाँ सब अनित्य हैं ।

* यदि देश-भेद से ही ब्राह्मणों में भेद मानोगे, तो मनुस्मृति में विभाग-भिन्न अनेक देश-देशांतरों के नाम पाए जाते हैं, उनमें भावार्थक अण् प्रत्यय करने पर उनमें रहनेवाले सब पशु पक्षी, वृक्ष उन-उन दैशिक नामोंवाले बन सकते हैं, इसलिये यह ठीक नहीं है ।

† जिस प्रकार 'कलिंगः साहसिकः' इस दर्पण के उदाहरण में देश-वाचक कलिंग शब्द देशभव रूप अपने अर्थ में न रहता हुआ साहसिकत्वादि गुण-विशिष्ट अपने में उत्पन्न हुए पुरुषों में जाकर रहता है, इसी प्रकार अन्य देशवाचक शब्द भी अपने-अपने में उत्पन्न हुए पदार्थों में जाकर रहते हैं। इसलिये दैशिक नामों का वस्तु-मात्र में संबंध होने से ब्राह्मणत्वादि धर्मों में संक्रम नहीं हो सकता है ।

सनाढ्यविजय-काव्य से

* धर्मं विहाय निज मध्यनादिरूप
ये विप्रवंशमणयो हृदयं स्वकीयम्।
भोगेषु रोगफलदेषु नयन्ति लोके
ते सर्वथैव कविभिर्बहुशोचनीयाः ॥ २१ ॥
(प्रथमः सर्गः)

× × ×

† येषां कुलेषु जनुरत्रभवद्भिराप्तं
भूमण्डलेऽत्रिपुलहाङ्कित पूरुषेषु ।
ते विस्मृताः किमधुना निज वंश मुख्याः
कर्तव्यपालनसमुद्गतकीर्तिभव्याः ॥ २५ ॥
(प्रथमः सर्गः)

‡ यत्पादपङ्कजमहस्य फलानुमेय
रामो बभार शिरसा सह लक्ष्मणेन ।
वंशेऽभवत्स भवतां सुकृती वसिष्ठो
नेदं भवद्भिरवलोकितमद्य मित्रैः ॥२६॥
(प्रथमः सर्गः)

---

* ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होकर जो पुरुष अपने मन को निज कर्म से हटाकर विषय-वासना में लगाते हैं, वे सोचने योग्य हैं ।
(सर्ग १)

× × ×

† जिन महापुरुषों के वंश में आपने जन्म लिया क्या, उनको आप भूल गए ? देखिए, उन्होंने अपने कर्तव्य का कहाँ तक पालन किया है । (सर्ग १)

‡ जिनके चरणारविंद को श्री १०८ रामचन्द्रजी ने बार-बार अपने

*अन्येन येन तपसा परमेश्वरस्थो
वेदोऽपि बुद्धिविभवेन बलादवाप्तः।
सोऽप्यङ्गिराः समभवद्भवतामिहैव
भूमण्डले कुलपरम्परया कुटुम्बी ॥ २७ ॥
(प्रथमः सर्गः)

वैदिक सिद्धांत-वर्णन से

†आत्मीय शक्तिरचिताखिललोकसारं
तत्रैव योगवशतो धृतसर्वभारम्।
धर्मोपयोगिनिगमागमसूत्रकारं
वन्दे तमेकमजमस्ति न यस्य पारम् ॥ १ ॥
(प्रथमः सर्गः)

‡यस्याः कृपावशत एव भवन्ति सर्वे
सर्वत्र सर्वविषयैरुपसङ्गता या।

शिर पर धरा (रक्खा), वह वशिष्ठ आपके पूर्वजों में ही थे। (सर्ग १)

* जिस महर्षि ने अपने तप के प्रभाव से अथर्ववेद को भी ज्ञान रूप से प्राप्त किया, वह अंगिरा भी आपके वंशजों में से थे। (सर्ग १)

† अपनी सामर्थ्य द्वारा जिसने समस्त लोकों का सार बनाकर उन्हीं में योग-वश से सब भार धरा (रक्खा) और साथ ही जिसने वेद-शास्त्रों द्वारा धार्मिक व्यवस्था नियत की, उस जगदीश्वर के लिये मैं वंदना करता हूँ। (सर्ग १)

‡ जिसकी कृपा से सर्वत्र मनुष्य विख्यात होते हैं, और जो पदार्थ-मात्र से सर्वदा संबंध रखती है, उस त्रिवर्ग-मार्ग-रूप सुबुद्धि-नामक निज माता के चरण-युगल को मैं वंदित करता हूँ। (सर्ग १)

तस्याग्निवर्गसरयोरधुना बुबुद्धे-
वन्द्दे यथामहं चरणौ स्वमातुः ॥ २ ॥
(प्रथमः सर्गः)

*कुत्राहमस्मि गतशक्तिकलः क्वेदं
काव्येन वर्णयितुमर्हमुदारकाव्यम् ।
डिम्भस्य बाहुयुगलेन यथा पयोधे-
राशंसनं नु तरणे करण तथा मे ॥ ३ ॥
(प्रथमः सर्गः)

†बद्धाञ्जलिस्तत इद मतिविक्लवेन
सम्प्रार्थये जगदधीशमहं प्रसादात् ।
साहाय्यमादिशतु येन भवामि लोके
भव्यैकवर्ण्यचरितो भगवन्भवान्मे ॥ ४ ॥
(प्रथमः सर्गः)

‡ये जनिं प्रतिगताः किल लोके
वासरं विफलमेव नयन्ति ।

---

* इस काव्य के बनाने में सर्वथा असमर्थ कहाँ ? कहीं फिर प्रशस्त कवि के बनाने योग्य यह काव्य ! अतः जितनी आशा एक बालक अपनी बाहुओं से समुद्र के तैरने में रखता हो, उतनी ही मैं भी रखता हूँ। (सर्ग १)

† इसलिये उस परमेश्वर से मैं प्रार्थना करता हूँ कि हे भगवन्! आप मुझे सहायता दें, जिससे इस संसार में यह काव्य प्रसृत हो जावे और विद्वज्जनों में मेरा नाम सर्वदा स्मरणीय बना रहे। (सर्ग १)

‡ जो पुरुष संसार में जन्म लेकर दिन को वृथा खोते हैं, वे हत-भाग्य कदापि सुख को प्राप्त नहीं होते। यह निश्चय है। (सर्ग ७)

यन्ति ते न सुखमत्र विनाश-
स्तानुपैति सहसा हतभाग्यान् ॥ १ ॥
(सप्तमः सर्गः)

*सानुमेत्य रविरुन्नत मेरो-
रात्मजैः किरणभावमुपेतैः ।
सादरं जगदिदं गतनिद्रं
कारयत्यवनतैरिति चित्रम् ॥ ३ ॥
(सप्तमः सर्गः)

†सङ्गमाद्दिनकरस्य कराणां
चेतनान्यथ जडान्यपि लोके ।
सं विभान्ति युगपद्गुणभाजां
सङ्गमः क न करोति विकाशम् ॥ ४ ॥
(सप्तमः सर्गः)

× × ×

‡यः परार्थमुपयाति विनाशं
दुःखितोऽपि पुनरेति स दैवात् ।

---

* उदयाचल की चोटी पर पहुँचकर सूर्य अपनी किरणों द्वारा सोते हुए सब जगत् को जगा देता है । यह एक स्वाभाविक बात है । (सर्ग ७)

† सूर्य की किरणें पाते ही क्या चेतन, क्या जड़ एक साथ अपनी हालत बदल देते हैं, गुणवान् का संग वास्तव में ऐसा ही होता है । (सर्ग ७)

× × ×

‡ जो पुरुष परोपकार में आप नष्ट होता है, वह शीघ्र दुबारा महान् बनता है, इस बात को चंद्रमा के उदय ने सफल कर दिखाया । (सर्ग ७)

शीघ्रमेव सुमहोदयमेवं
वक्ति शीतकिरणोदययोगः ॥ १० ॥

(सप्तमः सर्गः)

*सर्वदा न जगतीतलमध्ये
निश्चलं लघु समेति विभुत्वम् ।
त्वर्यतामिति निजद्रुतगत्या
बोधयन् रविरुपैति तदग्रम् ॥ ३० ॥

(सप्तमः सर्गः)

× × ×

†अनेकजन्मार्जितपुण्यपण्यता
यदाऽऽपणे जन्मधरेण धार्यते ।
प्रलभ्यते सार्धकरत्रयैर्मितः
तदा शरीरं पुरुषाकृति प्रभोः ॥ २ ॥

(अष्टमः सर्गः)

× × ×

---

* संसार में बड़प्पन सर्वदा नहीं रहता, इसलिये जो कुछ करना हो, शीघ्र करो । यह कहते हुए भगवान् सूर्य आगे चलते जाते हैं । (सर्ग ७)

× × ×

† अनेक जन्मों से एकत्र किया हुआ पुण्य जब परमात्मा के समक्ष भेंट होता है, तब साढ़े तीन हाथ की यह मनुष्य-देह मिलती है । (सर्ग ८)

× × ×

*न सञ्चिता यैः प्रथमाश्रमे परा
श्रमेण विद्या न धनं ततः परे।
न चार्जितं सत्तपनं तृतीयके
चतुर्थमभ्येत्य मुधैव तत्कृतम् ॥ १७ ॥
(अष्टमः सर्गः)

× × ×

†प्रशंसनीयः किल ते भुवस्तले
समाप्तकृत्याः किल ते भुवस्तले।
महत्त्वयुक्ताः किल ते भुवस्तले
परोपकारः किल यैरुपार्जितः ॥ २२ ॥
(अष्टमः सर्गः)

---

* जिन्होंने पहले आश्रम में विद्या, दूसरे में धन, तीसरे में तप न कमाया, वह चौथे में जाकर क्या काम कर सकते हैं ? (सर्ग ८)

× × ×

† इस भूतल में वही प्रशंसनीय है, वही कृतकृत्य है, वही महानुभावों में अग्रगण्य है, जिसने परोपकार किया है। (सर्ग ८)

श्रीपं० रघुवरदयालजी चचोंदिया

पं० रघुवरदयालजी चचोंदिया, झाँसी का जन्म सं० १९३१ वि० के मार्गशीर्ष मास में १२ कृष्ण गुरुवार के दिन झाँसी में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० पद्माकर उर्फ ललंजू है। चचोंदियाजी को संस्कृत-कार्यालय, अयोध्या से काव्य-मनीषी की उपाधि भी मिली है। आप जातीय कार्यों में बडी ही तत्परता से भाग लेते हैं। ज्योतिषी और दृढ़ कर्मकांडी हैं। आप झाँसी में मुहल्ला गणेश-मढ़िया मे रहते हैं। आप संस्कृत और हिंदी दोनो ही भाषाओं में कविता करते हैं। ग्रंथ-रचना की ओर आपका विशेष ध्यान नहीं गया है, किंतु स्फुट रचनाएँ आपकी पर्याप्त संख्या में प्रस्तुत हैं। सुकवि आदि पत्रों में आपकी रचनाएँ समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। (१) राधेश्याम-आँखमिचौनी, (२) दिवाली का वर्णन, (३) उपदेश-पद्यावली, (४) ब्राह्मण-लीला और (५) महारानी लक्ष्मीबाई-नामक पुस्तकें आपने लिखी हैं, किंतु वे अभी अप्रकाशित ही हैं। रचनाएँ आपकी सरस होती हैं।

उदाहरण—

* भो मानवाः शृणुत मानवधर्ममेनम्
स्वाचारशुद्धिबलबुद्धिविवेकसारं ।
ज्ञानोदयं कुरुत पुण्यवतां नराणाम्
ऐक्यं सनाढ्यवरवंशजनाऽनुकूलम् ।

× × ×

नलिनीश कहीं रजनीश बनै,
मरयाद मिटै जग जीवन की;
अलिनी मलिनी मुख देख तजै,
कुमुदावलि कान करै किनकी ।
निज धर्म सनातन को तजिके,
परतंत्र भई गति है जिनकी;
धन की तन की सब बात गई,
कहि जात न वीर दशा मन की ।
छीन हैं मलीन दीन, हीन सब भाँतिन सों,
थे जो परबीन१ तीन लोक विश्व-भर से;
हास२ सब बातन कौ, भारत के बासिन कौ,
भयो मंद भास परतन्त्रता के डर से ।
कृषक बिचारे अधमारे से भरत आह,
करत पुकार तौ दयाए जात कर से;

---

* हे मानवो ! अपने आचरण की पवित्रता, सामर्थ्य, बुद्धि और विवेक के सारभूत इस आगे कहे हुए धर्म को सुनो कि आप सब पुण्यवान् मनुष्यों के ज्ञान-विकाश और उत्कृष्ट सनाढ्य-कुल के मनुष्यों के अनुकूल एकता को करें ।

१ परबीन = प्रवीण, चतुर । २ हास = अवनति ।

बारडोली जैसे हैं अनेक दृश्य देखे जात,
दीनबंधु ! दास ह्वै ह्वै दानन को तरसे।

× × ×

तेरे पदपंकज की पनहीं बनूँगी नाथ,
तेरे ही नाम की अहर्निश रट लाऊँगी;
मेरे प्राणप्यारे आप, सत्य-सत्य कहती हूँ,
तेरे बिन एक छण, कल१ भी न पाऊँगी।
स्वर्ग अपवर्ग२-सुख, नर्क के समान मुझे,
मीन३ तज नीर जैसे, बिलग न जाऊँगी;
प्रेम को परेखो४ देखो, शपथ करौं मैं कौन,
प्राननाथ तेरे सँग प्रान मैं पठाऊँगी।

× × ×

मधु मकरंदनि पीय, शंकर सुकवि-सरोज कृत;
रघुवर अति कमनीय, मन मधुकर मेरो बनै।
प्रिय मलिंद मनसिज सम सुंदर सुकवि-सरोज हरा है;
श्रीसनाढ्य-कुल कलित ललित पद केशव परंपरा है।
'रघुबर' अंग-अंग तेरे में तरुण प्रसाद सरा है;
शंकर संगृहीत तनु तेरा मधु मकरंद भरा है।
प्रिय पाया हम यथोचित सुकवि-सरोज महान;
स्वर्ण अक्षरों में लिखा श्रीसनाढ्य-कुल-मान।

× × ×

क्षत्री-कुल-भाल लाल चंपत सुभूपति को,
यवन चमू५-पति६ कौ मूर्तिमान काल तौ;

---

१ कल = चैन। २ अपवर्ग = मुक्ति, परमगति, छुटकारा। ३ मीन = मछली। ४ परेखो = परख, जाँच, परीक्षा। ५ चमू = सेना, कटक, दल, फ़ौज। ६ पति = अध्यक्ष।

गोद्विजन पालवे कों ढाल तलवार लिए,
घूमतो बुँदेलखंड बनौ आलबाल तौ।
दुष्टदल घाल प्रतिपाल कर परजा कौ,
जाको जस गाय कवि कुलहु निहाल तौ;
वीर सरताज बस शिवाजी के बाद भयौ[1],
बाजी के सम्हालवे कों एक छत्रसाल तौ।

× × ×

कर करवाल ढाल चंपत सुभूपति कौ,
सुमति सुगति सब गति में निहाल तौ;
शत्रुन के दल बल में निशंक पैठि खूब,
सवत शिरोह्विन तें[2] शिरन को टाल तौ।
खरभर मचाय चाह पूरी सब कीनी है,
दीनी कर स्वतंत्र भूमि अरिन कालतौ;
वीर सरताज बस शिवाजी के बाद भयौ,
बाजी के सम्हालवे कों एक छत्रसाल तौ।

०

---

१ भयौ = हुआ। २ शिरोह्विन तें = तलवारों से।

श्रीपं० शालग्रामजी तिवारी शास्त्री

पं० शालग्रामजी तिवारी शास्त्री, विद्यावाचस्पति, साहित्याचार्य, विद्याभूषण, वैद्यभूषण, कविराज का जन्म वि० सं० १९४२ में, माघ शुक्ल १३ भौमवार के दिन तिवारीमुहल्ला बरेली में, हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० पोशाकीलालजी तिवारी था। आप वशिष्ठगोत्रीय तिवारी हैं। आप खेखले के तिवारी प्रसिद्ध हैं। आपके पूर्वपुरुषों की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—मथुराप्रांत में खेखला नाम का एक ग्राम था। उस समय वहाँ के क्षत्रिय राजा थे। उन्हीं से तिवारी लोगों को यह ग्राम प्राप्त हुआ था। वे लोग शस्त्र और शास्त्र दोनो में प्रवीण थे, अतएव उत्तम राजाश्रय के कारण सुख-समृद्धि-संपन्न भी थे। किसी कारणवश उस समय का मुसलमान बादशाह, जिसकी राजधानी दिल्ली थी, और जो भारत के अनेक राजाओं का अधिपति एवं स्वेच्छाचारी क्रूर शासक था, पूर्वोक्त क्षत्रिय राजा पर अप्रसन्न हो गया, और उन्हें पकड़कर अनादर के साथ लाने के लिये कुछ सेना मथुरा भेजी। यह बात राजा के आश्रित उक्त तिवारियों को असह्य हुई, उन्होंने एक सेना के रूप में संगठित

सुकवि-सरोज

विद्यावाचस्पति श्रीपं० शालग्रामजी शास्त्री
साहित्याचार्य, विद्याभूषण, वैद्यभूषण, कविराज,
अध्यक्ष मृत्युंजय-औषधालय, लखनऊ

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

होकर बादशाह की सेना के सभी सिपाहियों को घेर-घेरकर यमपुर भेज दिया। इसका समाचार सुनकर बादशाह क्रोधांध हो गया, और राजा के ऊपर आए क्रोध को वह खेखला ग्राम पर उतारने के लिये उद्यत हो गया। उसने एक बड़ी सेना भेजकर समस्त ग्राम का स्त्री-बच्चों-सहित वध कराया, ग्राम जलवाया और उस पर हल चलवा दिया।

उसी ग्राम के एक पुरुष तिवारी हनुमानजी जो उस समय अपने स्त्री-पुत्रादिकों के साथ बदरिकाश्रम की यात्रा को गए थे, जब नैनीताल होकर बरेली लौटे, उन दिनों इसी मार्ग से लोग लौटा करते थे, तब उन्हें पूर्वोक्त समाचार मिला। उस समय बरेली, जो आज एक विशाल नगर है, घोर जंगल था। अतः हनुमान तिवारी वहीं सपरिवार बस गए।

समय पाकर वहीं आपकी संतति अपने पैतृक-गुण शस्त्र और शास्त्र से संपन्न होने लगी। जब बरेली ने जंगल का रूप छोड़कर नगर का रूप धारण किया, तब तिवारियों की यह बस्ती तिवारी मुहल्ला के नाम से प्रसिद्ध हुई, जो अब तक विद्यमान है। और यही हमारे चरित्र-नायक की जन्म-भूमि है।

आपके पूर्वपुरुषों में पं० नंदकिशोरजी, पं० आशारामजी और पं० लक्ष्मीनारायणजी अधिक प्रसिद्ध हुए। बरेली के आस-पास सौ-सौ कोस तक के विद्यार्थी उस समय वहीं पढ़ने आते थे। ये महानुभाव आपसे तीसरी-चौथी पीढ़ी में थे। यद्यपि आपने इन्हें नहीं देखा है, किंतु मुहल्ले के कई अन्यजातीय वृद्ध सज्जनों

को कहते सुना है कि उन दिनों तिवारी मुहल्ला 'छोटी काशी' कहाता था।

पं० लक्ष्मीनारायणजी ने उस रेल-तार-विहीन समय में काशी जाकर व्याकरण पढ़ा था, और नदिया जाकर न्याय-शास्त्र का अध्ययन किया था। पं० चुन्नीलालजी जो कि आपके पितामह के भाई थे, अच्छे वैद्य थे। आपके पिता ज्योतिषी थे और आपके चाचा पं० बुद्धसेनजी अलीगढ़ में डॉक्टर थे। अब भी आपके भाई वहाँ पर हैं। यह आपके वंशजों की पूर्व कथा है। अस्तु।

हमारे चरित्र-नायक ने बरेली में श्रीपं० राधाप्रसादजी शास्त्री से लघुकौमुदी, सिद्धांतकौमुदी, मुक्तावली, रघुवंश, मेघदूत, किरात आदि पढ़े थे। पीलीभीत मे श्रीपं० त्रिवेणीप्रसादजी शास्त्री से शब्देंदुशेखर, परिभाषेंदुशेखर और व्याकरण महाभाष्य आदि पढ़े। काशी में स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्रीपं० शिवकुमार शास्त्री से व्युत्पत्तिवाद और अद्वैत, सिद्धि आदि पढ़े। एवं वहीं स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्रीपं० गंगाधरजी शास्त्री सी० आई० ई० से अलंकार-शास्त्र के ऊँच ग्रंथ रसगंगाधर आदि पढ़े। चंद्रनगर बंगाल में श्रीहरिदास भट्टाचार्य महाशय से आयुर्वेद पढ़ा, और श्रीपं० काशीनाथजी शास्त्री से दर्शन-ग्रंथ और विशेषतः वेदांत-शास्त्र पढ़ा।

श्रीपं० शिवकुमारजी शास्त्री की आप पर विशेष अनुकंपा थी। आप उन्हीं के घर पर रहते थे, और अब भी जब कभी

आप काशी जाते हैं, प्रायः उन्हीं के यहाँ ठहरते हैं। आपने व्याकरण में काशी की प्रथमा-मध्यमा और पंजाब की शास्त्री परीक्षाएँ दी हैं। साहित्य में काशी की आचार्य-पदवी प्राप्त की है।

शास्त्री-परीक्षा पास करने के बाद आपने कुछ समय लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज में पढ़ाया। बाद मे हरिद्वार के पास ज्वालापुर के महाविद्यालय में पढ़ाया। पश्चात् छ वर्ष तक गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापन किया, और फिर तीन वर्ष तक ऋषिकुल हरिद्वार में प्रधानाध्यापक होकर आपने कार्य किया।

तदनंतर बरेली में ३ वर्ष तक औषधालय का कार्य किया। पश्चात् कई कारणों से अमीनाबाद, लखनऊ मे उसी औषधालय की एक शाखा 'मृत्युंजय-औषधालय' के नाम से स्थापित की। लखनऊ-निवासियों ने आपकी सुचिकित्साओं से संतुष्ट हो आपको भले प्रकार अपना कर आपका यथेष्ट मान किया, और अब तो इतना अधिक कार्य उपर्युक्त औषधालय में रहता है कि जिसका कहना कठिन है। सहस्रों असाध्य रोग से पीड़ित रोगियों ने इस औषधालय के आश्रय से पुनर्जन्म प्राप्त किया है, और इसी कार्य की महत्ता के कारण अब एक प्रकार से विद्यावाचस्पतिजी लखनऊ के निवासी ही से हो गए हैं।

आपको आयुर्वेद की उपाधि 'वैद्यभूषण कविराज' आपके गुरु श्रीहरिदास भट्टाचार्यजी से मिली है। और विद्यावाचस्पति

का पद शृंगेरीमठ शिवगंगा पीठ के जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य से मिली है।

आपने 'अर्वाचीन-साहित्य-विवेचना', 'अलंकार-कल्पद्रुम', 'अपराव्रतनिर्णय', 'केकेंशाः संस्कृतसाहित्ये पूर्ति सापेक्षाः, कश्चतदुपायः' आदि अनेक निबंध लिखे हैं। आपने आयुर्वेद-महत्त्व और साहित्यदर्पण भाषा-टीका दो बहुत ही उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की है। आपकी रचनाएँ बड़ी ही भाव-पूर्ण और सरस होती हैं। आपकी पुस्तक 'रामायण में राजनीति' की विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। आप खरे और ऊँची श्रेणी के समालोचक तथा विद्वान् हैं। साहित्य-संसार मे आपका अच्छा स्थान है, और सनाढ्य जाति के तो आप उज्ज्वल रत्न ही हैं। आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं:—

आयुर्वेद-महत्त्व के अंत में आपने अपने अध्ययन, निवास, कुल आदि के संबंध में निम्न-लिखित पद्य लिखे हैं:—

* पाञ्चालीं चलितां चतुर्थपतितां सद्वेदविद्यामिवाऽ—
रे रे कीचक, नीचवंशदहनीमास्माऽवमंस्याश्चिरम्;
अन्तर्ध्वान्तमनन्तवैरिदमनोन्मीलन्महामोत्सवो
आम्यन्भीमगदो मदोपशमनो जागर्ति पार्थो बली ॥ १ ॥

---

* हे दुष्ट कीचक! शूद्र को प्राप्त हुई, नीचवंश की विध्वंसक उत्तम वेदविद्या के समान, अपनी दृष्टिगोचर हुई पतिव्रता द्रौपदी का तू तिरस्कार मत कर, क्योंकि गुप्तरूप से संख्यातीत शत्रुओं का नाश करके आनन्दित, शत्रुओं के मद को चकनाचूर करनेवाला,

* वेदानुयायिजनकौतुकवर्धनाय
वेदप्रतीपजनतामदमर्दनाय ।
वेदेषु गूढमहिमानमनामयस्य
मूलां नुतिं व्यतनवं नवकौतुकेन ॥ २ ॥

† भाष्यान्तं पणिनात्मनीयमभितिर्नागेशगीर्भिर्नुतं
काणादञ्च विनीय गौतममथो पातञ्जलं कापिलम् ;
यः श्रद्धैकधनोऽजनिष्ठ भगवत्पूज्येऽनिशं शंकरे
तेनाऽकारि किल त्रयी रिपुवने शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३ ॥

‡ कृता नेत्रगुणाऽब्देन टीका 'साहित्यदर्पणे' ;
'आयुर्वेदमहत्वं' च ब्रह्मवेदायुषः पुरा ॥ ४ ॥

गदा से प्रहार करनेवाला, वीर भीम अभी जीवित है । वह तेरी कामाग्नि की शांति करेगा ।

* मैं शालग्राम, वेदानुयायियों के हर्ष की वृद्धि एवं वेद के प्रतिकूल चलनेवालों के गर्व के नाश के हेतु नूतन कौतुक से वेदों की अतीव महिमा-बोधक, आरोग्यता की मूल-कारण स्तुति को रचता हूँ ।

† जिस शालग्राम ने महाभाष्य पर्यंत व्याकरण, भाष्यांत नव्यन्याय, प्रशस्तपाद भाष्यांत प्राचीन न्याय, पातंजलमहाभाष्यांत न्यायशास्त्र, कपिलभाष्यांत सांख्यशास्त्र, गौतमभाष्यांत बौद्धशास्त्र का अध्ययन करके शिवजी का भक्त बनकर ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के प्रतिकूलगामी रूपी शत्रु-वन में सिंह की क्रीडा की । अर्थात् नास्तिकों का मद मर्दन किया ।

‡ जिसने 'आयुर्वेदमहत्व' और 'साहित्यदर्पण भाषा-टीका' इन दो बहुत ही उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की है ।

*वासिष्ठानां सनाढ्यानां त्रिवेदीविदुषां कुले ;
वरेलीनगरे जातः श्रीलषमणपुरस्थितिः ॥ १ ॥
श्रीकाशीनाथपादाब्जद्वन्द्ववन्दनमन्दिरः ;
शालग्रामो मुदाऽकार्षीन्मदशोषं त्रयीद्विषाम् ॥२॥ (युग्मम्)

× × ×

आपकी अन्य कविताएँ निम्न-लिखित हैं—

†जय, मृत्युञ्जय देव, पुरारे !
निगमगमित , विपदेकनिवारण ,
मदनमथन, कलि - कलुष - विदारण ,
प्रणत भुवन, गिरिजेश, गजारे ,
जय, मृत्युञ्जय देव, पुरारे ॥ १ ॥

‡ शशिमण्डन, भव - भव-भय-खण्डन ,
मोक्षसदन , हर , दुरितविकण्डन ,
गंगाधर , भूतेश , यमारे ,
जय, मृत्युञ्जय देव, पुरारे ॥ २ ॥

---

* वसिष्ठ ऋषि की संतान सनाढ्यों की त्रिवेदी-नामक विद्वानों की शाखा में, बरेली-ज़िला में, लषमणपुर ग्राम में उत्पन्न हुए, श्रीकाशीनाथ के चरणारविंदों के सेवक शालग्राम ने पूर्वोक्त त्रयी के विद्वेषियों के मद का समूल नाश किया ।

† हे त्रिपुरनाशक, वेदज्ञ, विपत्तिविनाशक ! काम दाहक, कलिकाल के अज्ञान के संहारक, संसार के वन्दनीय, गिरिजा के प्राणेश्वर, गज के नाशक, मृत्यु के जीतनेवाले महादेवजी आपकी जय हो ।

‡ हे शशिशेखर, संसारोत्पन्नभय के संहारक, आनंद के निवास-स्थान, पापों के नाशक, गंगा को धारण करनेवाले, भूतों के स्वामी, कालयन्तु शिवजी आपकी जय हो ।

*जनरञ्जन, मदमोहविभञ्जन,
कल्याकर, शितिगलगदगञ्जन,
वरद, निरञ्जन, पाहि मखारे,
जय, मृत्युञ्जय देव, पुरारे ॥ ३ ॥
†श्रुतिरपि ते न गुणौघमनन्तम्,
गणयति को नु वेद भगवन्तम्;
निटिलनयन, वचसरमसिपारे,
जय, मृत्युञ्जय देव, पुरारे ॥ ४ ॥

× × ×

सुरभारतीसन्देशः

(गीतिः)

‡अयि वन्दनीयभावाः ! सदयाः ! महानुभावाः !
भवतोऽवतो रसज्ञान् सुरभारतीदमाह ॥ १ ॥
§विनयो नयोचितश्चेन्न निरादरो विधेयः;
सत्कारणं विचेयं तदवारणं विधेयम् ॥ २ ॥

---

* हे मनुष्यों के आनंददायक, मद और मोह के नाशक, कल्याणसागर, कृष्णवर्ण, गले के रोग के नाशक, वर के देनेवाले, निष्पाप, दुष्टसंहारक शिवजी आपकी जय हो।

† हे भगवन् ! आपके संख्यातीत गुणों का श्रुति भी वर्णन नहीं कर सकती है, फिर आपके जानने का सामर्थ्य मनुष्य में कैसे सभव हो सकता है। हे तीन नेत्रों के धारक, योगागम्य शिवजी आपकी जय हो !

‡ हे मान्यभावधारक ! सदय, महानुभाव ! आप सब रसज्ञों का रक्षण करनेवाली संस्कृतवाणी ने यह अग्रिम वक्तव्य कहा है कि—

§ हे मनुष्यो ! यदि आपका व्यवहारोचित विनय न होवे, तो इसका न छोड़िए। किंतु अपने सत्कार का उपाय खोजिए और निरादर का निवारण कीजिए।

* अधिकर्णमर्पणीया सुचिरं विचारणीया ;
हृदये निवेशनीया सुरभारती कथेयम् ॥ ३ ॥
† इदमस्ति भारतं मे ननु भारतीयमस्मि ;
सुरतामुपेतवंतो मम भावमाश्रिता ये ॥ ४ ॥
‡ प्रलयोदयौ तु सृष्टेः शतशो मयाऽनुभूतौ ;
जगदादिसंविधा मे नयनाग्रत. स्फुरन्ति ॥ ५ ॥
§ कमलासनः स वक्ता ऋषयः श्रुतार्थिनस्ते ;
सहचारिणी च साऽहं जगतः पितामहस्य ॥ ६ ॥
¶ नवसर्गवर्गवेदी वेदोपदेशयज्ञे ;
स्मृतिगोचरी भवन्ती परिमोहयत्यजस्रम् ॥ ७ ॥
+ कुरुते पुरोगत याऽखिलभूतभाविभव्यम् ;
मयि सा समेधि विद्या बहुभि समाहितेयम् ॥ ८ ॥

---

* देववाणीमय कथा को कर्णों में भर लीजिए, बहुत समय तक विचारिए और हृदयासन पर अंकित कर लीजिए।

† यह भारत मेरा है और मैं भारत की हूँ तथा जिन्होंने मेरा आश्रय लिया है, उन्होंने देव पर्याय पाई है।

‡ मैंने सृष्टि के प्रलय और उत्पत्ति अनेक बार देखे हैं और जगत् की प्राथमिक साधन-सामग्रियाँ मेरे नेत्रों के सामने हैं।

§ मेरा वक्ता ब्रह्मा है और श्रोता ऋषि-मंडल है और मैं जगत् के पितामह ब्रह्मा की सहचारिणी हूँ।

¶ नवीन सर्ग रूप वर्गाकार-वेदी-वेदोपदेश रूप यज्ञ में स्मृति की विषयभूत होती हुई निरंतर मोहित करती है।

+ जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनो कालों में रहनेवाली वस्तुओं को दर्शाती है और बहुत जनों द्वारा प्राप्त की गई है, वह विद्या मुझे प्राप्त होकर मेरे में वृद्धिमती हो।

* मनसामनेपणीयं वचसामगोचरं यत् ;
न तदचरं विदूरे ननु मे स्तनंधयानाम् ॥ ९ ॥
† विषयावलीवलीढा ज्वलदाधयो विदूनाः ;
मम सन्निधौ समेताः शममाशु संश्रयन्ते ॥ १० ॥
‡ जगतीतल१च जित्वा बहुलैर्बलैरुदग्राः ;
मम सूनुसङ्गमेन महिमानमुत्सृजन्ति ॥ ११ ॥
§ परिचारिता पृथिव्यामिह सा मयैव नीतिः ;
अबलो यथा बलीयान् बलवत्सु निर्विशङ्कम् ॥ १२ ॥
× इह धर्मभीतिरेषा परलोकगीतिरेषा
परिलचिताऽन्यदेहे कतमेन वा कथेयम् ॥ १३ ॥

---

* जो परब्रह्म या पदार्थ मन से नहीं जाना जाता है और वचन के अगोचर है, उसे भी जानना और कहना मेरे सरस्वती पुत्रों को कठिन नहीं है।

† इंद्रियों के विषयों के समूह से दु:खित अभिनव, मानसिक दुःखों के आश्रयभूत और अति दुखी या श्रांत भी प्राणी मेरे समीप को प्राप्त कर शीघ्र ही जितेंद्रियता और शांति को प्राप्त करते हैं।

‡ बहुत सेनाओं द्वारा भूतल को जीतकर लब्ध-प्रतिष्ठ (अभिमान को प्राप्त) सिकंदर ने मेरे कृपा-पात्र ऋषि के समागम से अपने सारे अभिमान और ऐश्वर्य का कृष्ण मुख कर दिया है।

१ अलिकन्दर (सिकंदर) स्य ऋषिसमागमकथाऽत्रानुसंधेयः।

§ इस भूमंडल पर यह नीति मेरे द्वारा ही प्रवर्तित की गई है, जिसका अनुकरण करनेवाला व्यक्ति निर्बल होता हुआ भी निःशंकपने से बलवानों में भी अपनी बलवत्ता प्रकट करता है।

× इस भव में धर्म के भय का और देहांतर की प्राप्ति-विषयक परलोक का कथन करनेवाला नायक या नायिका कौन है? सोचिए।

* स्मरणीयनीतिविद्या निखिलाऽवनीहिता या ;
रामादिभूपभूषा परिपोषिता मयेयम् ॥ १४ ॥
† ऋषयो वशिष्ठमुख्या मम रक्षिणो यदाऽऽसन् ;
परिचारिका तदा मे जगदाधिराज्यलक्ष्मीः ॥ १५ ॥
‡ कपिलः पतञ्जलिस्तौ कणभुक्प्रशस्तपादौ ;
पुलिनोद्भवो महर्षिः स च जैमिनिर्मुनीशः ॥ १६ ॥
अमृतं निषिक्तवन्तो मम यत्कलेवरे ते ;
न हि तद्भिया यमो मे दिशि दत्तदृक् कदापि ॥ १७ ॥
(युग्मम्)
§ अजरीकरः प्रयोगः पणिनात्मजेन यो मे ;
मुनिना कृतः शरीरे परिवर्तनं स रुन्धे ॥ १८ ॥
+ कविकालिदासदत्तं नयनामृतं मदीये ;
कुरुते दृशौ सशक्ते परिलोकितुं दिगन्तम् ॥ १९ ॥

---

* राम आदि राजाओं को भूषित करनेवाली, निखिल भूमण्डल की हितकारिणी और सदा स्मरणीय नीति-विद्या की पुष्टिकारिणी मैं ही हूँ।

† जिस समय वशिष्ठ आदि ऋषीश्वर अपने सामर्थ्य से मेरी रक्षा करते थे, उस समय जगत् के सम्राट् की राज्यलक्ष्मी मेरी सेविका थी।

‡ कपिल, पतंजलि, कणाद, गौतम, जैमिनि, इन ग्रंथप्रणेताओं ने मेरे शरीर पर विज्ञान रूपी अमृत का सिंचन किया है, उसके भय से काल मुझ पर प्रहार करने को असमर्थ होता हुआ एक दिशा में बहुत दूर खड़ा है।

§ पाणिनीय मुनि ने मेरे शरीर में जो असंख्य शब्द का प्रयोग किया है, वह मेरे शरीर के खंड (नाश) को रोकता है।

+ कालिदास कवि ने श्लोकनिर्माण रूपी सुरमा मेरे नेत्रों में

* इति वृत्तमेतदेवं हहहा गतं तदेतत् ;
अधुना तु शोचनीयं कुदशान्तरं गताऽहम् ॥ २० ॥
† अलसो विमूढचेताः सकलोपि मे स्ववर्गः ;
सकलेशताविहीना यत दुर्गतिं वहेऽहम् ॥ २१ ॥
‡ जगदाधिराज्यलक्ष्मी ललितौ यदीय पादौ ;
वसनाशनाय साऽहं सदयं सभासु याचे ॥ २२ ॥
§ वसनाशनैर्मदीयैरुपजीविता यदस्याः ;
कथयन्ति हन्त ! ते मां 'हतभागिनी मृतेयम्' ॥ २३ ॥
+ भृशमस्मि जातलज्जा भवदीय पौरुषेषु ;
दलितासहो यदन्यैर्ननु मातरं सहध्वम् ॥ २४ ॥

लगाया है, जिससे अवलोकनार्थ समर्थ होते हुए मेरे नेत्र समस्त दिशाओं का अवलोकन करते हैं।

* खेद है, पूर्वोक्त सब अच्छाइयों का ।मटियामेट हो गया और अब मैं शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुई हूँ।

† मेरा अखिल कुटुंबीवर्ग आलसी और मूर्ख है और मैं सर्वश्रेष्ठता से विहीन हो गई हूँ, और दुर्गति को प्राप्त हुई हूँ।

‡ जिसके चरण चक्रवर्तियों की राज्यलक्ष्मी से पूजे जाते थे, वही मैं इस समय वस्त्र और भोजन के लिये सभाओं में याचना करती हूँ।

§ पूर्व समय में मेरे द्वारा वस्त्र और भोजन को पानेवाली मातायेँ इस समय उनको न पाकर दुःखित होती हुई मुझे 'हतभागिनी' और 'मृता' कहती हैं।

+ मुझे आप सब भारतीयों के पुरुषार्थों को देखकर बड़ा तरस आता है कि आप अपनी माता-स्वरूप मुझे अन्य विदेशियों द्वारा पद-दलित की गई देखते हुए भी सहन करते हुए मूछ पर ताव दे रहे हैं।

* वरमस्मि वन्ध्यगर्भा न पुनर्निरीहमन्दैः ;
अलसैः सुतैरसंख्यैरिह पुत्रिणी भवेयम् ॥ २५ ॥
† मम दुर्गतं न चिन्त्यं मरणं वरं मदीयम् ;
न पुनः सपत्नजानि कटुभाषितं सहेयम् ॥ २६ ॥
‡ किमिदं न शोचनीयं निमिषत्सु हा भवत्सु ;
यदहं स्वयं सशस्त्रा समराय साधयेयम् ॥ २७ ॥
§ स्मरणीयमेतदद्धा ननु सा समाधिसिद्धिः ;
विपदेकरक्षिणी मे जगदादि भू विसृष्टा ॥ २८ ॥
तदहं वहुमदूना न च रक्षिता भवद्भिः ;
करुणामयान्तरां तां सुसखीं समाश्रयेयम् ॥ २९ ॥
(युग्मम्)

+ शयिता तदङ्कशय्यामधिशय्य निर्विशङ्कम् ;
चिरकालजातबोधा पुनरप्यहं वहेयम् ॥ ३० ॥

---

* मुझे वंध्या रहना पसंद है, किंतु उत्साह-हीन, निरक्षरभट्टाचार्य एवं आलसी पुत्रों से पुत्रवती होना पसंद नहीं।

† मुझे ग़रीबी की और मरने की परवा नहीं, परंतु अपनी सौतों (सहचारिणी-सहधर्मियों) कांति और लघिमयों के अपशब्द सह्य नहीं हैं।

‡ क्या यह शोचनीय नहीं है कि आप भारतीयों के सजीव रहते हुए भी मैं सशस्त्र होती हुई समर के लिये सन्नद्ध होती हूँ।

§ इस समय यह स्मरणीय है कि ब्रह्मा द्वारा निर्मित वह समाधि की सिद्धि ही विपत्ति में मेरी रक्षा करनेवाली है, अतएव आपके द्वारा अरक्षणीय होती हुई बहुत दुखी हुई मैं करुणा से आर्द्र चित्त उस समाधि-सिद्धि-नामक हितकारक सखी का आश्रय लेती हूँ।

+ मैं उस समाधि की गोद रूपी शय्या पर निःशंक रीति

परमेतदेव चिन्त्यं वदनेषु वो विलग्ना ;
मलिना कलङ्कलेखा सुशका विमार्जितुं किम् ॥ ३१ ॥
(युग्मम्)

* जननीमरक्षयित्वा सुकृतं च भक्षयित्वा ;
किमु जीवनाय कश्चिद् वरसंश्रयं गतो हुम् ॥ ३२ ॥

† तदतः परं न शक्ता गदितुं सगद्गदाऽहम् ;
रहसि स्थिता विशङ्कं करुणञ्च रोदयेयम् ॥ ३३ ॥

‡ विनयो यथोचितश्चेन्न निरादरो विधेयः ;
दरकारणं विचेयं गदवारणं विधेयम् ॥ ३४ ॥

श्रविकर्णमर्पणीया सुचिरं विचारणीया ;
हृदये निवेशनीया सुरभारतीकथेयम् ॥ ३५ ॥

वनारस-संस्कृत-कवि-सम्मेलन के सभापति के आसन से जो भाषण आपने दिया था, वह बहुत ही प्रभावशाली, मनोरंजक और भाव-पूर्ण था। कुछ अंश उसका भी देख लीजिए—

से शयन कर बहुत काल के अनतर जागकर फिर भी आप लोगों को प्राप्त करूँगी। किंतु विचारणीय यह है कि आपके मस्तक पर लिखी हुई काली मसि-लेखा का परिवर्तन हो सकना संभव है क्या ?

* अपनी माता का रक्षण न करके और स्वसंचित पुण्य-राशि को सफाचट्ट करके क्या कोई व्यक्ति जीने के उद्देश्य से उत्तम आश्रय को कभी प्राप्त हुआ है।

† अतएव इससे अधिक बकवाद करने को असमर्थ होती हुई मैं एकांत स्थान में स्थित होती हुई सकरुण रुदन करती हूँ।

‡ इसी 'सुर-भारती-संदेश' के द्वितीय और तृतीय श्लोक के अनुसार इनका भी अर्थ है।

* शिक्षायास्त्रीणि लक्ष्याणि मन्यन्तेऽत्र विचक्षणाः ;
स्वस्कृतिर्देहमनसो सुलभं जीविकार्जनम् ॥ १ ॥

× × ×

† देहशिक्षा भवेत्तादृग् यया विपदुपस्थितौ ;
आत्मान च धनं चापि रक्षेच्च ललनाजनम् ॥ २ ॥

× × ×

‡ मनस्तु पापभीरुः स्यात् स्वातन्त्र्यप्रेमपूरितम् ;
सत्यनिष्ठं विपद्धीरं दास्यभावैर्न गर्हितम् ॥ ३ ॥

× × ×

§ स्वल्पाऽऽयासबलेनैव स्वल्पकालेन चाप्नुयात् ;
योगक्षेमक्षमं१ येन शिक्षालक्ष्यं तदन्तिमम् ॥ ४ ॥

× × ×

---

* विद्वान् पंडित शिक्षा के तीन ही उद्देश्य मानते हैं—(१) शरीर की स्वस्थता, (२) मन की पवित्रता और (३) सरलता-पूर्वक आजीविका की प्राप्ति।

† विपत्ति के आने पर जिससे शरीर, धन और अबलाओं की रक्षा की जा सके, वह दैहिक शिक्षा है।

‡ जिसमे मन, पापों से भय खानेवाला, स्वतंत्रता और प्रेम से पूर्ण सत्यवादी विपत्ति में धैर्य धरनेवाला और दासता के भावों से रहित हो, वह मानसिक शिक्षा है।

§ जिससे थोड़े परिश्रम से थोड़े ही समय में देह की स्थिरताकारक आजीविका की प्राप्ति हो, वह योगक्षेमकारक तृतीय शिक्षा है।

१ योगक्षेमक्षमं=शरीर की रक्षा में समर्थ।

* एतत्त्रयस्य गन्धोऽपि नास्ति पाश्चात्यशिक्षणे ;
विपर्ययस्तु प्रत्यक्षस्तदलं व्यर्थविस्तरैः ॥ ५ ॥

× × ×

† चातुर्यं चाकरीमार्गे कौशलं बूटपालिशे ;
भाले लिखति चैतावत् शिक्षा पाश्चात्यचालिता ॥ ६ ॥

× × ×

‡ बी० ए० पर्यन्तशिक्षायां सहस्राणां तु विंशतिः ;
व्ययो भवति वित्तं तु केवलं दासवृत्तये ॥ ७ ॥

× × ×

§ यदि वार्धुषिकादेतद् धनमादाय पठ्यते ;
अष्टानस्यैव वृद्धिः स्यात् प्रतिमास शतं शतम् ॥ ८ ॥

× × ×

---

* अँगरेज़ी-शिक्षा में शिक्षा के उपर्युक्त तीनो उद्देशों की गंध भी नहीं पाई जाती है और विपरीतता स्पष्ट दिखलाई देती है, अतएव व्यर्थ विस्तार से क्या प्रयोजन ।

† अँगरेजी-शिक्षा केवल नौकरी में चतुरता और बूटों (जूतों) पर पालिश करने में निपुणता ही भाग्य में लिख देती है (प्राप्त कराती है) ।

‡ बी० ए०-परीक्षा तक की शिक्षा प्राप्त करने में लगभग बीस हज़ार रुपया व्यय होता है और परिणाम में केवल दासता ही हाथ लगती है ।

§ यदि उक्त धन किसी साहूकार से लेकर पढ़ा जावे, तो प्रति-मास आठ आना प्रतिशत के हिसाब से व्याज की चढ़ती भी होगी ।

* यदि स्यात् मुसलस्थूलं भाग्यं प्रीताश्च देवताः ;
तदा 'बाबू' समाप्नोति वेतनं खशराङ्कितम्[१] ॥ ९ ॥

× × ×

† पञ्चाशद्वेतनं मासे वृद्धिस्तु द्विगुणा ततः ;
यावज्जन्म न निस्तार्यो वृद्धिर्मूलस्य का कथा ॥ १० ॥

× × ×

‡ अधिकांशस्तु नाप्नोति ग्रामं ग्रामं भृतिं क्वचित् ;
सेवकानां सुभिक्षत्वात् स्थानानां पारिमित्यतः ॥ ११ ॥

× × ×

§ विक्रीय तु पितुर्गेहं बन्धकीकृत्य भूषणम् ;
मातुर्वापि स्त्रिया वापि बी० ए० पर्यन्तमागतः ॥ १२ ॥

---

* यदि भाग्य मूसल के समान मोटा हुआ और सब देवतादि प्रसन्न हो गए, तो कदाचित् बाबूजी पचास रुपया मासिक वेतन के पात्र होंगे।

१ ख=शून्य०। शर=बाण ५। उलट कर ५०) हो गए।

† किंतु खेद है, वेतन केवल ५०) मासिक ही है और ब्याज-वृद्धि प्रतिमास सौ रुपया (बीस हज़ार का आठ आना मासिक प्रतिशत के हिसाब से ब्याज) होती है। इस प्रकार जीवन-पर्यंत ब्याज ही से छुटकारा नहीं मिल सकता, मूल की उऋणता तो कोसों दूर है।

‡ नौकरों की सस्ताई और स्थानों की लबालब पूर्णता से अमेरिका, योरप, चीन, जापान, लंदन, लंका आदि देशों में सैकड़ों चक्कर काटने पर भी कहीं भी अधिक वेतन की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

§ पैतृक सदन को बेचकर और माता तथा स्त्री के गहनों को

करालजठरज्वालाकवलीकृतमानसः ;
भारताकृतिरांग्लोऽसौ विश्वं पश्यति शून्यवत् ॥ १२ ॥

गहने (गिरवीं) रखकर जिस किसी प्रकार बी० ए०-परीक्षा को उत्तीर्ण कर आजीविका के उपाय से विहीन होता हुआ भारतवर्ष का अँगरेज़ी पढ़नेवाला फिर अखिल विश्व को शून्य के समान देखता है, अर्थात् उसे सर्वत्र निराशा-ही-निराशा देख पड़ती है ।

श्रीपं० गणेशप्रसादजी चौबे

पं० गणेशप्रसादजी चौबे का जन्म सं० १६४४ वि० मे फाल्गुन कृष्ण १४ को हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० ब्रह्मादीनजी चौबे था। आपके पूर्वज सैदनगर कोटरा जिला जालौन से बाँदा सन् १८५७ के गदर के पूर्व आ बसे थे। वहाँ आपका मकान मुहल्ला कालवनगंज में छाबी तालाब के पास है, किंतु आजकल आप छतरपुर-हाईस्कूल में ड्राइंग-मास्टर हैं।

जब आप केवल पाँच वर्ष और कुछ मास ही के थे, तभी आपकी माता का देहांत हो गया था, इसी हेतु आपका लालन-पालन आपके पिताजी ही ने किया था। आपकी माता का देहांत हो जाने के कारण तथा आपके पिताजी के अधिक प्रेम के कारण आप उच्च शिक्षा पा सकने मे समर्थ नहीं हो सके! केवल हिंदी-उर्दू-मिडिल और नार्मल स्कूल की परीक्षाएँ पास करके तथा थोड़ी-बहुत अँगरेजी पढ़ने के पश्चात् आपको अपना विद्यार्थी-जीवन छोड़ देना पड़ा। तत्पश्चात् सन् १६०८ से १६१४ तक आप डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की नौकरी में

सुकवि-सरोज

श्रीपं० गणेशप्रसादजी चौबे, छतरपुर

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

रहे। सन् १९१५ से आप छतरपुर-हाईस्कूल में ड्राइंग-मास्टर हैं।

आपके पूर्वज प्रायः सभी पुलिस मे मुलाज़िम रहे थे, इसी कारण से आपका ध्यान उर्दू और फारसी की ओर अधिक रहने के कारण आपकी अधिकांश कविताएँ उर्दू ही में हुआ करती हैं।

आपकी कविताओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

कुदरते हक़ का तमाशा हर चमन में देखना;
दीदए तहक़ीक़[1] से हर गुल फ़बन में देखना।
हाथ में लेकर गुले राना की रानाई को देख;
वुए उल्फ़त है उसी की यासमन[2] में देखना।
फ़ैज़ उसका है ये ख़ुशइलहाँ[3] हुए मुर्गे चमन;
ज़िक्र उसका बुलबुलो तूती दहिन[4] में देखना।
जुस्तजू में हैं रमीदा[5] उसके आहूए ख़ुतन[6];
जलवए चश्मे ग़िज़ालाँ बाँकपन में देखना।
हर संगरेज़ा[7] से तजल्लीए[8] हक़ की है होती ज़हूर;
क्या सनाअत[9] है भरी संगेयमन[10] में देखना।
न्यामते उज़मा[11] से उसकी हर शजर है बार-दार;
बरकते असमार[12] उसकी हरफ़नन में देखना।

---

१ दीदए तहक़ीक़ = सूक्ष्म निरीक्षण। २ यासमन = चमेली। ३ ख़ुशइलहाँ=अच्छी आवाज़वाले। ४ दहिन=मुँह। ५ रमीदा=दौड़ता है। ६ आहूए ख़ुतन=मुश्कवाला हरिन। ७ संगरेज़ा = पत्थर का टुकड़ा। ८ तजल्ली = रोशनी। ९ सनाअत = कारीगरी। १० संगेयमन = लाल। ११ उज़मा = बड़ी। १२ असमार = फलों।

क्या बयाँ हो तुमसे 'शादाँ' उसकी क़ुदरत कामिला ;
हुस्न दिल अफ़रोज़ उसका गुलबदन में देखना ।

× × ×

शीरीं[1] सख़ुन[2] भी होना इक ख़ास है यह जौहर ;
क़ीमत नहीं है रखता इसके मिसाल गौहर ।
फाँसे है दाम[3] इसका ज़ालिम व बेरहिम को ;
मारे सियह को देखो फँसता है सुनके मोहर ।

× × ×

अनोखा हुस्न है उसका जिसे सब श्याम कहते हैं ;
वही महबूब है मेरा जिसे घनश्याम कहते हैं ।
जो सच पूछो मुसीबत में कोई गर साथ देता है ;
वही है इक प्रभू प्यारा जिसे सब राम कहते हैं ।
जिन्हें है ख़्वाहिशे सत्सग वहीं पर उनको मिलता है ;
जिसे हर भक्त-जन हरदम यहाँ पर धाम कहते हैं ।
लगाई जिसने लौ उससे उसी का जन्म स्वारथ है ;
यही आनद है सच्चा इसे आराम कहते हैं ।
तू 'शादाँ' इश्क़ कर उससे कि जिसके वह बनाए हैं ;
ये अहिले इश्क़[4] दुनियावी जिन्हें गुलफ़ाम कहते हैं ।

× × ×

ज़ुल्फ़ में शाना[5] न तू ऐ यार खींच ;
दिल गिरफ्ता मत मेरा हर बार खींच ।
सब्र कर मिल जायगा तेरा सनम ;
आह मत तू ऐ दिले बेज़ार खींच ।

---

१ शीरीं = मीठा । २ सख़ुन = बोल । ३ दाम = जाल । ४ अहिले इश्क़ = प्यार करनेवाले । ५ शाना = कंघा ।

'शादाँ' शौक़े वस्ल है तुझको अगर ;
उल्फ़ते दिल का तो उसके तार खींच ।

× × ×

नहीं दिल्लगी का नतीजा है अच्छा ;
अगर है तो कुछ वासतीक़ा है अच्छा ।
ज़ियादा न हद से तजाउज़१ कभी हो ;
हर इक बात में यह तरीक़ा है अच्छा ।

× × ×

गुमाँ हो शीर२ पर मय३ का व मय को शीर सब जानें ;
यही देखा असर हमने जहाँ के बीच सोहबत का ।
वही इक फ़र्क़४ है, लेकिन असर है क्या जुदागाना ;
उधर दस्ते कलारी में इधर ख्वाजा की क़ुरबत५ का ।

× × ×

जाते-जाते जलवए जानाँ न देखा हाय-हाय,
आरज़ूए दीद दिल में थी सनम के हाय-हाय ॥ १ ॥
देखकर यों मानो ज़र सब प्यार करते हैं हुज़ूर ;
वे ज़री में अक़्रिबा६ भी आर७ करते हैं हुज़ूर ॥ २ ॥
दुनिया में तू हरीस८ से कुछ भी कभी न माँग ;
दर्कार जो तुझे हो उसी दिलरुबा९ से माँग ॥ ३ ॥
अच्छा बशर वही है जो कहता है साफ़-साफ़ ;
रहता है बुग़्ज़ोकीना१० से उसका ज़मीर११ साफ़ ॥ ४ ॥

---

१ तजाउज़ = ज़्यादती। २ शीर = दूध। ३ मय = शराब। ४ फ़र्क़ = बरतन। ५ क़ुरबत = नज़दीकी। ६ अक़्रिबा = रिश्तेदार। ७ आर = बचाव। ८ हरीस = लालची। ९ दिलरुबा = दिल ले जानेवाला, किंतु यहाँ परमात्मा से तात्पर्य है। १० बुग़्ज़ोकीना=दुश्मनी, ईर्षा-द्वेष। ११ ज़मीर = दिल।

इश्क़े बुताँ को यार मेरे जब तलक न छोड़ ;
मिल जाय हक़ीक़त का न इनसे भी कुछ निचोड़ ॥ ५ ॥
नामए शौक़ को भेजूँ न मैं क्यों यार के पास ;
जब कि रहता है मेरा दिल उसी दिलदार के पास ॥ ६ ॥
बाग़ सरसब्ज़ आरज़ूओं का अगर हो जायगा ;
फिर तराना मुर्ग़ दिल आज़ाद होकर गायगा ॥ ७ ॥
बाद मुद्दत के मिले सरकार आप ;
वस्ल१ से अब मत करें इनकार आप ॥ ८ ॥
जो शिकवा२ लब३ पै मैं लाऊँ तुम्हारी बेवफ़ाई का ;
तो खिंच जाए सरे महफ़िल वह नक़्शा कज़-अदाई४ का ॥ ९ ॥
रहे५ इश्क़े बुताँ में हम क़दम अव्वल जमाते हैं ;
गो मंज़िल अह्ले बिस्मिल६ यह बड़ी मुश्किल बताते हैं ॥ १० ॥

---

१ वस्ल = मिलना । २ शिकवा = शिकायत । ३ लब = होंठ ।
४ कज़-अदाई कज़ = टेढ़ा अदाई = अदा । ५ रहे = रास्ता ।
६ अह्ले बिस्मिल = इश्क़वाले, आशिक़ ।

सुकवि-सरोज

श्रीपं० ब्रह्मदेवजी शास्त्री

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीपं० ब्रह्मदेवजी मिश्र

पं० ब्रह्मदेवजी मिश्र काव्यतीर्थ, शास्त्री का जन्म सं० १६४२ वि० में अगहन सुदी पंचमी शुक्रवार को प्रयाग मे हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० भीमसेनजी मिश्र वेदव्याख्याता था। उन दिनों हमारे चरित्रनायक के पिताजी प्रयाग में संशोधक के पद पर प्रेस में काम करते थे। यह प्रेस स्वा० दयानंद सरस्वतीजी का स्थापित किया हुआ था। इससे पहले एक पुत्र संतान उत्पन्न होते ही मर जाने के कारण हमारे चरित्र-नायक के जन्म होने पर घर में बड़ी प्रसन्नता मनाई गई थी।

इन्हीं दिनों दूसरा हर्ष का कारण यह हुआ कि चरित्र-नायक के जन्म-संवत् ही में आपके पिताजी ने वैदिक यंत्रालय की नौकरी छोड़कर अपना स्वतंत्र प्रेस स्थापित कर लिया। पुत्र-जन्म के बाद ही स्वतंत्र जीविका का आधार होना विशेष सौभाग्य का चिह्न समझा गया, और पुत्र को भाग्यशाली समझकर माता-पिता का प्रेम आप पर और भी अधिक बढ़ गया।

हमारे चरित्रनायक के पिताजी की विद्वत्ता की धाक उन

दिनों प्रायः समस्त भारत में छा रही थी। आपने अपने जीवन का ध्येय अध्यापन, लेखन और व्याख्यान द्वारा जनता का उपकार करना बनाया था, जो कि आप अपने जीवन-भर भले प्रकार निबाहते रहे। धार्मिक संस्कृतादि ग्रंथों का भाष्य करने के अतिरिक्त वह अवशेष समय को अध्यापन में लगाते थे। एक संस्कृत-पाठशाला स्वयं खोल रक्खी थी, जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों के छात्रों को स्वयं अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन आदि प्राचीन ग्रंथों को आप पढ़ाते थे।

समय-समय पर शास्त्रार्थ करने और व्याख्यानादि देने के लिये भी आपको बाहर जाना पड़ता था। बालक ब्रह्मदेव इन दिनों पिताजी के पढ़ाते समय उनकी गोद में बैठकर छात्रों का पढ़ाना सुनते थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि बोलने का अभ्यास होते ही मातृभाषा में संस्कृत-शब्दों की प्रचुरता दिखाई पड़ने लगी।

पाँच वर्ष की अवस्था होने पर विद्यारंभ कराया गया। यद्यपि नाम-मात्र के लिये प्रथम आप एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ने के हेतु भेजे गए, किंतु अधिकतर आपका पढ़ना घर पर ही हुआ करता था। हिंदी का अभ्यास हो जाने पर आपको संस्कृत-विद्या का पढ़ाना प्रारंभ किया गया। और अपनी आयु के आठवें वर्ष ही में आपने अमरकोष, चाणक्य-नीति, विदुर-नीति, गणरत्न-महोदधि इत्यादि कई ग्रंथ आद्योपांत कंठस्थ कर लिए थे। बाल्यावस्था ही में इतने श्लोक

कंठ हो गए थे कि जब कभी अंताक्षरी छात्रों मे होती थी, तो इनसे कोई भी नहीं जीत पाता था।

आठवें वर्ष में आपका उपनयन-संस्कार हुआ। उपनयन होने के पश्चात् आपको वेदाध्ययन प्रारंभ कराया गया। आपके पिताजी ने साधारण बालकों की तरह उपनयन के बाद आपका समावर्तन नहीं किया, किंतु आपको सच्चा ब्रह्मचारी बनाया। आपको दंड-कमंडलु, मेखला आदि धारण करना, पृथ्वी पर सोना, प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठकर स्नान, सन्ध्योपासन, समिदाधान आदि करना पड़ता था। यही विधान सायंकाल के लिये भी था। अंजन, तांबूल आदि वस्तुओं का निषेध करना पड़ता था।

आठ वर्ष के बालक के ये नियम देखकर और सस्वर वेदाध्ययन को सुनकर लोग आश्चर्य करते थे। यह क्रम कई वर्षों तक चलता रहा था।

सं० १६५५ मे जब आपके पिताजी ने अग्निष्टोम-यज्ञ कराया था, उसमें आपको होता* का कार्य करना पड़ा था। केवल १० वर्ष की अवस्था में प्रायः समस्त ऋग्वेद कंठस्थ करके ऐसा गुरुतर कार्य संपादन होना आपकी प्रतिभा के आभास का ज्वलंत उदाहरण है।

---

* इस यज्ञ में १६ ऋत्विक् होते हैं, जिनमें एक-एक वेद के क्रमानुसार होता, अध्वर्यु और उद्गाता ये तीन ऋत्विक् होते हैं। ब्रह्मा का दर्जा इनसे बड़ा है। इन प्रधान चार ऋत्विजों के अधीन और तीन-तीन ऋत्विक् होते हैं। ऋग्वेद का कार्य होता के अधीन होता है।—संपादक

१५ वर्ष की अवस्था में आपका पाणिग्रहण-संस्कार हुआ। २१ वर्ष की अवस्था में आपके पुत्र उत्पन्न हुआ, किंतु दैवी दुर्घटना के कारण ६ वर्ष की अवस्था ही में वह छत से गिरकर काल-कवलित हो गया ! यह लड़का बड़ी तीव्र बुद्धि का था।

आपने सन् १६०६ में काशी की प्रथमा परीक्षा पास की। तथा मध्यमा परीक्षा भी कई वर्षों में खंडशः दी। सन् १६१६ मे आपने कलकत्ते की मध्यमा परीक्षा तथा सन् १६१७ मे काव्यतीर्थ परीक्षा पास की। सन् १६१८ में पंजाब की शास्त्री परीक्षा मे आप अच्छी योग्यता से उत्तीर्ण हुए। पंजाब-युनिवर्सिटी के समस्त उत्तीर्ण छात्रों में आप द्वितीय थे।

साहित्य-सेवा का व्यसन आपको बालकपन ही से है। सन् १६०७ ई० से आपने अख़बारों का पढ़ना प्रारंभ किया था, तब से यह व्यसन आपका बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि नेत्र-पीड़ा हो जाने पर भी आप अख़बार पढ़ना बंद नहीं करते हैं। कविता का भी शौक़ आपको बाल्यावस्था ही से है, किंतु वे कविताएँ अपने ही मनोविनोद के हेतु होती थीं।

जनता के समक्ष आपकी प्रथम कविता 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में, बंग-भंग के समय, प्रकाशित हुई थी। वह स्वदेशी आंदोलन का ज़माना था। उस कविता का प्रारंभ इस तरह है—

धरणीधर दरदहर दयामय सभी सुखों के तुम रासी ;
पड़ा कष्ट है बड़ा आयकर, रोते हैं भारतवासी।

किंतु हमारे चरित्रनायक की यह कविता राज-विद्रोहात्मक

समझी गई, और इटावा के मजिस्ट्रेट ने 'ब्राह्मण-सर्वस्व' के संपादक आपके पिताजी को तथा आपको बुलाकर चेतावनी दी और कहा कि इस प्रकार की कविताएँ न छापी जाया करें। इससे आपका उत्साह कुछ मंद हो गया, 'सिर मुड़ाते ओले पड़े', किंतु इससे आप घबराए नहीं। उन दिनों आप अपने पिताजी को 'ब्राह्मण-सर्वस्व' के संपादन मे सहायता दिया करते थे। अब आपने उसे और भी भले प्रकार देख-भालकर करना प्रारंभ कर दिया। सन् १६१८ के प्रारंभ मे जब आपके पिताजी ने संसार से वैराग्य लेना चाहा, तो अन्य कार्यों के भार के साथ-ही-साथ 'ब्राह्मण-सर्वस्व' के संपादन का भार भी आप ही को सौंप दिया। तब से आप 'ब्राह्मण-सर्वस्व' का संपादन सुचारु रूप में कर रहे हैं।

सन् १६२१ में आपने 'कर्तव्य'-नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। पत्र का प्रचार बड़ी तेजी से बढ़ा था और वह हिंदी के खास पत्रों में गिना जाने लगा था।

असहयोग-आंदोलन में भाग लेने के कारण आपको ६ मास की सादी सजा तथा ५००) रुपए जुर्माना हुए थे। जेल में भी आप स्वयं भोजन बनाते और आचार-विचार से रहते थे। जेल के साप्ताहिक कवि-सम्मेलन में भी सम्मिलित होकर आप भी अपनी कविताएँ सुनाया करते थे, जो कि उन दिनों 'अभ्युदय', 'कर्तव्य' आदि पत्रों में प्रकाशित भी होती थीं।

यद्यपि आप धार्मिक, राजनैतिक, जातीय आदि सभी प्रकार की सभाओं में पूर्णतया निर्भीकता तथा तत्परता से भाग लेते हैं, किंतु सनातनधर्म और शास्त्रों के आप अनन्य भक्त हैं।

अपने पिताजी के साथ आपने समस्त भारत का भ्रमण किया है। व्याख्यान देना, शास्त्रार्थ करना आदि आपने अपने पिताजी से ही सीखा था। समय-समय पर पंजाब, युक्त-प्रदेश, बिहार आदि की सनातनधर्म-सभाओं में आप निमंत्रित होकर भी कई बार जा चुके तथा जाते हैं।

आपने हिंदी तथा संस्कृत में अनेक कविताएँ लिखी हैं। इतना सब कुछ होने पर भी आपका स्वभाव कुछ आलसी-सा है और यही कारण है कि आपकी वे कविताएँ जो कि प्रकाशित नहीं हुई हैं, अप्राप्य ही सी हैं। आप स्वयं काम में कम प्रवृत्त होते हैं। जब आ पड़ती है, तभी प्रवृत्त होते हैं और यही कारण है कि जितनी साहित्य तथा धर्म-सेवा आपसे हो सकती है, उतनी आप नहीं करते हैं।

अब तक आपकी पाँच निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, कुछ अप्रकाशित भी हैं।

(१) मूर्ति-पूजा मंडन, (२) विधवोद्वाहनिषेध, (३) पतिव्रतादर्श, (४) असवर्ण-विवाह-निषेध, (५) विदेशी चीनी से हानि।

आपकी कविताओं के नमूने निम्न-लिखित हैं—

(अपने एक प्रिय के वियोग में लिखित)

* क. श्रावयिष्यति जनाञ्जनवृन्दमध्ये
पद्यानि तानि रुचिराणि मनोहराणि ;
को वा वदिष्यति कथाः खलु पुस्तकस्य
कर्णौ सुधाधरगिरा बत तर्पयेत्क. ।

† द्रष्टुं त्रिविष्टपमितो यदि प्रस्थितस्त्वं
भूयोऽपि स्वेन जनुषा सफलो कुरुष्व ;
उत्कण्ठितेन मनसा स्मरणं त्वदीयम्
स्वप्नेऽपि दर्शयति ते रुचिरं मुखं नः ।

× × ×

‡ तारुण्यमाश्रितवता न त्वया स्मृतं यद्
दीने जनेऽपि करुणा मनुजेन कार्या ;
स त्वं स्वय नियतिपाकवशादिदानीं
दैन्यं गमस्तदपराधफलं लभस्व ।

× × ×

---

* अब जन-समुदाय में मनुष्यों को उन रुचिर और मनोहर पद्यों को कौन सुनावेगा ? और पुस्तक की कथाएँ कौन कहेगा ? एवं सुधाधर (प्रकृतवक्ता, अमृतमयी) वाणी के द्वारा कर्णों को कौन संतर्पित करेगा ?

† यदि तुम यहाँ से त्रिविष्टप को देखने के लिये प्रस्थित हुए हो, तो अपने जन्म से सफल करना । उत्कंठित हृदय द्वारा स्मरण करने से स्वप्न में भी आपका रुचिर मुख दृष्टिगोचर होने लगता है !

‡ क्या युवावस्था के आश्रय से आपको यह स्मरण नहीं रहा कि मनुष्य का कर्तव्य है कि दीन पर करुणा किया करे । दुर्दैव के विपाक से आप इस समय इस दीनता को प्राप्त हुए हैं, अतः उस अपराध के फल को भोगिए !

* विधातुर्व्यापारादवनियति चूडामणिरहो
भवेत्कश्चिञ्जिः स्वः किमिह नियती नामविषयः ;
परन्त्वेतद्दुःखं हृदि खलु समुत्पादयति मे
यतो तल्लीलातःस भवति नृपोऽकिञ्चनजनः ।

× × ×

प्रह्लाद और ध्रुव सी ध्रुव भक्ति होवे
या ग्राह-पीड़ित गजेंद्र स्वदर्प१ खोवे ;
प्रत्यक्ष दर्शन तभी तुम दे सकोगे
क्या नाथ, यों अधम पै न दया करोगे ?

× × ×

लखकर जिसकी छटा२ चकित हो जाते हैं सब ;
प्रतिदिन जिसका सुंदरत्व बढ़ता है नव-नव३ ।
विविध भाँति के जलचर नभचर जहाँ सुहाए ;
जहँ लेने को जन्म देवगण भी तरसाए ।
सगुण ब्रह्म का रम्य सो पूर्ण क्रीड़ागार४ है ;
सकल विश्व के मध्य यह देश हमारा सार है ।

× × ×

सब प्रकार से हुआ पराभाव५ हाय हमारा ;
दीनबंधु है एक सहायक नाम तुम्हारा ।

---

* ब्रह्मा के व्यापार से यदि कोई अकिंचन राजचूड़ामणि हो जाय, तो क्या वह भाग्य-लीला का अविषय समझा जावेगा ? किंतु हृदय में दुःख यही बात उत्पन्न करता है कि उनकी लीला से नृप भी दरिद्र हो जाता है ।

१ स्वदर्प=स्वाभिमान, अहंभाव । २ छटा=शोभा । ३ नव-नव=नया नया । ४ क्रीड़ागार=कर्मस्थान, कार्य करने का स्थान । ५ पराभव=अवनति ।

यही एक अवलंब न वंचित इससे होंगे ;
कर दो अब उद्धार नाथ ! हम विलग न होंगे।
हे जगदीश्वर ! शीघ्र यहाँ पर आओ-आओ ;
वह गीता का वचन आज यों भूल न जाओ।
क्या यह होगा उचित प्रतिज्ञा का बिसराना ;
यों छोड़ोगे नाथ ! भला फिर कहाँ ठिकाना[१]।
सब प्रकार से दीन हुए असमर्थ हुए हैं ;
पर श्रद्धा है शेष न इससे हीन हुए हैं।
चरण-कमल में नम्रभाव से शिर धरते हैं ;
हमें करो स्वीकार यही बिनती करते हैं।

---

१ कहाँ ठिकाना = कैसे ठीक पड़ेगा, कहीं पता लगेगा।

श्रीपं० हरिहरजी द्विवेदी
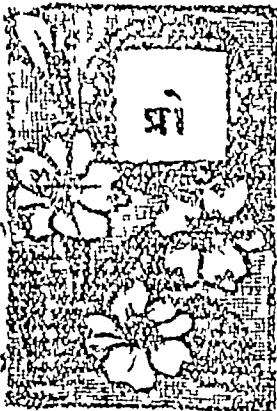
प्रोफेसर श्रीपं० हरिहरजी द्विवेदी शास्त्री, साहित्योपाध्याय, काव्यतीर्थ, अलीगढ़ का जन्म सं० १९४४ वि० की पौष कृष्ण तृतीया को अलीगढ़ में हुआ था। आप शांडिल्यगोत्रीय द्विवेदी हैं।

आपके प्रपितामह पं० बालानंद-जी द्विवेदी तपस्या की साक्षात् मूर्ति थे। ब्राह्मणोचित षट्कर्म और त्याग उनमें इतना अधिक था कि वर्तमान समय में भी आप सच्चे सनाढ्य-शब्द को चरितार्थ करते थे। आपका अधिकांश समय जप, पूजन, निःशुल्क अध्यापन और परोपकार ही में व्यतीत होता था। आपके चार पुत्र और एक पुत्री थी, जिनमें से आजकल सबसे छोटे पुत्र पं० कृष्णनारायणजी, जिनकी अवस्था ८५ वर्ष की है, अब भी विद्यमान हैं; सबसे बड़े पुत्र पं० रामनारायणजी अपने पैतृक गुणों से भूषित थे और मंत्र-शास्त्र तथा ज्योतिर्विद्या में अद्भुत शक्ति रखते थे। आपके तीन पुत्र तथा तीन पुत्री हुईं, जिनमें से आजकल कोई विद्यमान नहीं है; आपके सबसे छोटे पुत्र पं० रामगोपालजी द्विवेदी के आठ पुत्र तथा तीन कन्याएँ हुईं।

सुकवि-सरोज

साहित्याचार्य प्रो० हरिहरजी द्विवेदी शास्त्री
संस्कृत-प्रोफ़ेसर उस्मानियाँ यूनीवर्सिटी, हैदराबाद

गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

उन ग्यारह पुत्र-पुत्रियों में से आजकल केवल दो पुत्र विद्यमान हैं, जिनमें सबसे बड़े पुत्र पं० हरिहरजी शास्त्री और छोटे पुत्र प० मुकुंदहरिजी शास्त्री हैं।

पं० हरिहरजी शास्त्री बाल्यकाल ही से पढ़ने में तेज़ और होनहार थे। आप प्रायः अपनी कक्षा में सर्वप्रथम पद पर रहते थे और एक-एक वर्ष में तीन-तीन केंद्रों की विभिन्न-विभिन्न परीक्षाएँ आप दिया करते थे और सफलता-पूर्वक उनमें उत्तीर्ण होते थे। आपने १५ वर्ष की अवस्था में काशी की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १६०७ ई० में कलकत्ते की पाणिनीय व्याकरण मध्यमपरीक्षा आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सन् १६१६ ई० में साहित्याचार्य की पदवी आपको परीक्षा पास करने पर बनारस से मिली। सन् १६१४ ई० में काव्यतीर्थ की उपाधि आपको मिली।

प्रारंभ में आप कॉलिजिएट हाईस्कूल में संस्कृत-अध्यापक हो गए थे, किंतु आपके परीक्षा-फलों और परिश्रम को देखकर लोगों की दृष्टि आप पर पड़ी और सन् १६१५ ई० में आप एम्० ए० ओ० कॉलेज, अलीगढ़ के संस्कृत-प्रोफेसर नियुक्त हो गए। पश्चात् आपने पंजाब की शास्त्री परीक्षा को भी पास कर लिया।

उस्मानिया युनिवर्सिटी, हैदराबाद के स्थापित होने पर आपकी नियुक्ति संस्कृत-प्रोफ़ेसर के पद पर २५०) से ४००) मासिक वेतन पर हो गई। साथ-ही-साथ आप वहाँ के हिंदू-बोर्डिंग

हाउस के सुपरिंटेंडेंट भी हो गए थे और ५०) मासिक अलाउंस पाते थे।

द्विवेदीजी की धर्मपत्नियों का असमय शरीर-पात हो जाने के कारण आपको अपने चार विवाह करने पड़े और चतुर्थ विवाह सन् १९२१ ई० में हुआ था। प्रथम पत्नी से एक कन्या, द्वितीय से एक कन्या, तृतीय से एक पुत्र और चतुर्थ से एक कन्या और दो पुत्र इस प्रकार छ संताने हैं।

आजकल आपको ५२५) पाँच सौ पच्चीस रुपए मासिक वेतन मिलता है और आप पुत्रों तथा स्त्री-सहित हैदराबाद ही मे रहते हैं। प्रायः वर्ष मे एक बार अलीगढ़ भी आया करते हैं। आप आजकल अखिलभारतीय विद्वत्सम्मेलन, अलीगढ़ के सभापति भी हैं। आप विभिन्न परीक्षाओं के परीक्षक भी होते हैं, इससे ग्रंथ-रचना के लिये अधिक समय आपको नहीं मिलता है, फिर भी जो कुछ भी समय मिलता है, उसे आप साहित्य-सेवा ही मे व्यतीत करते हैं। आपके लेखादि 'सुप्रभातम्' आदि पत्रों में निकलते रहते हैं।

अपने अध्यवसाय से मनुष्य अपनी कितनी उन्नति कर सकता है, इसे आपने प्रत्यक्ष दिखला दिया है। आपका व्यवहार बड़ा ही सरल, प्रेम-पूर्ण और सहृदयता से ओत-प्रोत होता है।

आपने अधिकांश कविताएँ संस्कृत-भाषा ही मे लिखी हैं। आपने सन् १९२९ ई० में हिंदी-उर्दू-माला-नामक एक माला

का विरचन करना भी आरंभ किया है। उसका प्रथम और द्वितीय पुष्प प्रकाशित भी हो चुके हैं, जिनकी सबने प्रशंसा की है। उनके मूल्य क्रम से पाँच और सात आने हैं।

आप 'श्रीशारदशतक'-नामक एक काव्य-ग्रंथ भी लिख रहे हैं। समय-समय पर और भी कुछ ट्रैक्ट आपने लिखे हैं। आपकी रचनाएँ प्रौढ़ और भाव-पूर्ण तथा सरस होती हैं।

उदाहरण—

नवकुसुम-स्तवक से

[यह २० पृष्ठ की पुस्तक सं० १९८३ वि० में हिज़ ऐगज़ाल्टैड हाइनेस आला हज़रत सुल्तान-उल्-उलूम नवाब हैदराबाद के लिये लिखी गई थी।]

*राज्ये यस्य प्रवृद्धे सततनययुते दुष्टदर्पप्रणाशे
लोका नित्यानुरक्ताः प्रभुवरपदयोर्मोदमाना वसन्ति ;
चित्रञ्चातिव्ययोऽमितवसुविसरैर्विश्वविद्यालयन्द्राक्
श्रीमान् राजाधिराजस्सजयतु सततम्वीर उस्मानखाँ ।
†पूर्णा नानागमाप्यैर्यमनियमतटातस्त्ववाहिन्यगाधा
प्रेमोर्मिः स्नातगात्रो गमयति सुधियो गौरवञ्चातितुल्यम् ;

---

* जिसके सदा सुनीतिशाली, दुष्टमदमर्दक, वृद्धिशील राज्य में जनता नित्य जगदीश्वर के चरण-कमलों में अनुरक्त होती हुई सानंद रहती थी, तथापि जिसने अमित धन-व्यय करके एक विशाल 'विश्व-विद्यालय' खोला, वह वीर श्रीमान् राजाधिराज उस्मानअलीख़ाँ बहादुर निरंतर जीवे।

† जिस विश्वविद्यालय में विविध शास्त्ररूपी जलों से पूर्ण, प्रेमरूपी

इत्थं संलारवार्धेर्निजनिजकृतिभिस्तारयंश्छात्रवर्गम्
य: शास्त्युर्वीं सनूनजयतु बहुसमा वीर उस्मानलीखाँ ।

× × ×

* उद्धर्तुं निगमसुधां पिपासतोऽस्मा-
नस्याचीदतिवसु योऽभ्युदीतिशाली
स्वान्तस्थैस्ससुरगणैस्समेधितोऽम्ब !
हासीष्ट प्रदवदुदारतां सदार:

श्रीशारदशतक से

† आत्मज्ञानी मतो य: कविकुलकमलाहस्करस्तत्त्वविद्भि:
लोकस्य ज्ञानभासा क्षपयति तिमिरं मोहजं सत्त्वसंस्थ: ;

लहरों को धारण करनेवाली, यम और नियमरूपी दो तटोंवाली, अगाध, तत्त्वों रूपी नदी में अवगाहन (स्नान) करने-मात्र से विद्वज्जन छात्रों के प्रति प्रशंसनीय गौरव को प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार अपनी कृतियों से छात्रवर्ग को संसार-समुद्र से पार करता हुआ भी जो पृथिवी को पालन करता है, वह वीर उस्मानलीख़ाँ बहुत वर्षों तक जीवे।

* जिस उत्कर्षशाली, धनवान् ने वेदरूपी अमृत के उद्धार के अर्थ धन-हीन हम लोगों को अधिकाधिक धन दिया और सुरगण-सहित अंबरवासियों द्वारा जो सत्कृत किया गया, और जो धर्मपत्नी-सहित दान करता हुआ, वदान्यता को प्राप्त हुआ, वह वीर उस्मानलीख़ाँ चिरजीवी हो।

† जो आत्मज्ञानी, काव्य-शास्त्र के तत्त्वज्ञ कवियों द्वारा कवियों के कुलरूपी कमलों के विकासार्थ सूर्य के समान वर्णित, ज्ञान के बल से जन-समुदाय के अज्ञानांधकार को हरनेवाला, सत्त्वगुणविशिष्ट, दान के विषय में कर्ण के समान, सरस कवित्व के विषय में साक्षात्

दाने कर्णः कवित्वे विविधरसमये कालिदासस्तु साक्षात्
राजर्षिर्मन्त्रिमुख्यो जयतु स हि महाराजकृष्णप्रसादः ।
*सुधालेपो यत्र प्रतिसदनमक्ष्णोर्विषयताम्
समायाति श्रीमन् ! विततमिव ते निर्मलयशः ;
सदा यस्यां लोका सविधि च नमस्यन्ति कमलाम्
शुभा दीपाली सा दिशतु विजयन्ते सुकवये ।
† कदाचिदकृतार्थतां यमवलोक्य कल्पद्रुमम्
न याचकततिर्गताऽपि तु निजं विवेदेप्सितम् ;
कवित्वमपि वर्द्धतेऽनुदिनमाश्रयाद्यस्य स.
चिरायुरनघो भुवम्भवतु शादनामा कविः ।

हिंदी-भाषा में भी आपने कविताएँ की हैं, उनके भी कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

जव्वलपुरा के विज्ञ चतुर्वेदी ज्योतिषी जू,
काव्य-सुधानिधि नाम पत्रिका चलाई है ;

कालिदास के समान, राजर्षि, मंत्रिश्रेष्ठ और महाराज कृष्ण का कृपा-पात्र है, वह शाद कवि सर्वोत्कृष्ट होता हुआ चिरकाल जीवे ।

* भो श्रीमन्, सुकवे ! जिस समय प्रत्येक भवनों में पुती हुई कलई आपके विस्तृत एवं निर्मल यश की भाँति शोभती है और जन-समुदाय विधि-पूर्वक लक्ष्मी-पूजन करते हैं, वह मंगलदायिनी दीपावली आप सुकवि को विजय-लक्ष्मी प्रदान करे ।

† कल्पवृक्ष-स्वरूप जिस सुकवि को देखकर याचकों का समुदाय भी कभी निराशता को नहीं प्राप्त होता हुआ मनोरथों की पूर्णता से सदा आनंदित ही हुआ है और जिसका सदा आश्रय लेने से आश्रितों के कवित्व की वृद्धि होती है, वह विद्वच्छिरोमणि शाद-नामक कवि चिरजीवी हो ।

वायु[1] रस[6] खेट[1] *भूमि[7] संवत् सुकातिक में,
दीपमालिका जगाय सुंदर पठाई है।
आजु शुभ वासर में ताहि अवलोकि फूल्यो,
जैसे रवि-रश्मि पाय पद्म खिल जाई है;
बार-बार धन्यवाद देत कवि 'हरिहर'—
शुद्धता प्रचार केरि आनँद बधाई है।

× × ×

भारतवासिन की कविता—
लघुता लखि ज्योतिष युक्ति बताई;
काव्य-सुधानिधि की अति उत्तम—
रीति सदा कवि चित्त जमाई।
खंडित मान कियो कुकवी,
सुकवी मन मोदत रंग बढ़ाई;
सज्जन या पर प्रेम करैं त—
बखानत है निज देश भलाई।

× × ×

जब से परदेस गए सखि पीतम—
देह कठोर सुताप चढ़ै;
ऋतु ग्रीषम वात प्रचंड चलै,
अरु घाम लगै जिमि बाण गढ़ै।
किनसों बरनूँ अपनी बतियाँ,
पतियाँ उनकी अब कौन पढ़ै;
कोउ ऐसो उपाय करौ सजनी,
जिहिते हमरे मन मोद बढ़ै।

---

* खेट=सूर्य।

सुकवि-सरोज

साहित्यरत्न श्रीपं० गोकुलचंद्रजी शर्मा एम्० ए०
अलीगढ़

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीपं० गोकुलचंद्रजी शर्मा

श्री

पं० गोकुलचद्रजी शर्मा एम्० ए०, साहित्यरत्न, अलीगढ़ का जन्म सं० १६४५ वि० में अलीगढ़-प्रांत के हरीनगरा-ग्राम में हुआ था। आपका तिगुणायत आस्पद तथा भारद्वाज गोत्र है।

आपके पूर्वज हाथरस के राजा दयाराम की सेना में सैनिक थे। सं० १६१४ वि० के राज-विप्लव के पश्चात् वे हरीनगरा-ग्राम मे आ बसे, तब से उन्हीं की ज़मीदारी में यह ग्राम चला आ रहा है। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० भूपालदेव शर्मा और माता का श्रीरामेश्वरीदेवी था। पिताजी आपके आजकल संन्यास जीवन व्यतीत कर रहे हैं और माता का वैकुंठवास लगभग ७ वर्ष हुए, तब हो गया था।

आप दो भाई हैं। आपके अनुज पं० कृष्णचंद्र तिगुणायत एम्० एस्-सी० काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर हैं, जिनकी संतान में इस समय एक पुत्र और चार कन्याएँ हैं। सुपुत्र शिवचंद्र शर्मा होनहार बालक है।

सैनिक जीवन की प्रधानता के कारण आपके वंश में शिक्षा का अभाव था, विद्या की ओर किसी की अभिरुचि न थी; किंतु

आपके पिताजी को साधुओं के सत्संग का आरंभ ही से व्यसन था। और आपकी माता पं० सुधाधरदेवजी शास्त्री की, जो अपने समय के धुरंधर पंडित थे, पुत्री थीं। सात वर्ष की अवस्था मे एक दिन आप अपने चाचाजी के साथ अपने आप पास की ग्रामीण पाठशाला में चले गए और तभी से पढ़ना आरंभ हुआ। आपके पिताजी ने आपको वर्नाक्यूलर मिडिल पास कराया। आप अपनी कक्षा में आरंभ ही से प्रथम रहते थे और परीक्षा मे भी प्रथम श्रेणी ही में उत्तीर्ण हुए। आपकी इच्छा अँगरेजी पढ़ने की थी, किंतु आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह पूरी न हो सकी।

तत्कालीन प्रथा के अनुसार ११ वर्ष ही की अवस्था में आपका पाणि-ग्रहण-संस्कार भी हो गया था।

आपके शिक्षक ने आपके पिताजी को आपसे अध्यापकी कराने की सम्मति दी, किंतु आप अध्यापक बनना नहीं चाहते थे। अस्तु, विरोध-स्वरूप आप घर से निकल भागे और बचपन से ही सन्यासी होने की रुचि प्रकट की, किंतु आप सहारनपुर से पकड़ बुलाए गए और अध्यापकी के कार्य को आपको स्वीकार करना ही पड़ा।

सन् १९०८ ई० में जब आप नार्मल स्कूल, आगरा में पढ़ते थे, तब वहाँ पर महात्मा गोखले, लाला लाजपतराय आदि नेताओं के भाषणों ने आपमें महत्त्वाकांक्षा उग्र रूप में जाग्रत् कर दी और आप अमेरिका आदि विदेश जाने के सुख-स्वप्न देखने

लगे। यदि विवाह-बंधन न होता, तो संभव है, यह कुली बनकर भी विदेश-यात्रा करते, परंतु मन की मन ही में रह गई और अँगरेजी पढ़ने का दृढ़ संकल्प ही उस समय हाथ रहा। इसी समय आपकी अभिरुचि काव्य-रचना की ओर भी हुई और आप पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' से मिले, किंतु काव्य-जगत् की ओर तब आप अधिक आकृष्ट नहीं हुए।

नार्मल स्कूल की परीक्षा में आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और सब विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त की। वहाँ से आकर कुछ काल पीछे स्व० डॉक्टर मनोहरलाल और पं० विश्वनाथ हरिहर शास्त्री द्रविड़ एम्० ए० की दृष्टि आप पर पड़ी और आपने शर्माजी को धर्म-समाज-कॉलेज में जो उस समय हाईस्कूल था, बुला लिया। इसी वर्ष आपने मैट्रिक परीक्षा द्वितीय श्रेणी में प्राइवेट रूप से पास की और इसी वर्ष ग्रीष्मावकाश में आपने अपनी सबसे पहली रचना 'प्रणवीर प्रताप' का प्रणयन भी किया। छोटी, किंतु वीर-रस से फड़कती हुई इस कविता ने आपको चमका दिया और आपमें कविता के दैवी अंकुर प्ररोहित हो उठे।

इसके पश्चात् अवसर पाकर आपने इंटर, बी० ए० परीक्षाएँ भी पास कीं और साथ ही 'गांधी-गौरव', 'जयद्रथ-वध-नाटक', 'तपस्वी तिलक', 'पद्य-प्रदीप' आदि काव्य और नाटक-ग्रंथों की रचना भी कर डाली।

आगरा-युनिवर्सिटी में एम्० ए० की परीक्षा हिंदी में होने

पर आपने सर्वोत्तम पद में उसे उत्तीर्ण किया। इस प्रकार आप दिन-दूने उत्साह से अग्रसर हो रहे थे कि सं० १९८३ वि० (सन् १९२६ ई०) मे एक भारी दुर्घटना हो गई। आपकी माताजी, धर्मपत्नी, एक पुत्र और एक पुत्री का देहांत एक सप्ताह के भीतर रोग द्वारा हो गया और इस प्रकार आपके बढ़ते हुए उत्साह को इस असह्य घटना ने रोक-सा दिया। हृदय की कली को अनायास कुचल दिया और आपके शारीरिक तथा साहित्यिक जीवन को इस घटना ने अस्त-व्यस्त कर दिया, फिर भी बुद्धि-बल ने आपका साथ नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे आप उस असह्य घटना को विस्मरण कर कार्य-क्षेत्र में फिर अग्रसर हो उठे हैं। 'निबंधादर्श' और 'मानसी'-नामक रचनाएँ आपकी अभी प्रकाशित हुई हैं।

शर्माजी हिंदी के संलग्न प्रेमी हैं। आपका कार्य-क्षेत्र अलीगढ़ रहा है, जो कि मुस्लिम सभ्यता का बहुत बड़ा केंद्र है, वहीं आपने धर्म-समाज-कॉलेज में हिंदी के प्रोफ़ेसर होने के कारण उस ओर हिंदी के अनुरागियों और लेखकों की काफ़ी वृद्धि की है। आपकी रचनाओं की साहित्य-संसार ने अच्छी प्रशंसा की है।

अपने जटिल जीवन-संग्राम के विश्राम-काल में साहित्य की सेवा करते रहना आपकी असाधारण परिश्रमशीलता और सत्यानुराग का द्योतक है। अनवरत अध्यवसाय और विद्या-व्यसन के कारण ही आपने अपना जीवन-पथ किस प्रकार विस्तृत कर लिया है, यह अनुकरणीय है।

आपके दृढ़ चरित्र, सरल स्वभाव, मृदुभाषिता, सहृदयता आदि गुणों ने आपको सर्व-प्रिय बना दिया है। आपको साहित्यरत्न की उपाधि है, तथा अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन, अलीगढ़ के निर्वाचित विशिष्ट परीक्षकमंडल के भी आप सदस्य हैं।

आपकी रचनाएँ ओजस्विनी, मधुर, व्याकरण-संयत और सरल होती हैं।

उदाहरण—

प्रणवीर प्रताप से

इस तत्त्व पर आजन्म दृढ़ रह प्राण बलि जिसने दिए;
हैं आज हम उद्यत उसी के चरित-चित्रण[१] के लिये।
मैं राज्य-सुख भोगा करूँ चित्तौर-गौरव नष्ट हो;
मुख मोड़ दूँ कर्तव्य से क्या देश-सेवा भ्रष्ट हो।

× × ×

हा! 'मान'[२] ने भी मान-महिमा[३]-मान[४] को जाना नहीं;
बन सिंह-सुत ने स्यार अपना रूप पहचाना नहीं।
शूरत्व, बल, साहस, पराक्रम और रण-चातुर्य भी—
उस क्षुद्र[५] के गुण थे हुए स्वाधीनता-बाधक सभी।
जब 'मान' मान-समेत[६] शोलापुर विजय करके चला;
सोचा कि है इस काल राणा-भेंट[७] का अवसर भला।

---

१ चरित-चित्रण = चरित लिखने के लिये। २ 'मान' = राजा मान-सिंह। ३ मान-महिमा = प्रतिष्ठा की महिमा, महत्त्व। ४ मान = मूल्य। ५ क्षुद्र = ओछे, नीच, छोटे। ६ मान-समेत = घमंड से, गर्व-सहित। ७ राणा-भेंट = राणा प्रताप से मिलने का।

स्वागत उदय-सर-तट-शिलाओं पर 'अमर'१ ने जा किया ;
दे वास, भोजन-हित बुलाया पूर्ण कर पाक-क्रिया२ ।
देखा न राणा को वहाँ संदेह से बोला बता ;
आए नहीं हैं क्यों यहाँ हे प्रिय कुँवर ! तेरे पिता ।
'शिर-शूल३ के कारण' अमर ने नम्र हो उत्तर दिया ;
इस बात ने बस 'मान' के संदेह को द्विगुणित४ किया।
मैं मूल५ कारण जानता हूँ 'अमर' जो तूने कहा ;
पर भूल-शोधन का नहीं अब कुछ उपाय कहीं रहा ।
फिर संग-भोजन में घृणा राणा करें यह व्यर्थ है ;
गत भूल६ का फिर ध्यान उपजाता अनेक अनर्थ है ।
थी 'मान'-शंका जब किसी विध भी न दूरीकृत७ हुई ;
कहला दिया है तुर्कहा८ से भगिनि९ संबंधित हुई ।
संशय नहीं, तब अशन भी तूने किया होगा वहाँ ;
फिर वीर बाप्पा१० वंशधर११ के संग भोजन हो कहाँ ।

× × ×

अब पर्णशाला१२ की जगह प्रासाद१३ ही होंगे खड़े ;
सब शैल १४-शय्या छोड़कर होंगे पलंगों पर पड़े ।

---

१ अमर = अमरसिंह (राणा प्रताप के पुत्र) । २ पाक-क्रिया = भोजन बन जाने पर । ३ शिर-शूल = माथे की पीड़ा । ४ द्विगुणित = दूना । ५ मूल = जड़, मुख्य । ६ गत भूल = पहले की हुई भूल । ७ दूरीकृत = दूर । ८ तुर्कहा = तुर्कों के वंशधर । ९ भगिनि = बहिन । १० वीर बाप्पा = वीरशिरोमणि बाप्पा, जो प्रतापसिंह राणा के पूर्वज थे । ११ वंशधर = कुटुंबी, वंश में उत्पन्न हुए । १२ पर्णशाला = पत्तों की कुटी । १३ प्रासाद = राजभवन । १४ शैल = पर्वत ।

स्वाधीनता के गात[1] में हा ! लात मारी जायगी ;
    निर्मूल सुख की घात में बस बात भारी[2] जायगी ।
इस दुःख दुर्वह[3] से दबे उठते न मेरे प्राण हैं ;
    प्रत्यंग जर्जर[4] हो रहा अनिवार्य चिंता-बाण हैं ।
स्वातंत्र्य-रक्षा का मुझे दें आप आश्वासन यदा—
    सानंद प्राण-त्याग मैं निश्चिन्त हो कर दूँ तदा ।
ये शब्द कह अति खेद से उनकी गिरा[5] बस रुक गई ;
    देखो दुराशा-वायु-वश वर विजय-वल्ली[6] झुक गई !
बोले वचन तब कृष्णसिंह प्रभो ! न होगा यह कभी ;
    हम 'अमर' को सुख-भोग-वश होने नहीं देंगे कभी ।

× × ×

वह जगमगाती ज्योति जननी-भूमि-भक्ति-प्रभामयी ;
    देदीप्यमान[7] मरीचिमालिन[8] मूर्ति सम देखी गई ।
पर देखते-ही-देखते सहसा विलुप्त हुई वहाँ ;
    बस लेखनी भी शोक से संतप्त लुप्त हुई यहाँ ।

जयद्रथ-वध से

प्रारंभ ही में सूत्रधार द्वारा आप किस उत्तमता से प्राचीन और विद्वान् कवियों को सूर्य और अपने को दोष-युक्त चंद्र, नवीन कवि आदि की उपमा सुनवाते हैं । देखिए—

कवि-रचना को जान अपरिमित सभी आर्य विद्वान—

---

१ गात = शरीर । २ भारी = बड़ी । ३ दुर्वह = कठिनता से सह्य जानेवाला । ४ जर्जर = चूर, छिन्न-भिन्न । ५ गिरा = वाणी । ६ वल्ली = बेल । ७ देदीप्यमान = प्रकाशमान । ८ मरीचिमालिन = सूर्य ।

प्रोत्साहन - हित नव कवियों की कृति को देते मान ।

× × ×

सत्कवि-सूर्य अस्त होने पर—
हो जाता जब निशा-निवास ;
दोषाकर कवि-'चंद्र'-उदय तब
करता है नवकला-विकास ।

नट से आप शरद् का कैसा सुंदर गान सुनवाते हैं । देखिए—

सरद की सोभा अति सरसात ।
निरमल नीर - सरोवर - वन में खिले कमल नव-जात[1] ।
सेत काँस फूले धरनी पर,
सघन छीर - सागर - सम सुंदर ;
नीले नभ में दिपत दिवाकर,
कहूँ न कीच लखात ।
मारग मंजु मनोहर सोहत,
निसि-नभ-छटा छिटकि मन मोहत ;
चारु चकोर चंद - मुख जोहत[2],
चहत न कबहुँ प्रभात ।
तापस त्याग चले पावस - थल,
विश्व-विजय-हित सजत नृपति दल ;
सुभट सकल संगर[3] - सज्जित-बल,
भूरि रहे निज गात[4] ।

---

१ नवजात = नए उत्पन्न हुए । २ जोहत = देखता है । ३ संगर = समर, युद्ध । ४ गात = शरीर ।

सूत्रधार भगवान् भीष्म के लिये कितने मार्मिक शब्दों में कहता है—

धर्म पर अर्पण करके प्राण।
ब्रह्मलीन हो किया जगत में अर्थ काम का त्राण।
नियमवान रह बाल्यकाल से किया पूर्ण कर्त्तव्य;
मुदितमना[1] हैं, यद्यपि छिदे हैं अंग-अंग में बाण।
मोक्ष-रसिक अब कुरु-गुरु रण में दिखलाकर पुरुषार्थ;
पड़े हुए हैं शर-शय्या पर वही भीष्म भगवान।

× × ×

क्षात्र-धर्म के तत्त्व को भी सुनिए—

साधु जनों में धर्म बढ़ाना,
दुखियों की रक्षा कर नित्य;
प्रजावर्ग का पालन करना,
दुष्ट दमन हो रुचिकर[2] कृत्य[3]।
शरणागत पर प्रेम दिखाना,
वाणी और कर्म हों एक;
मर जावे पर हटे न रण से,
सदा यही क्षत्री की टेक।

× × ×

अब कृष्णार्जुन-संवाद को भी सुन लीजिए—

कृष्ण—

धनंजय!

प्रथम पराजित हुए पुनः रण करने आए,
दुर्योधन की विजय-हेतु श्रम अमित उठाए;

---

१ मुदितमना = प्रसन्न चित्त। २ रुचिकर = प्रिय, अच्छा मालूम होनेवाला। ३ कृत्य = काम।

अमर लोक की इच्छा से मिल संशप्तकगण१,
मुक्त२ हुए तब युद्ध-यज्ञ में कर प्राणार्पण३।

आज का-सा तुम्हारा हस्त-लाघव और अमोघशरत्व कभी नहीं देखा गया। अहा!—

खींच कान तक धनुष शत्रु ने—
शर-वर्षण का किया विचार;
पर छूटे तब, जब तव शर ने—
जा उनका शिर लिया उतार।

अर्जुन—

भगवन्! यह प्रशंसा भी आप ही की है, क्योंकि—

शत्रु-सैन्य के छिद्र देख तुमने क्षण-क्षण में—
हे सुदक्ष! था वहीं बढ़ी हाँका रथ रण में;
जिससे होते शत्रु-शरों के व्यर्थ छेद थे,
वक्र४ बाण भी मेरे करते लक्ष्य-भेद५ थे।

कृष्ण—

सखे! विनय से और भी अधिक शोभा पाते हो। मैं तुमसे यथार्थ कहता हूँ कि मैंने जब अस्ताचलगामी भगवान् भास्कर को देखा, तो वह भी तुम्हारा ही अनुकरण कर रहे थे। उस समय तो—

---

१ संशप्तकगण = योधा, शूर। २ मुक्त = जीवन्मुक्त हुए, मोक्ष पा गए। ३ प्राणार्पण = प्राणों को देकर। ४ वक्र = टेढ़ा, टेढ़े-मेढ़े। ५ लक्ष्य-भेद = ठीक स्थान ही पर पड़ते थे।

श्रीपं० गोकुलचंद्रजी शर्मा

नीहार[1] के कण-पुंज जो मातंग[2] मोती से भले,
अपनी किरण-नख-नोक से विविध स्थलों पर थे दले[3];
अस्तस्थ शोभी अरुण सायंराग केश-कलाप-सा,
था सूर्यसिंह प्रत्यक्ष अति रमणीय पार्थ-प्रताप-सा।

अर्जुन—

वयस्य! सूर्यास्तकाल में मेरा भाव तो कुछ और ही हो गया था—

दिशाओं में ज्यों ही तुहिनमय[4] लाली छा गई,
तुषार-ध्वंसी वे, दिवस-मणि[5] अस्तंगत हुए;
तभी माना मैंने, निहत-रिपु-रक्त-प्रचुर से,
सजा के आशाएँ, सुभटवर कोई चल बसा।

'मानसी' से

(मुसकान)

मुझे मिल जा मिल जा मुसकान,
मौन मानस की मीठी तान।
न पाया तुझको उपवन में,
न नभ में नीर-भरे घन में;
न जल में जलजों[6] के वन में,
न सुंदर शृंग[7]-निकेतन[8] में।

---

1 नीहार = पाला, ओस, कुहर, शिशिर। 2 मातंग = हाथी। 3 दले = नाश किए। 4 तुहिन = पाला, ओस, कुहर। 5 दिवस-मणि = सूर्य। 6 जलजों = कमलों। 7 शृंग = शिखर, पहाड़ की चोटी, प्रमुख। 8 निकेतन = घरों में।

हुआ मैं ढूँढ़ - ढूँढ़ हैरान,
मुझे मिल जा मिल जा मुसकान।
न है तू कंचन - मंचों में,
न चापी[1] की प्रत्यंचों में;
न प्रभुता - पूरित पंचों में,
न लौकिक लोल प्रपंचों में।
अचंभित है मन में अनुमान,
मुझे मिल जा मिल जा मुसकान।
न देखी रूप - दुपहरी में,
न मुद्रा की छवि छहरी में;
न वीणा की स्वर - लहरी में,
न ममता की गति गहरी में।
थकित है इंद्रियगण का ज्ञान,
मुझे मिल जा मिल जा मुसकान।
न झलकी ज्ञानी के घट में,
न प्रकटी दानी के पट में;
न लटकी योगी की लट में,
न भटकी भोगी की रट में।
करूँ किस विध तेरा आह्वान,
मुझे मिल जा मिल जा मुसकान।
बँधी है तू किस कोने में?
दीन - दुखियों के रोने में;
द्रवित हो, सर्वस खोने में—
कर्म-पथ पर बलि होने में।

---

१ चापी = धनुष।

मुझे भी दे वह बंदि - स्थान,
अहो ! मिल जा मिल जा मुसकान ।

(दशहरा)

ऋक्ष, वानरों का संघ सुदृढ़ बना के जहाँ,
रावण की राजधानी लूट जय-श्रीहरी ;
संगर१ में लगर लगाए वीर कूद पड़े,
यातुधान२-वाहिनी की वीरता वशी करी ।
बाण विकराल चाप चंड३ का प्रताप यहाँ,
कहाँ है अभयता की तारणा भयंकरी ?
संगठन-साधन अदम्य अवशेष कहाँ,
भावना कहाँ है दुष्ट लोक की लयकरी ?
आया था विभीषण तुम्हारे पास लेके भेद,
देश के विभीषण बने हैं आज हम ही ;
गौरव गिरा४ है मान मस्तक झुकाए खड़ा,
खो दी नर-जीवन की लाज एक दम ही ।
माता के सपूत छूत-लोक के बने हैं भूत,
बंधुता के दूत भूल बैठे हैं नियम ही ;
गुह५ के पुनीत मीत राम ! बतलाओ इस—
तम का विनाश क्या करेगा अब यम ही ?

× × ×

नाक काट ली थी दिखलाते ही नयन लाल,
सहन किया था ललनाओं पै प्रहार कब ?

---

१ संगर = युद्ध । २ यातुधान = निशाचर, राक्षस । ३ चंड = तीखा, तेज़ । ४ गिरा = वचन, वाणी । ५ गुह = निषाद, शृंगवेरपुर का राजा और श्रीरामचंद्रजी का मित्र ।

रक्त से रँगी है भूमि भूरि बाला बालकों के,
होता आततायियों[1] का अभय विहार अब !
चोट की थी ओट मे वधा था बालि वली, किंतु
मित्र की सहाय-हेतु पाले उपचार सब ;
पालने को छोड़ते ही पालना प्रणों का कहाँ,
विमुख दिशाओं में बहे हैं सुविचार जब ?

(हरि की अँखियाँ)

गतियाँ गुन पूरे गुपालजू की,
मतियाँ न के हेतु विदेह करी ;
छतियाँन उछाहर[2] सों ऊँची करें,
बतियाँ बसि बाँसुरि-गेह खरी ।
सरसावति स्वागत-सावन की,
मुसकाहट के मिस मेह झरी ;
बतरावति बैन बिनाई[3] कहे,
हरि की अँखियाँ ये नेह भरी ।

(मनःकामना)

नहीं चाहिए भूरि भोग से भरा भवन हो मेरा ;
नहीं चाहिए कहते ही दें दास-दासियाँ फेरा ।
नहीं चाहिए स्वर्ग-धाम में लूँ मैं कभी बसेरा ;
नहीं चाहिए सुविधाओं का रहे सतत ही घेरा ।

---

१ आततायियों = दुष्टों । २ उछाह = आनंद । ३ बिनाई = बिना ही ।

केवल करुणानिधि चरणों का ध्यान रहे इस जन को;
दुखियों के दुख हरने के हित धरकर तन का, मन को।

राम से—

गाए ज्यों गुणानुवाद वालमीकिजी ने नाथ!
पाया हमने न उसका तो कहीं जोड़ है;
भक्ति की विमलता में, भाव की सरसता में,
कहो कौन संग दिया तुलसी ने छोड़ है?
कालिदास, केशव कुशल कवियों की भाँति,
किस कवि मंडल में मची मंजु होड़ है?
कौन-सी अवध अवधेश! आज भाई तुम्हें,
पाई कहाँ भारत-सी भव्य भूमि-क्रोड़[1] है?
देखते न नाथ! इस ओर दृग खोल कभी,
कितने निषाद नग्न और सविषाद हैं,
शबरी-समान कबरी ये कुल-ललनाएँ,
कबसे लगाए लौ खड़ी हो एक पाद हैं[2]।
अंगद से आज हैं अनाथ ये अनेक बाल,
बालि के समान बधु बंधु में विषाद हैं;
तो भी अवतरने में देर दीनानाथ! क्या न,
पड़ते सुनाई तुम्हें तीव्र आर्तनाद हैं।

(दर्शन)

पश्चात्ताप-तुला में जब निज कृत कर्मों को तोला;
लाज लगी, उर हुआ विकंपित, गिरा गाल का गोला।

---

१ क्रोड़ = गोद। २ एक पाद हैं = एक पैर से खड़े हैं।

फूले गौरव - गुब्बारे का अंतर[1] पाया पोला[2] ;
मैं रो उठी, "भटक भूला हा किस विध मनुआ[3] भोला !"
नयन - नीर - सरिता - संगम पर सहसा एक कुटी - सी ;
झलक पड़ी गुरु के चरणों पर, मैं गिर पड़ी लुटी-सी ।

---

१ अंतर = भीतर । २ पोला = ख़ाली । ३ मनुआ = मन ।

सुकविसरोज

श्री० पं० रामगोपालजी मिश्र
बी० एस्०-सी०, एम्० आर० ए० एस्०, एफ़्० टी० एस्०
डिपुटी कलेक्टर, जौनपुर

श्रीपं० रामगोपालजी मिश्र

पं० रामगोपालजी मिश्र बी० एस्०-सी०, एम्० आर० ए० एस्०, डिपुटी-कलेक्टर, जौनपुर का जन्म पौष कृष्णाष्टमी सं० १६४५ वि० में बुधवार के दिन हुआ था। आप सरए के मिश्र हैं। आपके पूर्वज बदायूँ के निवासी थे, किंतु कुछ समय से अब बलरामपुर ही आपका निवास-स्थान हो गया है।

आपके पूज्य पिताजी श्रीपं० कन्हैयालालजी मिश्र बी० ए० * महाराजा बहादुर सर भगवतीप्रसादसिंहजी बलरामपुराधीश के, उनके जीवन-पर्यंत, प्रधान मंत्री रहे और राज के कार्यों में अब भी विशेष अवसरों पर सहायता देते रहते हैं। जातीय कार्यों में भी आप सदैव तत्परता से योग देते रहते हैं; सनाढ्य-महामंडल, आगरा के आप सभापति भी रह चुके हैं।

श्रीपं० रामगोपालजी जन्म-काल ही से 'होनहार बिर-

---

* आपका विस्तृत जीवन-चरित्र लेखक के 'हमारे महापुरुष-' नामक ग्रंथ में संगृहीत किया जा रहा है। विशेष जाननेवालों को उसे देखना चाहिए।—संपादक

बान के होत चोकने पात'-वाली उक्ति को चरितार्थ करने लगे थे। लायल कालिजिएट स्कूल, बलरामपुर से इंट्रेंस पास करने पर उक्त स्कूल के हेडमास्टर ने लिखा था कि "ऐसे उन्नतिशील और विलक्षण बुद्धिवाले छात्र विरले ही देखने मे आते हैं।" स्कूल की एक दो नहीं, वरन् समस्त संस्थाओं के आप मंत्री थे।

बलरामपुर से आपने सेंट्रल हिंदू-कॉलेज, बनारस में प्रवेश किया और वहाँ टेनिस एसोसिएशन तथा ड्रामैटिक एसोसिएशन की स्थापना की। अब भी ये दोनो संस्थाएँ काशी-विश्वविद्यालय मे बहुत अच्छी अवस्था में विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त आप वहाँ लगभग एक दर्जन अन्य संस्थाओं और सोसाइटियों के मंत्री तथा कॉलेज कैडटकोर के लेफ्टिनेंट थे। यह वह समय था, जब कि सेंट्रल हिंदू-कॉलेज, बनारस अपनी उन्नति की सीमा के शिखर पर था और भारतवर्ष-भर में उसकी ख्याति फैल चुकी थी।

बी० एस्-सी० की परीक्षा के बीच में मिश्रजी बीमार हो गए और सब परचों में न बैठ सके। इससे ६ मास के लिये आप कैनिंग कॉलेज, लखनऊ चले आए और वहाँ से बी० एस्-सी० की डिगरी ली। आपके सेंट्रल हिंदू-कॉलेज छोड़ते समय वहाँ के प्रिंसिपल मिस्टर जी० एस्० अरंडेल ने लिखा था कि "आपके कॉलेज छोड़ने से कॉलेज की बहुत बड़ी हानि हुई है।" कैनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल मिस्टर बी०

कैमेरन ने (जो पीछे लखनऊ-युनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर हुए) इन्हीं ६ मास के भीतर एक रिपोर्ट में लिखा था कि "पं० रामगोपाल ने जो काम कर दिखलाया है, उसमें हाथ डालने तक की हिम्मत दूसरे लड़के न करेंगे।" इत्यादि। बात यह थी कि उन दिनों कॉलेज के साइंस के सब लड़कों ने कॉलेज का बायकाट कर दिया था।

ग्रेजुएट होकर आप विलायत जा रहे थे, किंतु एक घटना-वश रुक गए और सन् १९१४ ई० में डिपुटी-कलेक्टर होकर गोरखपुर गए। वहाँ आपने कसिया (भगवान् बुद्ध का निर्वाण-स्थान) पर एक पैम्फ्लेट लिखा। टेनिस के आप असाधारण खिलाड़ी हैं। ग़ाज़ीपुर में कोई हिंदोस्तानी क्लब नहीं था, इससे आपने अपने बँगले ही पर क्लब की बुनियाद डाली और पीछे ७०००) सात हज़ार रुपए एकत्रित करके एक सुंदर क्लब बनवा दिया।

इसी बीच में महाराजा बहादुर बलरामपुर ने आपको अपनी शुश्रूषा के लिये यू० पी० सरकार से माँग लिया। महाराज का आप पर अपने पुत्र के समान विश्वास था और जब वह एक ऐसे भयंकर रोग से ग्रसित हुए कि जिससे लगभग एक वर्ष तक उन्हें पलंग पर पड़ा रहना पड़ा, उन दिनों मिश्रजी के अतिरिक्त किसी दूसरे पर अपनी देख-रेख का भार न छोड़ा।

वहाँ से आप फिर यू० पी० सरकार की सर्विस में लौट आए

और डिपुटी-कलेक्टर होकर मुज़फ्फ़रनगर गए, जहाँ पर आपने क्लब का जीर्णोद्धार तथा मुज़फ्फरनगर-डिस्ट्रिक्ट-गज़ट का संपादन किया। उन्हीं दिनों यू० पी० सिविल सर्विस एसोसिएशन स्थापित हुई और आप उसके ज्वाइंट सेक्रेटरी नियत हुए।

वहाँ से जालौन आने पर आपने कालपी (जालौन), जो कि वेदव्यासजी की जन्मभूमि मानी जाती है, में 'माधवराव सिंधिया व्यास-पाठशाला'-नामक एक अँगरेज़ी स्कूल स्थापित किया और उसके लिये ३०,०००) तीस हज़ार रुपए एकत्रित किए। अब यह हाईस्कूल होनेवाला है। मिश्रजी इसके आजन्म सभासद् हैं। जालौन से तबादला होने पर आपने उसका सभापति रहना स्वीकार नहीं किया। कालपी से आपको बड़ा प्रेम था। कालपी में एक धर्मार्थ समिति भी, जिसकी आय आठ-दस सहस्र रुपए वार्षिक है, आपने स्थापित की थी। अब तक यह ५०,०००) पचास हज़ार रुपए से अधिक दान में बाँट चुकी है, आप अब भी उसके सभापति हैं। कालपी-निवासियों ने आपको उससे अलग नहीं होने दिया।

जालौन से श्रीराना साहब खजूरगाँव आपको अपनी रियासत की मैनेजरी के लिये यू० पी० सरकार से माँगकर ले गए। वहाँ आपने सब कार्यालय और विभाग (Offices and Departments) स्थापित किए और एक वर्ष के भीतर लगभग ६०,०००) साठ हज़ार रुपए वार्षिक आय बढ़ा दी; किंतु एक बात से खिन्न होकर वहाँ से चले आए और द्वितीय

बार गोरखपुर नियत हुए। वहाँ आपने सुविख्यात अखिल भारतीय मुशायरा किया; इन दिनों आप जौनपुर में हैं और सचित्र 'गुलदस्तए आल इंडिया मुशायरा' के प्रकाशन का प्रबंध कर रहे हैं। इसमें भारतवर्ष के समस्त वर्तमान उर्दू-कवियों का जीवन-चरित्र और एक ही समस्या पर सबकी कविताएँ दी जा रही हैं।

मिश्रजी को श्रीकृष्णमूर्तिजी * पर पूर्ण श्रद्धा और भक्ति है, आप कहते हैं कि भगवान् ने—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

---

* श्रीकृष्णमूर्तिजी एक दिव्य मूर्ति हैं, जिनके उपासक संसार के प्रत्येक देश में हैं और संसार की सब भाषाओं में उनके उपदेशों के प्रकाशन के लिये पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई हैं। आपकी अवस्था अभी केवल ३२ ही वर्ष की है। आप चार मास योरप, चार मास अमेरिका और चार मास भारतवर्ष में निवास करते हैं। भारतवर्ष में बहुधा आप अदयार (मदरास) में रहते हैं।

एक अमेरिका-निवासिनी आपका समस्त व्यय देती है। हालैंड के एक बैरन ने अपना सब राज्य और क़िला आपको अर्पण कर दिया था, किंतु आपने लौटा दिया। अमेरिका की सिनेमा-कंपनी चाहती थी कि आप सवा सात लाख रुपए वार्षिक लेकर भगवान् बुद्ध का पार्ट कर दें, किंतु उसे निराश होना पड़ा।

आपका योरप में, ओमन (हालैंड) और अमेरिका में ओ है। (कैलिफोर्निया) में कैंप होता है और सहस्रों की संख्या में प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति आपका उपदेश सुनने के लिये आते हैं।

आदि श्रीभगवद् गीता द्वारा संदेश दिया है, उसकी पूर्ति के लिये इस काल में श्रीकृष्णमूर्तिजी का अवतरण हुआ है। आपका कहना है कि जिन इमाम मेहँदी के आने का इंतिजार मुसलमान करते हैं तथा जिन क्राइस्ट के पुनरागमन की बाट ईसाई जोहते हैं या जिन बोधिसत्त्व के अवतार की आशा बौद्ध लोग करते हैं अथवा जिन जगद्गुरु के अवतरण के लिये हिंदू ध्यान लगाते हैं, वह एक ही दिव्य मूर्ति है। उसके आने पर उसे कोई न पहचानेंगे, सदा से ऐसा ही होता रहा है और फिर ऐसा ही होगा। आपने इन अपने सुंदर विचारों को अपनी एक छोटी कहानी 'नाथ का जामा' में इस प्रकार दिखलाया है।

× × ×

पण्डितजी मंदिर में से बोले—"अरे राम-राम भला भगवान् कृष्ण और मुसलमानों-कैसी अधकटी मूँछ और घुटा सिर! कहाँ भगवान् और कहाँ मुल्लों-कैसी टोपी और सुतन्ना।"

मसजिद में से मुसलमान ने कहा—"और क्या इमाम मेहँदी

आपका जन्म मदनपल्ली (मदरास) के एक साधारण ब्राह्मण-कुल में हुआ है। इस कारण मदनपल्ली में एक कॉलेज स्थापित किया गया है।

आप किसी को शिष्य नहीं बनने देते। आपका कहना है कि पिंजड़े को तोड़ने के बदले नया पिंजड़ा नहीं बनने देंगे, जिसमें बैठकर लोग औरों की भाँति उनकी भी पूजा करने लगें।

तुम्हारी धोती पहनेंगे ? या भस्म रमाएँगे कि सिर पर जटा बढ़ाएँगे ?"

गिरजाघर से ईसाई बोला—"क्राइस्ट जब आएँगे, पैंट और कोट पहनेंगे, धोती-पाजामा में नहीं रहेंगे। भला भगवान् ईसू असभ्यों की भाँति रहेंगे ?"

बौद्ध ने विहार में से कहा—"भगवान् का प्रिय वस्त्र त्रिपीरा है। इसी में उनका तेजवान् शरीर शोभा पा सकता है और किसी वस्त्र को भगवान् बोधिसत्त्व के शरीर ढाँकने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता।"

× × ×

राधिका ने हँसकर कहा—"नाथ ! तुम्हारी पोशाक निर्णय हो रही है।"

नाथ बोले—"राधे ! ये लोग मुझे किसी पोशाक में न पहचानेंगे। आगमन मे विश्वास करते हैं, पर सम्मुख आने पर मुकर जावेंगे।"

राधा ने हाथ जोड़कर कहा—"तब काहे को भगवान् स्वर्ग छोड़ यहाँ आ रहे हैं।"

नाथ बोले—"उनके लिये आ रहा हूँ, जो सांत्वना के भिखारी, आनंद के इच्छुक, बंधन-मुक्ति के पुजारी और प्रत्येक वस्तु में आनंद खोजने के अभिलाषी हैं। सुधारने के लिये आता हूँ, मिटाने के लिये नहीं। मंडन करूँगा, खंडन नहीं।"

राधिका का मस्तक झुक गया, प्रेमाश्रु बहाती हुई बोली—"प्राणनाथ ! पर क्या लोग तुम्हें पहचानेंगे ।"

नाथ बोले—"जो दीन हैं, दुखी हैं, पतित हैं, वे लोग मुझे पहचानेंगे अथवा जो मंदिर, मसजिद, गिरजा और विहारादि के परे हैं, वे जानेंगे ।

राधा बोली—"भगवान् ! और ये लोग ?"

नाथ ने करुणा स्वर में कहा—"मेरे चले जाने पर अपनी भूल पर पछताएँगे । मेरे नाम से नया मत निकालकर उपद्रव मचाएँगे ।"

× × ×

मिश्रजी के अनुज श्रीपं० व्रजगोपालजी बी० ए० भी सहृदय, होनहार तथा हिंदी-प्रेमी हैं और जातीय कार्यों में भी योग देते रहते हैं । मिश्रजी के दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं, आपकी धर्मपत्नी भी उन्नतिशीला तथा मिश्रजी ही की सच्ची अनुगामिनी हैं । जातीय कार्य तथा हिंदी-हित-साधन मे सदैव आप तत्पर रहती हैं । आप श्रीपं० हेतरामजी पाराशर सी० आई० ई०* पूर्व दीवान रीवाँ-राज्य की पुत्री हैं ।

मिश्रजी ने 'मेमरी ऑफ् पास्ट लाइफ् रिसर्च एसोसिएशन' (Memory of past life research association) की

---

* पाराशरजी का विस्तृत जीवन-चरित्र लेखक की 'सुकवि-सरोज' (प्रथम भाग)-नामक पुस्तक में देखिए । आपके एक पुत्र रायबहादुर पं० काशीनाथजी रियासत अयोध्या के मैनेजर और दूसरे पुत्र पं० कृष्णप्रसादजी I. C. S. सहारनपुर के कलेक्टर हैं ।—संपादक

भी स्थापना की और प्रबंध किया कि भारतवर्ष-भर में जहाँ कहीं ऐसी घटनाएँ हों कि बालक अपने पूर्वजन्म की स्मृति बतलावे, तो उसकी जाँच वैज्ञानिक रीति से अन्यमत के बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा तुरंत की जावे। विदेशों में भी इस संस्था की शाखाओं के फैलाने का विचार था, किंतु रायबहादुर श्री-श्यामसुंदरलालजी सी० आई० ई० के असमय शरीर-पात हो जाने से इस कार्य मे शिथिलता आ गई।

आपने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की है—

(१) चंद्र-भवन, (२) माथा, (३) बाल-शिक्षा-माला, (४) भारतोदय, (५) तपोभूमि, (६) व्रतावली, (७) इंडियन ला फ़ार जुविनाइल आफ़ंडर्स। (Indian law for juvenile offenders)

इनमें से प्रथम चार प्रकाशित हो चुकी हैं और यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। अन्य पुस्तकें भी शीघ्र ही प्रेस में जाने-वाली हैं। विद्वानों ने मुक्तकंठ से आपके ग्रंथों की प्रशंसा की है।

'नवज्योति'-नामक मासिक पत्र के आप अवैतनिक प्रधान संपादक हैं।

आपकी रचनाओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

हमारी प्रभो! अब के बात बनी।
काशीधाम कमच्छा[१]जी में गोकुल आज ठनी। हमारी प्रभो!

---

१ कमच्छा = काशी के उस मुहल्ले का नाम, जहाँ श्रीकृष्णमूर्तिजी आकर निवास करते हैं।

प्रेम यमुन चहुँ ओर बहत है बरसत सुमति घनी। हमारी प्रभो!
प्रियतम कृष्णमूर्ति की बसी गूँजत, सुनौ ध्वनी। हमारी प्रभो!
'रामगोपाल' स्वर्ग आनँद रस बूटी भली छनी। हमारी प्रभो!

× × ×

नाथ! तुम्हें करुणा अब की आई।
युगे-युगे अवतार लिए हौ खबर न कबहुँ पठाई। नाथ!
कबहुँ-कबहुँ जब तुम प्रभु! आए हम नर देह न पाई। नाथ!
प्राणधार प्रगटे भूतल पै सुर-मुनि आरति गाई। नाथ!
चरण गहौ चरणामृत लै लेउ हँस-हँस देउ बधाई। नाथ!
'रामगोपाल' कहत जे के ते बलि-बलि जाउँ कन्हाई। नाथ!

× × ×

कहौ रे मन है गई शंका भंग।
एक झलक ते प्रभु दरशन के और क्षणिक सत्संग। कहौ रे०
दीन पतित मैं नाथ जगद्गुरु मोहिं लगायो अंग। कहौ रे०
थो मैं अंध नयन पट खोले रह गयो सब जग दंग। कहौ रे०
कृष्णमूर्ति गुण निश-दिन गाऊँ, हिय यहि उठत उमंग। कहौ रे०
'रामगोपाल' रहौ चरणन में, जस दीपक पै पतंग। कहौ रे०

× × ×

बता दे प्रियतम की पहचान।
अंग-अंग सों प्रेम छनैगा, मधुर-मधुर मुस्कान। बता दे०
दीन पतित को प्यार करेंगे, सब जग का कल्यान। बता दे०
'रामगोपाल' प्रभू आवत हैं, चरणन लागो ध्यान। बता दे०

× × ×

विद्या से जग होत है सकल भाँति कल्यान;
ताते विद्या सीखवो वर्णत पुरुष महान।

कबहुँ खुले अस्थान पर करिए न नग्न नहान ;
निर्लज्ज को जग में सदा करत सबै अपमान।
एहो देश-हितैषि-गण चहहु जो जीवन लाहु ;
कार सँवारो सजग सब सहसा जनि पतियाहु।

× × ×

कोई देश न ऐसा प्यारा,
जैसा प्यारा हिंदुस्तान।
जुग-जुग जिएँ जार्ज महराज,
मनावें हम रक्षित संतान।
मेरा प्यारा हिंदुस्तान,
मेरा प्यारा हिंदुस्तान।

नदियाँ पाँच वहाँ हिमचल से,
हैं पंजाब इसी से कहते।
मैं आती हूँ उसी जगह से,
जहँ पजाबी भुजबलवाला।
मेरा प्यारा हिंदुस्तान,
मेरा प्यारा हिंदुस्तान।

हिम से गंगा यमुना आई,
सजल सफल यह धरनि सुहाई।
अवध आगरा-प्रांत कहाई,
मुझको इसी भूमि ने पाला।
मेरा प्यारा हिंदुस्तान,
मेरा प्यारा हिंदुस्तान।

मगध-उड़ीसा भूमि मिलाई,
बुद्ध, जनक, सीता जहँ जाई।

उस विहार से हूँ मैं आई,
उत्तर हिम दक्खिन बरुनाला।
मेरा प्यारा हिंदुस्तान,
मेरा प्यारा हिंदुस्तान।

श्रीपं० बाबूरामजी बित्थरिया

पं० बाबूरामजी बित्थरिया 'नवीन' साहित्य-रत्न, सिरसागंज (मैनपुरी) का जन्म सं० १९४६ वि० में आश्विन कृष्ण ११ को हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम प०बलदेव-प्रसादजी बित्थरिया है।

आपने सन् १९०७ ई० में उर्दू मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। पश्चात् रियासत बमरापुर (मैनपुरी) मे नौकरी कर ली। पश्चात् डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड में शिक्षक हो गए और सन् १९१२ ई० में प्रथम श्रेणी में नार्मल स्कूल की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। सन् १९२० ई० में डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड से आपने संबंध-विच्छेद कर लिया और रामचंद्र-हाईस्कूल तथा रेलवे स्कूल बाँदीकुई में कार्य करते रहे। पश्चात् सन् १९२३ ई० में आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के साहित्य-अन्वेषक (Research Agent) नियुक्त हुए और प्रायःदो वर्ष कार्य करके अस्वस्थता के कारण त्याग-पत्र देकर घर चले आए और घर ही पर एक काटिन-मिल की मैनेजरी दो वर्ष तक करते रहे। पश्चात् आप फिर काशी ही साहित्य-अन्वेषक के पद पर चले गए, जहाँ कि आप अब तक बड़ी ही संलग्नता और

योग्यता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं। आपके साहित्यिक परिज्ञान की सभा ने मुक्त कंठ से अनेक बार प्रशंसा भी की है।

आपने सं० १९७३ वि० में प्रथमा, सं० १९७६ वि० में मध्यमा और सं० १९७८ वि० में साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षाएँ पास की हैं। आपको साहित्यरत्न की उपाधि भी है। आप साहित्य-सम्मेलन के स्थायी सदस्य, परीक्षा-समिति के सदस्य तथा सम्मेलन की परीक्षाओं के परीक्षक भी रहे हैं।

आपने—

(१) हिंदी-काव्य मे नवरस, (२) संवाद-संग्रह, (३) हिंदी के दस सर्वोच्च कवि आदि पुस्तकों की रचना की है, जिनमें से प्रथम 'हिंदी-काव्य में नवरस' प्रकाशित हो चुका है और साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा के पाठ्य ग्रंथों में है।

आप व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनो ही मे सफलता-पूर्वक कविताएँ लिखते हैं। आपकी रचनाएँ मधुर, सरल और भाव-पूर्ण होती हैं।

उदाहरण—

(वीरोक्ति)

मातु तुम सकल गुणों की खान,
देख निज पुत्रों का अपमान;
शक्ति-हत हो जननी सुख-धाम,
हुई तन-छीन मलीन महान।
रत्नमय था जो मुकुट विशाल,
छोड़ वह अपनी कांति ललाम;

हुआ है कंटकगण का थान,
बना था जो हिम-गिरि अभिराम।
नहीं हैं वह यमुना औ गंग,
स्रवौ तुम नेत्रों से जल-जाल;
नीर-निधि पूरित सातों आज,
पहन लो सुखद शांति की माल।

× × ×

संवादसंग्रह से

(सीता-रावण-संवाद)
(मंदाक्रांता)

रावण—

शोका धीरा सब बन थली को जहाँ थी बनाती,
सीता बैठी व्यथित अति ही राम का नाम ले ले।
पापी कामी असुरपति था हाथ में खड्ग धारे,
आया व्याधा सरिस करने भीत सीता मृगी को।
बोला प्यारी सकल वसुधा प्राण भी मैं तजूँगा,
होगा आज्ञा यदि विधु मुखी आपके बाल की भी।
चाहो तो हों सुर-असुर भी आ खड़े हाथ बाँधे,
पावे आज्ञा पवन नित ही हो पड़ा पाँव आके।
जीता मैंने जल-थल सभी बात क्या ये छिपी है,
लक्ष्मी देखी अचल तुमने है यहाँ सी कहीं भी।
आकांक्षा है महत् जिसकी चाकरी की सुरों को,
हे वैदेही दशमुख वही आपका दास होगा।
लोभी भौंरा तृषित अति ही मुग्ध सा हो खड़ा है,
त्यागो लज्जा अधर रस पी तृप्त होने उसे दो।
इच्छा होती रह-रह यही पुष्प-माला खिली-सी—
वैदेही हों नित प्रति लगीं आप मेरे गले से।

सीताजी—

बोली सीता असुर मृग तू जानता क्या नहीं है,
हूँ मैं पत्नी अवध वन के विक्रमी केसरी की।
आवेंगे वो रण थल जभी काम देगा न कोई,
तेरी माया, धन, बल सभी देखते ही उड़ेंगे।
होती श्रद्धा स्वपति तजि के अन्य में क्या कभी भी,
अंधा लूला बधिर१ पति भी पूज्य होता सती को।
जैसी वामा असुर-कुल की नाक को हैं कटाती,
देखी वैसी यवन कुलटा आर्य कन्या न होगी।
रे दंभी हूँ अनल२ तुझको राम को पुष्प वेला,
दूँगी तेरा जन दल जला हार हूँगी उन्हीं का।
चाहे जो तू अवधपति के बाण से त्राण३ पाना,
दुष्कर्मी तो हट तज सभी छोड़ दे ध्यान मेरा।

× × ×

भौंहें तानी दशन४ घिस के खड्ग को यों निकाला,
मानो गर्जा जलद बिजली है अभी भू५ जलाती।
पत्ती भागे सब तरु हिले राम के रंग डूबी,
भोली-भाली जनक-तनया पै न आतंक छाया।

× × ×

सीता-प्रवास से

(प्रथम सर्ग)

गगन हृदय - भेदी सूर्य ने था जमाया,
निज अनुपम दैवी कीर्ति का रंग ऐसा।

---

१ बधिर=बहरा। २ अनल=आग। ३ त्राण=मुक्ति। ४ दशन=दाँत। ५ भू=पृथ्वी।

नखत१ दल सभी भागा तजा धैर्य सारा,
द्विजपति२ अति फीका था उसे देखते ही।
विशद विजय भोगी हर्ष में था लुटाता,
भर-भर निज झोली भूमि के बीच सोना।
खग, मृग, नर, देवी, देव वो दान पाके,
निज-निज मुख गाते हैं यशोगान भारी।
कुमुद-कुजन सूखे थे पड़े अम्बुधों३ में,
कमल सुजन फूले सर्वदा ताल में थे।
दुख-सहित छिपे उल्लू सभी घोंसलों में,
अमित सुख हुआ था कोक की मंडली को।
निज प्रति मन लोभी नाद आकर्ष द्वारा,
अमल जल-युता सर्यू लुभाती सबों को।
तियगण भवनों में भूषणों को न जाती,
उपवन ध्वनि से थे पक्षियों ने उठाए।
विबुध जन लगाए ध्यान थे वेद ही में,
बटुक पढ़ रहे थे धीरता से किताबें।
कृषक सुत चले थे क्षत्र के देखने को,
सुमन चुन रहे माली सुरों पै चढ़ाने।
अगणित उपयोगी सर्व को जो दुकानें,
वणिक-दल बज़ारों में उन्हें खोलता था।
भजन कर रहे बैठे ऋषी नेत्र मूँदे,
जल भर-भर जाती ले घड़े नारियाँ थीं।

---

१ नखत = नक्षत्र, तारे। २ द्विजपति = चंद्रमा। ३ अंबुधों में = समुद्रों में, सागर में।

प्रमुदित मुख जाते साथ ले काग़ज़ों को,
पहन बसन न्यायाधीश न्यायालयों में—
अवधपुर-निवासी गोप सारे कमी के,
सकल पशु वनों में ले गए थे चराने।

× × ×

अब समस्या-पूर्तियाँ भी आपकी कुछ देखिए। एक बार आपके एक मित्र ने आपकी डाढ़ी को देखकर उसके प्रति "श्यामलता मुखधारी" आपको समस्या दी। आपने उसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी :—

खैंचि कुहू निशि के तम तार,
लगाय के बारहि बार सुधारी;
प्रेम सनेह सों सींचि सदा—
शुचि दर्पन में नित जात निहारी।
है मृगनैनिन को दृग ढाँप,
यही मन कीड रिझावन हारी;
देखत मित्र 'नवीन' न क्यों,
यह कारण श्यामलता मुखधारी।

अन्य समस्या-पूर्तियाँ

(छबि देखि रही रजनी नभ की)

मुख चंद्र भयो युत पूरि कला,
मृदु हास बनी सुखमा अब की;
अति सोहत वारिध-कूल छटा,
दुपटा बुधि खोवत है सबकी।

गिरि हैं कुच, कुंभ नितंब[1] महा,
    बिहि की गति है करिके कभ की;
उपमा सब हारि गई जिहि सों,
    छवि देखि रही रजनी नभ[2] की।

× × ×

पट नील सरीर लडे हुलसैं,
    नभ-गंग सुसक्त छटा टप की;
नग देखतु हो रात नेमन सों,
    विरही मन ठानि सदा जप की।
अब प्राणप्रिया अपनी लखि कैं,
    बरसावत फूल सदा नभ की;
अति उत्तम सोहनि जो मन की,
    छवि देखि रही रजनी नभ की।

(तारे हैं)

सुंदर सरीर वारे सोभा को बरनि सकै,
    कुंद इंदु[3] अरविंदु[4] के मान मथि डारे हैं;
निरखि नैन आभा जाकी, लगे कमल-मृग,
    खंजन बिचारे हेरि-हेरि हिय हारे हैं।
फीको भयो चंद को प्रकास, हास लखि जाको,
    मंद-मंद चाल पै गयंद[5] वृद वारे हैं,
अनुपम छवि धारे, दशरथ के दुलारे धन्य,
    रीति-प्रीति वारे, मम नैन बीच तारे हैं।

श्रीमाधव-सनाढ्य-आश्रम, लशकर (ग्वालियर) के लिये

---

१ नितंब = कमर के नीचे का भाग कूल्हे, पुट्ठे। २ नभ = आकाश।
३ इंदु = चंद्रमा। ४ अरविंदु = कमल। ५ गयंद = बड़ा हाथी।

आपने एक अपील लिखी थी, उसका भी कुछ अंश देख लीजिए—

(ब्राह्मणों के प्रति)

सब वर्ण थे अनुचर तुम्हारे तुम सभों के ईश थे;
इस लोक में केवल तुम्हीं उस लोक में जगदीश थे।
आज्ञा विना हिलता भला क्या पत्र की सामर्थ्य थी;
सर्वत्र जनता नाचती तव शब्द ही के अर्थ थी।
मन्त्री सभी सैनिक तुम्हारे वीर-वर रणधीर थे;
कोषाधिकारी वैश्य भी शुचि बुद्धि युत गंभीर थे।
विज्ञान रत्नों से भरा रहता सदा भंडार था;
पुष्पादि से सज्जित बड़ा वन राज्य का विस्तार था।
शुभ मंत्र ही केवल तुम्हारे उष्ट्र१, गज, रथ, अश्व थे;
अस्त्रादि का क्या काम था तव वचन ही सर्वस्व थे।
गौरव सुखद हा वह सभी है लुप्त-सा अब हो गया;
अज्ञान-तम सर्वत्र है बस ज्ञान-दिनकर सो गया।
वेदानुकूल स्वधर्म जो थे सब रसातल२ जा बसे;
छोड़े सभी षट्कर्म३ हा हो दासता में तुम फँसे।
विद्या तजी, धन-धर्म छोड़ा कर्म का ना नाम है;
बस लोग अब बतला रहे 'भिक्षा तुम्हारा काम है।
पर दोष उनका क्या भला इसमें तुम्हारी भूल है;
साक्षात् समझो बस अविद्या एक इसकी मूल है।

१उष्ट्र = ऊँट। २ रसातल = पाताल लोक। ३ब्राह्मणों के षट्कर्म = (स्नान, संध्या, जप, तर्पण, देवपूजन आदि षट्कर्म) और वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना, दान लेना।

चौबे, द्विबे, श्रोती, तिवारी, रह गए तुम नाम के ;
कर्म जब तुममें नहीं तो नाम यह किस काम के ।
नित वीर, होली-गान ही बस अब तुम्हारा 'साम' है ;
लड्डू, कचौड़ी, पूड़ियों में बस रहा प्रिय राम है ।

× × ×

पारस्परिक ईर्षा तजो, निज जाति-सुख में ध्यान दो ;
तन, मन सभी अर्पण करो कुछ द्रव्य यदि हो दान दो ।
बन वेद विद्या के प्रचारक स्वाभिमानी तुम बनो ;
निज जाति का उद्धार कर देशाभिमानी तुम बनो ।
भारत किया करता सदा जिस पर बड़ा अभिमान है ;
प्राचीन विद्या वेद की वह सर्वमान्य प्रधान है ।

श्रीपं० चतुर्भुजजी पाराशर

पं० चतुर्भुजजी पाराशर 'विशारद' का जन्म बुंदेलखंडांतर्गत हमीरपुर-प्रांत के कस्बा कुलपहाड़ मे संवत् १९४६ वि० मे हुआ था। आप वशिष्ठगोत्रीय पाराशर हैं। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० जगन्नाथप्रसादजी पाराशर हैं। हमारे चरित्रनायक तीन भाई थे। (१) श्रीपं० खुमानप्रसादजी, (२) श्रीपं० चतुर्भुज तथा (३) श्रीपं० राजाराम। इनमें से पं० खुमानप्रसादजी* का स्वर्गवास हो गया है।

---

* आपका जन्म सं० १९४२ वि० में हुआ था। आप पढ़े-लिखे विशेष न थे, किंतु कवित्व-शक्ति आपमें प्राकृतिक थी। आप प्रांतिक भाषा में कविता करते थे। उदाहरण निम्न-लिखित है—

(रसिया)

सैयाँ होकर भारतवासी कैसी हँसी करावत मोर।
खादी की धोती नहिं ल्यावत, धूप छाँह अबरन पहिनावत,
तुम पर चलत न जोर। सैयाँ होकर०।

× × ×

श्रीपं० चतुर्भुजजी ने हिंदी-मिडिल पास करके प्रयाग में नार्मल स्कूल की परीक्षा पास की, और अध्यापकी करने लगे। सं० १९७२ वि० में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होकर 'विशारद' की उपाधि प्राप्त की। और गवर्नमेंट रेसीडेंसी हाईस्कूल, इंदौर में हिंदी-मास्टर हो गए। वहाँ आपको कई विद्वानों, सुलेखकों और सुकवियों का सत्संग प्राप्त हुआ। इस समय आप अपने ही ग्राम (कुलपहाड़) के टाउन-स्कूल में अध्यापक हैं। आपके कविता-गुरु श्री-खूबचंदजी वर्मा (रसेश) हैं।

प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यद्यपि आप बहुत थोड़ा लिख पाते हैं, किंतु जो कुछ भी आप लिखते हैं, सरल, सरस और टकसाली होता है। कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

(स्वागत-सुमन)

स्वागत श्रीयुत ब्रह्ममूर्ति-सनकादि वंशधर;
स्वागत अनुपम तपोनिष्ठ द्विज-ज्येष्ठ-मधुवर।
स्वागत विद्या बुद्धि ज्ञान विज्ञान प्रभाकर;
स्वागत सम दम भक्ति शक्ति सुख शांति सुधाकर।

गाढ़ा की चोली बनवा दो, कुसमानी रँग में रँगवा दो,
लगै हरीरी कोर। सैयाँ होकर०।
जो न स्वदेशी को अपनाओ, हमने जानी तो बस आओ,
देश-प्रेम को छोर। सैयाँ होकर०।
पैयाँ परौं देश-रस पागौ, बहुत सो चुके हौ अब जागौ,
कहँ 'सुमान' भओ भोर। सैयाँ होकर०।

स्वागत सनाढ्य-द्विज-कुलतिलक-त्रिभुवन वंदित जगद् गुरु;
सर्वत्र, सर्वदा विश्व के आगे फल-प्रद कल्पतरु ॥ १ ॥
जगत पूज्य द्विज जाति जननि के लाल ! आइए;
देशोन्नति शिशु के प्रधान प्रतिपाल ! आइए।
भँवर पड़ी जातीय तरणि१ पतवार ! आइए;
जाति-प्रेम आत्माभिमान-आधार ! आइए।
भ्रातृत्व भाव भाषादि की दशा-सुधारक ! आइए;
मृतकों में जीवन-शक्ति के शुभ संचारक ! आइए ॥ २ ॥
प्रभो आइए, चरण - रेणु पलकों से झारैं;
सानुराग हृदयासन पर तुमको बैठारैं।
प्रेम-अश्रु से विश्ववंद्य पद - पद्म पखारैं;
इष्टदेव मम जान, भक्ति आरती उतारैं।
हम भेंट रूप मन वच करम चरणों के आगे धरैं;
अति तुच्छ दास हैं आपके किस प्रकार स्वागत करैं ॥ ३ ॥

वन में (समस्या-पूर्ति)

राष्ट्रीय भाव तो मंद हुए संकीर्ण भाव छाए मन में;
है मार-पीट अपहरण लूट नित झगड़ा मत परिवर्तन में।
सब किया कराया चौपट है रह गए दासता - बंधन में;
अब आगे जाने क्या होना इस हिंदू-मुस्लिम-अनबन२ में।

(धन्यवाद)

देते सहर्ष उनको हम धन्यवाद मन से;
जो देश-हित हैं करते तन, मन, वचन औ धन से।

---

१ तरणि = नौका। २ अनबन = झगड़ा।

जिनको है काम, काम से निज नाम से नहीं है ;
व्यवहार सत्य जिनका रहता सदैव जन से।

× × ×

सानंद दान करते सर्वस्व जाति-हित में ;
जी जान से मुहब्बत रहती जिन्हें वतन से।
सार्थक है जन्म उनका, जीवन सफल है उनका ;
परस्वार्थ में जो तत्पर रहते हैं प्रेमपन से।
ऐसे नरों से अपनी फूलें-फलें सभाएँ ;
है प्रार्थना 'चतुर्भुज' श्रीराधिकारमन से।

(हनुमान-स्तव)

जय जय जय बजरंगबली जय जन-मन-रंजन ;
शत्रु-निषूदन, दुष्ट-विभंजन, खलदल-गंजन।
जय जय जय श्रीमहावीर जय संकटमोचन ;
जय जय जय सद्धर्म प्राण जय नीति-निकेतन।
जय बाल ब्रह्मचारी यती, मंगलमय कल्याणमय ;
जय युद्धवीर रणबाँकुरे, जय जय जय हनुमान जय।
सिंधु फाँद निर्भय दहाड़नेवाले तुम हो ;
अड़े समय पर गिरि उखाड़नेवाले तुम हो।
मायावी की चाल ताड़नेवाले तुम हो ;
दुराग्रही दानव पछाड़नेवाले तुम हो।
सब सबल शत्रु घबड़ा गए, ज्यों ही तुमने हूँक दी ;
उपवन उजाड़ उनका दिया, क्षण में लंका फूँक दी।

× × ×

ब्रह्मचर्य की शक्ति दिखा दी जगतीतल[1] को;
दिया दुष्टता का प्रतिफल-दल खल-मंडल को।
जग में प्रचलित किया सुसेवाधर्मोज्ज्वल को;
बने पूर्ण आदर्श, स्वयंसेवक के दल को।
तुमने सपने में भी नहीं अपने सुख की चाह की;
पर हित में अपने प्राण की भी न कभी परवाह की।
प्रभो! हमें दो शक्ति विपति-वारिधि तरने की;
व्यथा सताए हुए भाइयों की हरने की।
दुष्टों से मा बहनों की रक्षा करने की;
देश, जाति, मत, धर्म, कर्म पर मिट मरने की।
दो वह विक्रम जिससे प्रभो! विश्व सुयश गाने लगे;
'चतुरेश' विजय-स्वातंत्र्य का झंडा फहराने लगे।

---

१ जगतीतल = संसार।

श्रीपं० भद्रदत्तजी त्रिवेदी
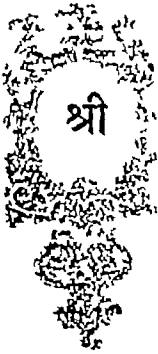
पं० भद्रदत्तजी शर्मा कवि कुमार वैद्य-भूषण, भिषक्-चूड़ामणि का जन्म कार्त्तिक शुक्ल १२ मंगलवार सं० १६४६ वि० में कासगंज में हुआ था। आपके पिता का नाम ज्योतिर्विद् पं० रामसुखजी था। आप भारद्वाज-गोत्रीय त्रिवेदी हैं। पचौरा ग्राम से निकास होने के कारण पचौरी आपकी उपाधि भी है।

आपके प्रपितामह पं० मदारामजी ज्योतिष तथा व्याकरण के धुरंधर पंडित थे।

हमारे चरित्रनायक को पाँच वर्ष की अवस्था में देवनागरी भाषा के पढाने का श्रीगणेश आपके पूज्य पिताजी ने कराया था। और सात वर्ष की अवस्था में जब यह देवनागरी भली भाँति पढने लगे, तो वहीं (कासगंज में) संस्कृत-पाठशाला में अध्ययनार्थ प्रवेश करा दिए गए। वहाँ आप अमर-कोष और अष्टाध्यायी व्याकरण पढ़ते तथा घर में पिताजी द्वारा आप दुर्गासप्तशती, वैदिक रुद्राष्टाध्यायी, सत्यनारायण की कथा और वैदिक मंत्र तथा श्लोक आदि पढते थे। और ६½ वर्ष की अवस्था तक आपने इनको कंठ करके अच्छी

सफलता प्राप्त कर ली थी, किंतु इसी वर्ष आपकी माता का देहावसान हो गया और पंडितजी के चले जाने के कारण वह संस्कृत-पाठशाला भी टूट गई।

अस्तु। आपका पठन-पाठन एक प्रकार से बंद ही सा हो गया। किंतु पिताजी द्वारा आपने कर्मकांड, वर्ष, जन्मपत्र, गणित, पौराणिक कथाएँ, मुहूर्त-ग्रथादि भले प्रकार पढ़ लिए थे, इसीलिये आपको अपने कार्य-सपादन में किसी प्रकार की असुविधा प्रतीत नहीं होती थी।

कालांतर में आपने रघुवंश, श्रुतबोध, वाल्मीकीय रामायण, माधवनिदान आदि और-और ग्रंथ भी पढ़ लिए।

दैवयोग से जब आप केवल १७½ वर्ष के थे, आपके पिताजी का भी स्वर्गवास हो गया और इस प्रकार गृहस्थी का सारा भार आपके ऊपर आ गया। किंतु आप अध्ययनशील तो थे ही, अतः गृहस्थी के कार्यों से समय निकालकर आयुर्वेद की पुस्तकों का मनन भले प्रकार करते रहे और २५ वर्ष की अवस्था में आपने आयुर्वेद की परीक्षाएँ भी दीं, जिनमें 'वैद्यभूषण' और भिषक्-चूड़ामणि की आपको उपाधि भी मिली।

आपको कविता से प्रेम बाल्यकाल ही से था। प्रथम आप रेखता, दादरा, ठुमरी आदि लिखा करते थे, किंतु यथासमय ज्यों-ज्यों आपकी अवस्था बढ़ती गई, आप नूतन प्रणाली के अनुसार खड़ी बोली और व्रजभाषा मे कविता करने लगे

और तब से अब तक जाति-सेवा और साहित्य-सेवा आप तत्परता से कर रहे हैं। अब तक आपने निम्न-लिखित पुस्तकें लिखी हैं—

(१) ब्राह्मण-सुधार भजनप्रकाश }
(२) सनाढ्य-रत्न-प्रदीपिका } प्रकाशित

(३) विनती-विनोद }
(४) विरक्त-वाक्य-माला } अप्रकाशित
(५) भामिनी-जीवन (वैद्यक) }

आपकी कविता के कुछ नमूने निम्न-लिखित हैं—

(व्यर्थ जीवन)

जिन निज गुरु, पितु, मात, भ्रात, सुत हित नहिं कीनो ;
स्वामि, सखा, परिवार, दार को सुख नहिं दीनो।
देश-जाति उत्थान, दीन-दुख दूर न कीनो ;
करिकै पर-उपकार कभी जग सुयश न लीनो।
कूकर, काक - समान निज उदर भरत जग में रह्यो ;
जीवन ताकर व्यर्थ जग कहा लाभ तिन जग लह्यो।

(अमर)

जो है भूतल बीच प्रथित महिमान बड़ाई ;
कविता सरस पुनीत जासु जग में थिर पाई।
सत-मत-पथ अवलोकि जासु जग जन अनुयायी ;
जीवन, शिक्षा जासु ज्ञानबल जग सुखदायी।
सानुराग जिहि की सदापुण्य-स्मृति करते सुभर ;
सोई जीवित है जगत मृत ह्वै कर हू है अमर।

(पत्नी-वियोग)

मोसों अब कहि है कौन प्राणपति, प्रियतम, नाथ,
कौन मोहि दुःख बीच धीरज दैनवारी है;
शीतल प्रिय वचनन ते मुदित मन करैगी कौन,
कौन हाय ! 'भद्र' विप्र सेवा करनहारी है।
दुहकर मम स्वामिनि सो दासी वनैगी कौन,
कौन अब करैगी दूर छाई घर अँध्यारी है;
कबहुँ नाहिं व्याप्यो दुख जाके मुख देखिबे सों,
स्वर्ग को सिधारी हाय सोई प्राणप्यारी है।

(वसंततिलका छंद)

जो विश्व का जनक, पालक, नाशकारी,
जो विश्वव्याप्त, अज, अव्यय, निर्विकारी;
जो एक है विविध रूप अनंत शक्ती,
मैं हूँ प्रणाम करता उसको सभक्ती।

(मालिनी छंद)

अमृत सम तुम्हारे गेह में भोज्य पाए,
सुरसरि - सम मीठा नीर पी-पी अघाए;
तुम सकल पुजाई कामनाएँ हमारी,
हम चकित तुम्हारा देख औदार्य[1] भारी।

(उपालंभ)

क्यों प्रभु ! नाम-प्रभाव बिसारो।
दीनबंधु कहलाय न अब तुम दीनन ओर निहारो;
दुख-हर्ता निज नाम धरायो मो दुख नाहिं निवारो।

---

१ औदार्य = उदारता।

जगन्नाथ तुम व्यथा फिरत मैं जग अनाथ सम मारो;
कृपा-सिंधु जग कैसे कहि है नाहिं कृपा-कन डारो।

× × ×

जगदाधार कहावहु कैसे देत न मोहिं सहारो;
घट-घटबासी हो मम घट मे काहे कीन्ह किनारो।
सिगरे ही तुव नाम व्यर्थ प्रभु! होत सोच जिय भारो;
कै निज नाम करौ अब सार्थक कै निज नाम बिसारो।

(प्रभाती)

जय जय जय दीनबंधु लेहु सुधि हमारी।
देखे तुम दुखित दीन तबहीं अवतार लीन;
दीनन दुख टार दीन सुरति अब बिसारी। जय०।
समदर्शी तुम कहाय देखत हमको न हाय;
हे प्रभु! हम निस्सहाय दीन अति दुखारी। जय०।
तुम हो प्रभु! जगतनाथ तौऊ[1] हम जग अनाथ;
कैसी तव गुनन नाथ! अचरज जिय भारी। जय०।
निज कृत दुष्कर्म भोग लीने हम बहुरि भोग;
अब तो प्रभु! देहु योग सरन हम तिहारी। जय०।
विरव-सिंधु बीच आज बूड़त द्विजवर समाज;
केवट बन करहु काज लेहु प्रभु! उबारी। जय०।

कल्याण-मार्ग

(वसंततिलका वृत्त)

पूजौ सदैव गुरु के पद-पंकजों को;
जीतौ तथैव मद को सब इंद्रियों को।

---

१ तौऊ = तब भी।

तृष्णा तजौ हर भजौ हृदि धैर्य धारौ ;
धारौ क्षमा सत गहौ अघ को बिसारौ।

× × ×

स्वात्मा समान सब भूत लखौ सदा ही ;
दुःखार्त दीन जन पै करना दया ही।
कर्तव्य - पालन करौ निज कीर्तिवृद्धी ;
सत्संग साधु करके कर लो सुबुद्धी।

× × ×

उद्योग में रत रहौ पुरुषार्थ धारौ ;
आरंभ कार्य करके न उसे बिसारौ।
विद्या विवेक विनयान्वित हो सुवाणी ;
कल्याण - मार्ग यह ही कहते सुज्ञानी।

× × ×

पश्चात्ताप

(उपेंद्रवज्रा वृत्त)

न भोग भोगे हम भुक्त हो गए ;
तपादि को भी न तपे हमीं तपे।
हमीं चले काल चला नहीं अहो !
न जीर्ण आशा हम जीर्ण हो चले।

(भुजंगप्रयात वृत्त)

मनोभावनी कामिनी यामिनी में ;
न पर्यंक पै अंक ले संग सोया।
नहीं भोग भोगा सदा रोग शोकः ;
न विश्वेश ध्याया वृथा जन्म पाया।

(द्रुतविलंबित वृत्त)

विषय इच्छुक होकर विश्व में ;
मनुज जन्म व्यतीत किया वृथा ।
न सुख ही कुछ भोग मिला यहाँ ;
न परलोक सुधार किया अहो !
मन अभीष्ट न पूर्ण हुआ कभी ;
यह युवा वय भी तज ही चली ।
विन गुणज्ञ वृथा गुण ही हुए ;
पर न आश उरस्क[1] तजी अभी ।

(कंबल)

कंबल तू सर्वस्व तु ही जीवन है मेरा ;
तू ही मेरा गेह तुझी में करूँ बसेरा ।
तू ही है वर वस्त्र सर्वदा सुख का दाता ;
तुच्छ दुशाले त्याग तुझी से रखता नाता ।
× × ×
वर्षा शीतल वायु ओस आँधी से मेरी—
रक्षा करता तु ही कहूँ क्या महिमा तेरी ।
× × ×
श्याम सलोना रंग देख मेरा मन मोहै ;
यद्यपि जग बहु वस्तु तदपि तू ही अति सोहै ।
थोड़ा है तव मूल्य बताते बहु नर-नारी ;
तू है किंतु अमूल्य न जानें सार अनारी ।
तू ही मेरा परम मित्रवर बंधु हितू है ;
तेरा रहूँ कृतज्ञ दुःख सुख साथी तू है ।
तू अत्यंत पवित्र पूर्व पुण्यों से पाया ;
धन्यवाद सौ बार उसे जिन्ह तुझे बनाया ।

---

[1] उरस्क = उर की ।

(वसंत-स्वागत)

आओ प्रिय ऋतुराज आज धनि भाग हमारो ;
हुए सभी कृतकार्य पाय शुभ दरस तिहारो।
नव-जीवन संचार प्रकृति के रूप पधारो ;
स्वात्म नीति उद्देश्य आर्य भू मध्य प्रचारो।
प्रिय ! तव पुण्य प्रताप सों दुखद समय का अंत हो,
शुभागमन सों आपके देश समृद्धि अनंत हो।
भारत जन मन विटप-वृंद सुरभित प्रफुलित हों ;
निरुत्साह नैराश्य पुरातन पात पतित हों।
उगि उछाह नव पात सुमति रँग अनुरंजित१ हों ;
सदुद्योग कल कुसुम-कली नित-नित विकसित हों।
सतविधि सुमन सुगंध हित नेता अलि गूँजत रहैं।
मनोकामना फल फलैं देश दुखित खग सुख लहैं।

(शिव-स्तुति)

जय जय महेश सुरेश शंकर व्यालधर२ गौरीपते ;
शिव शर्व रुद्र त्रिशूलधर नृकपालधर धरणीपते।
जय जय परेश गणेश त्र्यंबक पचवक्त्र सतीपते ;
मृड३ शंभु गंगाधर जटाधर पापहर काशीपते।
जय जय परात्पर विष्णुसेवित देववंदित हे विभो ;
जय नीलकंठ गिरीश भूतेश्वर डमरुधर हे प्रभो।
जय जय दिगंबर वज्रधर वर पाशधर मायापते ;
जय दैत्यसूदन विश्वभूषण विश्वरूप महापते।

---

१ अनुरंजित = शोभित। २ व्यालधर = सर्पों के धारण करनेवाले शिवजी। ३ मृड = शिव, पार्वती।

जय जय सगुण निर्गुण निरीह शरण्य पूर्ण दयानिधे ;
जय चंद्रभाल विशाल काल कराल भीम कृपानिधे ।
जय जय भवोत्पत्ति स्थिति लय कारण च्युत पाहि माम् ;
कंदर्प१ दर्प२ कृतांत शांत भवाब्धि पोत सुरक्ष माम् ।
निज पादपंकज भक्तिमेवमनन्तरूप प्रयच्छ माम् ,
शरणागतोऽहमनादि देव नमामि ते हर पाहि माम् ।
इह भद्र विप्र कृतास्तुतिं नियमात्पठेच्छिवसन्निधौ ;
खलु याति सः परमां गतिं नर धूर्जटेः कृपयावितः ।

---

१ कंदर्प=कामदेव । २ दर्प=अभिमान, घमंड ।

श्रीपं० मुकुंदहरिजी द्विवेदी

पं० मुकुंदहरिजी द्विवेदी शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्यजी का जन्म वि० सं० १९५० में, अलीगढ़ मंडलांतर्गत मुहल्ला जयगंज में, हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्रीपं० रामगोपालजी द्विवेदी था।

आपने सं० १९६४ वि० में काशी की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की तथा सं० १९६६ में गवर्नमेंट-संस्कृत-कॉलेज, काशी और कलकत्ते की पाणिनीय व्याकरण की समस्त मध्यम परीक्षा उत्तीर्ण की। तदनंतर क्रमशः आचार्य के पाँच खंड होते हुए शास्त्री और काव्यतीर्थादि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। आपके गुरुवर्य प्रधानतया आपके ज्येष्ठ भ्राता ही रहे हैं।

गायन-कला में भी आप निपुण हैं। आपकी विद्वत्ता से आकर्षित होकर बीकानेर-विद्वत्समाज ने विद्याऽलंकार की पदवी एवं 'बिहार-प्रांतीय विद्वत्समिति' ने शास्त्राचार्य की पदवी से विभूषित किया है।

आप सामाजिक कार्यों में अधिक संलग्न रहते हैं। आप 'भारतधर्म-महामंडल' काशी, सनाढ्य-महामंडल आगरा, सनाढ्य-महासभा ग्वालियर के अवैतनिक महोपदेशक तथा

साहित्याचार्य काव्यतीर्थ श्रीपं० मुकुन्दहरिजी द्विवेदी शास्त्री,
(भूतपूर्व प्रोफ़ेसर अलीगढ़-कॉलेज) सम्मेलन महामंत्री अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन, अलीगढ़

अखिल भारतवर्षीय विद्वत्सम्मेलन के अवैतनिक प्रधान परीक्षा-मंत्री हैं।

आप प्रथम मुस्लिम-युनिवर्सिटी कॉलेज, अलीगढ़ में संस्कृत-प्रोफेसर हुए, किंतु आजकल आप डी० ए० वी० हाई-स्कूल, अलीगढ़ में प्रधान संस्कृताध्यापक हैं। इसके अतिरिक्त जाति-सेवा और विद्योन्नति के लिये आप सदैव प्रस्तुत रहते हैं। आपके पूज्य पिताजी द्वारा संस्थापित विद्याविनोदिनी पाठशाला के संचालक भी आप ही हैं। पाठशाला में काशी, कलकत्ता, बिहार, पंजाब आदि की शास्त्री, आचार्य, तीर्थ आदि परीक्षाओं तक आपने पाठशाला का पाठ्य क्रम रक्खा है।

आपका स्वभाव सरल तथा व्यवहार अभिमान-शून्य है। आपके सद्गुणों पर मुग्ध होकर आपके कतिपय शिष्यों ने 'कृष्णप्रेम-नाटक', 'भारतीय त्यौहार' आदि ग्रंथ समर्पण कर आपको गौरवान्वित किया है।

आपने 'संक्षिप्त हितोपदेश', 'पंचतंत्र', महाभारतादि ग्रंथों का सरल व्रजभाषा में अनुवाद किया है। पटना और इलाहाबाद-युनिवर्सिटी के मेट्रिक्यूलेशन से आठवीं कक्षा तक के संस्कृत-कोर्सों की कुंजी बहुत विस्तृत संस्कृत, हिंदी और इँगलिश भाषा में लिखी हैं।

आपकी प्रकाशित स्फुट कविताओं के कुछ नमूने निम्न-लिखित हैं—

ईश्वर-प्रार्थना

संस्कृत	भाषा
नाथ ! भवन्तं वयन्नमामः	नाथ ! आपको हम नमते हैं ;
बद्धांजलि सुपदोर्निपतामः ;	हाथ जोड़ पैरों पड़ते हैं ।
सर्वमवेत्यखिलजस्स्वामी	आप जानते हैं सब स्वामी ,
प्रतिजीवस्य किलान्तर्यामी ।	घट-घट के हैं अंतर्यामी ।
वयं जनास्सुगुणं विन्देम	हम पुरुष सब सद्गुण पावें ;
विगुणगणं देरेन्वयस्येम ;	सारे दुर्गुण दूर हटावें ।
कापुरुषत्वं नो हि भजेम	कायरता के पास न जावें ;
धीरा वीरा वयम्भवेम ।	धीर कहावें वीर कहावें ।
न जातु चिच्चिन्न कर्म त्यजेम	कभी न अपना कर्तव्य छोड़ें ;
दीनेभ्यो विमुखा न व्रजेम ;	कभी न दीनों से मुँह मोड़ें ।
निखिलं जगत्सजीव कुर्मः	दुनिया-भर में जीवन भर दें ;
अलसजनांश्चेतनि नस्तन्मः ।	मुरदारों को चेतन कर दें ।
लोभग्रस्ता नो हि भवेम	नहीं लालचों में फँस जावें ;
कुतोऽपि भीता नो धावेम ;	नहीं किसी से भय हम खावें ।
सद्दृढा निज धर्माननुयामः	दृढ़ रहकर निज धर्म निभावें ;
प्राकृतपुसः प्रसादयामः ।	साधारण को मोद दिलावें ।
	॥ १ ॥

*भुवि निशाचरसंचविनाशनः मुनिसुरादिककार्यप्रसाधनः ;
जननपालननाशनकारणः जयतु दाशरथिर्हतरावणः ॥ २ ॥

---

* भूमिष्ठ राक्षस-मंडल के संहारक, मुनि और देवादिकों के कार्यसाधक, उत्पत्ति-पालन और संहार के कारण तथा दशानन के नाशक श्रीरामचंद्र जयवंते हों ।

* देशे देशे भासित. कर्मवीरः वीरे वीरे ज्ञापितो धर्मधीरः ;
धर्मे धर्मे ख्यापित.स्वच्छकीर्तिःकीर्तौ कीर्तौ कीर्तितो धर्ममूर्ति. ॥ ३ ॥
(युग्मम्)

† श्रीग्वालियरवर धराधिप ! राजराज !
सौंदर्यसार ! गुणवास ! विभूतिशालिन् !
देयात्सनाढ्यजनता सुमहोत्सवोऽयम्
प्रीतिं सदात्मजकुमारिप्रताप तुभ्यम् ॥ ४ ॥

‡ हे राम ! नीलनलिनीदलतुल्यकान्ते !
भक्ताऽर्तिनाशन मदर्थनमेतदेव ;
अस्मत्प्रभुर्जयतु माधवरावसिन्धुः
भूयाच्चिरायुरिह पुत्रकलत्रयुक्त ॥ ५ ॥

§ श्री-ल¹ श्रीमतिभवने वासी यस्य यशः प्रथितं सततम्
मा-पतिभक्तिपरायणबुधजनकमलाऽह्स्करतदवितत‌म्

---

* समस्त देशों में व्याप्त, सर्ववीरों में श्रेष्ठ वीर, सर्वधर्मों में धीर, सर्वकीर्तियों में सर्वोत्तम कीर्त्यापन्न और धर्ममूर्ति नाम से प्रसिद्ध श्रीरामभद्र जयवान् हों।

† भो सौंदर्यसार ! गुणसागर ! ऐश्वर्यशालिन् ! सत्कुमार ! सुशील राजकुमारी-सहित ! सुप्रतापिन् ! राजाधिराज ! ग्वालियर वसुमती-कांत ! यह सनाढ्य-सभा का सुमहोत्सव आपके लिये प्रीतिदायक हो।

‡ भो नीलकमलिनी-दल के समान श्यामवर्ण, भक्त-पीड़ा-संहारक ! राघवराम ! हमारी यही प्रार्थना है कि हमारा स्वामी माधवराव जयवान् हो और दीर्घायु एवं पुत्र-मित्र-कलत्र-संपन्न हो।

§ जो शोभा-संपत्ति-शाली लक्ष्मीयुक्त राज-भवन में निवास

¹ शोभा-संपत्ति-शाली।

घ-र्मसमेतौ सदा त्वदीयौ कामार्थौ विपुलौ भवताम्
च-रदजीवशरणागतवत्सल ! परिजनरिपुजनवर दुर्धर !
रा-जति राजशिरोमणिविद्याशीलजनाऽनुग्रहकरवर !
ब-लगुणविद्याविनयसभाजित ! 'माधवराव' महाप्रभुवर ॥ ६ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

❀ श्री-कृष्णस्य कृपालवेन भवतोराज्यं चिरं वर्द्धताम्
उ-द्योगादिपरोपकारकरणे दक्षं मनो वर्त्तताम् ;
द-ण्डादिप्रभुशक्तिसादितरिपू बाहूबलं प्राप्नुताम्
य-त्नध्वस्तसमस्तविघ्नमखिलं कार्यंवशीवर्तताम् ॥
भा-वं सत्तनयैः कुशाऽग्रमतिभिस्तौ दम्पती सर्वदा
नु-त्रं दुःखमनल्पदानकरणैर्याभ्यां समभ्यर्थिनाम् ;
सिं-हत्रस्तमृगद्विपक्षकुलमत्रं राष्ट्राद् बहिः प्लायताम्
ह-र्म्यं रम्यमकथ्यसौष्ठवयुतं मोदप्रदेदीयताम् ॥ ७ ॥

(युग्मम्)

करता है और जिसका यश निरंतर प्रसिद्ध है, जो विष्णु-भक्ति-परायण विद्वज्जन रूपी कमलों के विकासार्थ सूर्य के समान है, इस प्रकार हे मनोरथ-प्रपूरक ! शरणागतप्राणिवत्सल ! श्रेष्ठपरिजन रिपुजनदुःसह ! राजशिरोमणिविद्याशीलसंपन्न जनानुग्रहकारिन् ! बल-गुण-विद्याविनयसंपन्न ! महाप्रभुवर ! माधवराज महाराज ! आप सर्वोत्तम शोभायमान होवें और आपको धर्म-अर्थ-काम रूप तीनो पुरुषार्थों की प्रकृष्ट प्राप्ति हो।

❀ अये श्रीउदयभानुसिंह ! श्रीकृष्णचंद्र के कृपा-कण से आपका राज्य चिरकाल तक बढ़े और आपका मन उद्योगादि एवं परोपकार करने में लीन हो और दंड-कारावास आदि एवं प्रभु-शक्ति से शत्रुओं

*राज्ये स्वे पुरुषेषु भक्तिमतुलामस्थापयत् यस्सदा
प्राज्ञांश्चाऽसुखयत्कुरीतिशमनं सम्पादयन्मानदः ;
श्रीयुज्जार्जजयाजिरावक्रमजा मेरोयुतस्तार्किकः
श्रीमान् माधवरावबीरनृपतिर्जीव्याच्चिरं धार्मिकः ॥ ८ ॥

(शिखरिणी)

रखेंगे श्री शम्भू, प्र मु दित प्र भा युक्त तुमको
करेंगे उ त्साही, स कु शल थ नु ग्राहि मन को ;
भरेंगे द् वारी, स द न करि मि धूद्भवन सों
हरेंगे य श्रों को, स हरि अघ ह त्यादिकन सों ॥ ६ ॥

बलि राजा से दानवीर, नीतिज्ञ विदुर से,
कर्णराज से शूर लोकपूजित हैं सुर से ;
सतवादी श्रीहरिश्चंद से ज्ञानी नृपवर,
विद्यानिधि धर्मिष्ठ सभी से आप अग्रसर ॥ १० ॥

को नष्ट करनेवाली आपकी बाहुएँ बल प्राप्त करें तथा यज्ञों से जिनके समस्त विघ्न नष्ट हो गए हैं, ऐसे आपके समस्त कार्य सुरीत्या निष्पन्न होवें ।

आप दंपति सूक्ष्म बुद्धि-सतान से सदा सुशोभित होवें । जिन्होंने अर्थिजनों को अनल्प दान देकर अपना सारा दुःख छिन्न-भिन्न कर दिया है । और सिंह से भीत मृग-समूह की तरह आपके समस्त शत्रु भीत होते हुए आपके देश से बाहर भाग जावें । और वर्णनातीत सौंदर्य-युक्त आपका भवन आपको मोदप्रद हो ।

* जिसने स्वराजकीय पुरुषों में अतुल भक्ति स्थापित की, विद्वानों को आनंदित एवं कुरीति-निवारण किया, वह स्वाभिमानी, तर्कवेत्ता, धर्मात्मा, वीर राजा जार्ज जयाजीराव श्रीमान् माधवराव श्रीमती सौ० कमलादेवी-सहित चिरकाल तक जीवें ।

श्रीपं० व्रजभूषणजी गोस्वामी

पं० व्रजभूषणजी गोस्वामी, दतिया का जन्म सं० १९५४ वि० में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम पं० मकुंदलालजी गोस्वामी है। आप बुंदेला महाराजाओं के राजगुरुओं के वंशधर तथा शुक्लवंशीय सनाढ्य ब्राह्मण हैं।

आजकल आप लार्ड रीडिंग हाईस्कूल, दतिया में अध्यापक हैं। आप हिंदी-अँगरेजी और संस्कृत के अतिरिक्त चित्रकला के भी जानकार हैं। आपका कविता-काल सं० १९८० वि० से प्रारंभ होता है। आपने दो-तीन पुस्तकों की रचना की है, किंतु वे अभी अप्रकाशित ही हैं। आपकी रचनाएँ मनोहारिणी और व्याकरण-संयत होती हैं।

उदाहरण—

कवित्त मनहरण

(अपह्नुति अलंकार)

दामिनी की द्युति है नहीं ये दिव्य दीप्तिमान,
देती है दिखाई छवि राधिका ललाम की;
फाकली नहीं है कमनीय यह कोकिला की,
बजती है बंशी ये ब्रजेश अभिराम की।

बर्षा की बनाई नहीं वन में लुनाई है ये,
शोभा है सुंदर यह वृंदावन-धाम की ;
घिर-घिर घूमें नहीं नभ में ये श्याम-घन,
फिर है अघाई व्रज माँहिं घनश्याम की।

× × ×

(श्रीराधा पद-पद्म)

देव-द्रुम-पर्न-से हैं बांछित के दैनवारे,
दुरमति दरन हैं, सुबुद्धि वितरन हैं ;
विश्व के भरन हरन तीनऊ तापन के,
भव-अर्नव तरन को दो ही तरन हैं।
भक्त सुर नरन के उरन में बास करें,
ध्यान के धरन से पाप लागे टरन हैं ;
भनै 'व्रजभूषण' सरन असरन जो हैं,
वारिज - वरन वर राधा के चरन हैं।

× × ×

(सवैया अरसात श्लेष से वक्रोक्ति अलंकार)

को तुम हो ? हम हैं द्विजराज१, पढ़ो तुम आय ऋचा इक छंद की ;
जान हमें विधु२ री ! तब तो—कमला तब कामिनी रूप अमंद की।
अब्ज३ कहैं हमको सब लोग, नलिंदन पगरा दो मकरंद की ;
रोहिनि ! चंद४ कहावत हौ तो—करौ नित आरति श्रीव्रजचंद की।

---

१ द्विजराज=चंद्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण । २ विधु=चंद्रमा, विष्णु ।
३ अब्ज = चंद्र, कमल । ४ चंद = चंद्र, कपूर ।

तृतीय खंड

सं० १६४० वि० से सं० १८०० वि० तक

के

अन्य कविगण

श्रीपं० पीतांबरदासजी स्वामी

जन्म-स्थान—बुंदेलखंड

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १६४० वि०

कविता-काल— ,, ,, १६६५ ,,

ग्रंथ—बानी

विवरण—स्वामी हरिदासजी के पुत्र

श्रीपं० नरहरिदेवजी

जन्म-स्थान—गुढ़ा

जन्म-संवत्—सं० १६८० वि० के लगभग

कविता-काल—सं० १७२० ,, ,, ,, ,,

आपके संबंध में श्रीसहचरिशरणजी ने अपनी 'ललित-प्रकाश' गुरु-प्रणालिका में इस प्रकार लिखा है—

गुरु पाछे छत्तीस बरस बनराज बिराजे ;
काम-केलि कौतूह गाय आनँद नित साजे ।
नरहरिदेव 'सनाढ्य' गुढ़ा को प्रथम बसेरो ;
पुनि आरण्य अनादि अनूपम आनँद हेरो ।

श्रीपं० वैकुंठमणिजी शुक्ल

जन्म-स्थान—बुंदेलखंड

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १७०० वि०

कविता-काल— „ „ १७३७ „

ग्रंथ—(१) वैसाख-माहात्म्य, (२) अगहन-माहात्म्य ये दोनो ही ग्रंथ व्रजभाषा में गद्य-काव्य में लिखे गए हैं।

श्रीपं० ललितमोहिनीदासजी शुक्ल

जन्म-स्थान—ओरछा

जन्म-संवत्—सं० १७८० वि० के लगभग

कविता-काल— „ १८०५ „ „ „

श्रीपं० हरीरामजी शुक्ल (व्यासजी) के वंशज

'ललित-प्रकाश' मे आपके लिये इस प्रकार लिखा है—

ललित मोहिनीदास व्यासकुल को अवतसा ;
जनम ओरछे माँहि नाँहि कलि की रति अंसा।
हृदय-जनित निर्वेद सदय गुरु कृपा बनेरी ;
बन मकरंद प्रमत्त आयु अठहत्तर हेरी।

आचार्योत्सव-सूचना में आपका अवतार और अंतर्धान-काल इस प्रकार माना गया है—

ललित मोहिनी प्रभा सोहिनी आश्विन सुदि दशमी को ;
कियो प्रकाश सरद जनु चंद्रम वर्षायो सु अमी को।
संवत् सत्रह सौ सु असी कौ अति प्रमोद को दानी;
सरन माघ वदि इक दशमी को सब ही ने यह जानी।

फागुन बदि नवमी को प्रमुदित, रंगमहल को गमने;
वर्ष अठारह सै अट्ठावन निरखत राधारमने।

कोविद मिश्र (चंद्रमणि मिश्र), ओरछा

जन्म-स्थान—ओरछा

जन्म-संवत्—सं० १७०० वि० के लगभग

कविता-काल—,, १७२५ ,, ,, ,,

ग्रंथ—(१) भाषाहितोपदेश, (२) राजभूषण

महाराज उदोतसिंह ओरछा-नरेश और महाराज पृथ्वीसिंह के आश्रित।

श्रीपं० मोहनदास मिश्र, ओरछा

जन्म-स्थान—ओरछा

जन्म-संवत्—सं० १७४० वि० के लगभग

कविता-काल—,, १७६५ ,, ,, ,,

पितृ-नाम—कपूर मिश्र

ग्रंथ—(१) भावचंद्रिका, (२) कृष्ण-चंद्रिका, (३) भागवत दशम स्कंध भाषा, (४) रामाश्वमेध ओरछा-राज्य-वंश के पुरोहित।

श्रीपं० शाहजू पंडित, ओरछा

जन्म-स्थान—ओरछा

जन्म-संवत्—सं० १७५० वि० के लगभग

कविता-काल—„ १७७५ „ „ „

ग्रंथ—(१) बुंदेल-वंशावली, (२) लक्ष्मणसिंह-प्रकाश

टहरौली के जागीरदार लक्ष्मणसिंहजी के आश्रित ।

श्रीपं० नौनेजी व्यास

जन्म-स्थान—बँधौरा (बुंदेलखंड)

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १७६० वि०

कविता-काल—„ „ १७८५ „

ग्रंथ—धनुषविद्या

राजा दुर्जनसिंह जागीरदार बँधौरा के आश्रित ।

श्रीपं० छत्रसासजी मिश्र, चँदेरी

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १८०० वि०

कविता-काल—„ „ १८२५ „

ग्रंथ—(१) शकुन-परीक्षा, (२) स्वप्न-परीक्षा, (३) औषधसार

चँदेरी-नरेश राजा दुर्जनसिंहजी के आप सेनापति थे ।

श्रीपं० चंद्रकवि चौबे

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १८०० वि०

कविता-काल— ,, ,, १८२५ ,,

पितृ-नाम—पं० हीरानंद चौबे

ग्रंथ—चद्रप्रकाश

श्रीपं० घासीरामजी उपाध्याय

जन्म-सवत्—प्रायः सं० १८५० वि०

कविता-काल— ,, ,, १८७५ ,,

जन्म-स्थान—सिमथर (बुंदेलखंड)

ग्रथ—ऋषि-पंचमी की कथा। दोहा-चौपाइयों में आपने इसको छंदोबद्ध लिखा है।

श्रीपं० टीकारामजी

जन्म-स्थान—फ़ीरोज़ाबाद (आगरा)

जन्म-सवत्—स० १८६५ वि० के लगभग

कविता-काल—,, १८६० ,, ,, ,,

आप बोधा कवि के पौत्र थे। आपके पुत्र पं० गोपीलालजी अभी जीवित हैं।

उदाहरण—

चोप सो काम गढ़ौ चित दै निज पकज से कर कुंदन नायौ ;
जत्रन मंत्रन तंत्र बड़े करि मुक्तनि गूँदि कै ओप बढ़ायौ।
बाल की नासिका बीच बढ़ी नथ तामेंहि फूलि उरोजन छायौ ;
सो उपमा कहै 'टीकम' मानहु ईश के सीस पै छत्र चढ़ायौ।

श्रीपं० गंगाप्रसादजी उदैनियाँ

जन्म-स्थान—बुंदेलखंड

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १८६५ वि०

कविता-काल— „ „ १८६० „

ग्रंथ—(१) रामानुग्रह, (२) रसबोध

श्रीपं० माखन चौबेजी

जन्म-स्थान—कुलपहाड़ (बुंदेलखंड)

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १८८० वि०

कविता-काल— „ „ १६०० „

ग्रंथ—(१) श्रीगणेशजी की कथा, (२) श्रीसत्यनारायण की कथा।

श्रीपं० गोविंदजी कवि

जन्म-स्थान—फीरोजाबाद

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १६०० वि०

कविता-काल—प्रायः सं० १९२५ वि०

पितृ-नाम—कवि टीकारामजी

आप बोधा कवि के वंशधर थे। पिपलोदपुरी के राजा के आश्रय में भी आप रहे हैं।

ग्रंथ—हनुमन्नाटक का भाषा में छंदोबद्ध अनुवाद।

उदाहरण—

फुल्लित१ गल्ल करैं फुतकार,
प्रफुल्ल नसापुट कोटर आयो,
ओघ२ अहंकृत पावक-पुंज,
हलाहल घूमि तितै प्रगटायो।
अंध-समान किए सब लोकन,
अंबर३ज्यों छिति छोरन छायो;
लोयन४ लाल कराल किए,
तत्काल महा बिकराल लखायो।

× × ×

निखिल५ नरेंद्र निकाय६ कुमुद७ जिमि जानिए;
तिनको मुदित करन मिहिर८ मोहि मानिए।
कार्तवीर्य प्रति कहे यथा मम बोल हैं;
पर (हा!) सो सुनि लीजे राम श्रवण९ जुग खोल हैं।

---

१ फुल्लित = फूले हुए, हर्षित। २ ओघ = समूह, इकट्ठे। ३ अंबर = आकाश। ४ लोयन = आँखें। ५ निखिल = पूरा, संपूर्ण, सब। ६ निकाय = समूह, घर, स्थान। ७ कुमुद = कुमोदनी। ८ मिहिर = सूर्य। ९ श्रवण = कान।

श्रीपं० रामगोपालजी

जन्म-स्थान—अलवर

जन्म-संवत्—प्रायः सं० १६०० वि०

कविता-काल—„ „ १६३० „

आप अलवर-नरेश के आश्रित अच्छे कवि थे। आयुर्वेद का भी आपको अच्छा ज्ञान था। अलवर-दरबार के आप वैद्य भी थे।

द्वितीय भाग

समाप्त

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति	अशुद्ध जो छपा है	शुद्ध जो होना चाहिए
५०	६	साँवत	साँवल
५१	२१	चातुयता	चातुर्यता
५७	१५	प्रशसा	प्रशंसा
५८	३	नरपुंगव हैं	नरपुंगव
५९	७	आडंवरियों का	आडंवरियों को
७१	१	कितना	कितना ऊँचा
,,	२	शब्दों में ऊँचा	शब्दों में
,,	२०	देनी	देना
९९	१०	भले	भली
१०५	३	धम-पत्नी	धर्म-पत्नी
११४	११	अवनीय	अवनीप
१५६	५	व्यासवशीय	व्यासवंशीय
१६०	२१	प्रदशित	प्रदर्शित
१७९	६	किवता	कविता
२५६	२	मध्यनादि रूपं	मध्ययनादि रूपं
२७०	९	मिली	मिला
२७१	२१	कीड़ा	क्रीड़ा
३२८	७	करुया	करुण

सुकवि-सरोज

के

तृतीय और चतुर्थ भागों में संगृहीत

कुछ कवियों की नामावली

श्रीपं० रंगलालजी शास्त्री
,, नाथूरामजी शुक्ल 'सेवक', कोंच
,, महंत लक्ष्मणाचार्यजी
,, श्रवणप्रसादजी मिश्र 'श्रवणेश', झाँसी
,, सच्चिदानंदजी उपाध्याय 'आशुतोष'
,, देवकीनंदनजी शर्मा, मेंड़ू
,, प्यारेलालजी सनाढ्य, डिबाई
,, देवकीनंदनजी शर्मा, बस्ती
,, हरचरणलालजी शर्मा, मेंड़ू
,, मनभावनजी मिश्र 'मधुर', सासनी
,, जगन्नाथजी मिश्र, हाथरस
,, युगेश्वरप्रसादजी त्रिपाठी, आरा
,, जमुनाप्रसादजी गोस्वामी 'साहित्यरत्नाकर', जबलपुर
,, श्यामाचरणजी मिश्र बी० ए० 'सरोज', बरेली
,, गंगासहायजी पाराशरी 'कमल' एम्० आर०ए०एस्०, बरेली
,, रामकिशोरजी शर्मा 'किशोर' बी० ए०, लश्कर

श्रीपं० श्रीगोपालजी सनाढ्य, शमसाबाद, आगरा
,, देवीरामजी शर्मा, शमसाबाद, आगरा
,, राजारामजी श्रोत्रिय, सिंहपुरा, रानीपुर
,, लक्ष्मीचंद्रजी श्रोत्रिय, मऊ (झाँसी)
,, गोविंददासजी व्यास 'विनीत', तालबेहट (झाँसी)
,, घासीरामजी व्यास, मऊ (झाँसी)
,, व्रजकुमारजी मिश्र 'श्रीकर' विद्यालंकार, बदायूँ
,, गिरिजाशंकरजी उपाध्याय, झाँसी
,, व्रजकिशोरजी शर्मा, लश्कर
,, जगन्नाथप्रसादजी मिश्र 'उपासक', लश्कर
श्रीमती रत्नकुमारीदेवी मिश्र
,, देवीरामजी शर्मा 'दिव्य' बसई ताजगंज, आगरा
,, रोशनलालजी शर्मा 'दर्श', आगरा
,, श्यामसुंदरजी, बादलमऊ (झाँसी)
,, श्यामसुंदरजी दीक्षित, आगरा
,, रामप्रसादजी शर्मा, उपरीन, चिरगाँव
,, बद्रीप्रसादजी गुबरेले, कोटरा
,, वासुदेवजी सीरोठिया, कोंच
,, बालहरिजी द्विवेदी, सोरों

इत्यादि

ग्रंथकार की अन्य रचनाएँ

(प्रकाशित ग्रंथ)

१—सुकवि-सरोज (प्रथम भाग)—महाकवि श्रीपं० बलभद्रजी मिश्र, कवींद्र पं० केशवदासजी मिश्र, कविवर बिहारीदासजी मिश्र आदि १६ कवियों के प्रामाणिक जीवन-चरित्रों, उनकी सुंदर रचनाओं और ग्रंथों आदि के विवरण-सहित।

टाइटिल-पृष्ठ पर कवींद्र केशव का सुंदर चित्र और भीतर विस्तृत वंश-वृक्ष है। पृष्ठ-संख्या लगभग २०० होते हुए भी मूल्य केवल ।॥) बारह आना है। विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और अखिलभारतवर्षीय विद्वत्-सम्मेलन, अलीगढ़ ने अपनी हिंदी-साहित्य की प्रथमा, विशारद और हिंदी-साहित्य-भूषण की परीक्षाओं में इसे रक्खा है। छपाई-सफ़ाई बहुत ही सुंदर। सहस्रों में से इस पर कुछ सम्मतियाँ देखिए—

साहित्यरत्न श्रीपं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' प्रोफ़ेसर हिंदू-युनिवर्सिटी बनारस, सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग—

......आपका संग्रह सुंदर हुआ है, साथ ही मनोहर भी है। इसमें कई ऐसे सज्जनों की कविता संगृहीत है, जिनसे हिंदी-संसार अब तक परिचित नहीं। आपने उनको नव-जीवन प्रदान कर बड़ा सत्कार्य किया है। आपका उद्योग प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है।

विद्यावाचस्पति श्रीपं० शालग्रामजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्या-भूषण, वैद्यभूषण, कविराज, लखनऊ—

.. आपका उत्साह, अध्यवसाय और परिश्रम प्रशंसनीय है.....।

कई विवेचनीय विषयों का सन्निवेश इस पुस्तक में बड़ी योग्यता और सफलता के साथ किया गया है। अनेक नई ज्ञातव्य बातें इस पुस्तक से हिंदी-संसार के सामने आई हैं . ...। हम आपके परिश्रम का हृदय से अभिनंदन करते हैं .....।

श्रीपं० कन्हैयालालजी मिश्र बी० ए० पूर्व मंत्री महाराजा बहादुर बलरामपुर, सभापति सनाढ्य-महामंडल, आगरा—

...Both from the Sanadhaya—Jatis and the literary point of view "*Sukavi-Saroj*" is a book of Historical research and deserves every encouragement from the Educated public in General and the Sanadhaya Brahmans in Particular.

भावार्थ—

सनाढ्य-जाति और साहित्य दोनो ही की दृष्टि से सुकवि-सरोज ऐतिहासिक खोज-पूर्ण पुस्तक है, और साधारणत· प्रत्येक पढे-लिखे व्यक्ति को और विशेषतया सनाढ्यों को हर प्रकार इसे अपनाना चाहिए... .. ।

रायबहादुर माननीय श्रीपं० श्यामविहारीजी मिश्र एम्० ए० (रिटायर्ड डिपुटी कमिश्नर, दीवान ओरछा-राज्य) प्रधान मंत्री ओरछा-राज्य, सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग—

I have not found time to go through the whole book, but from what I have perused it the book certainly appears to be excellent

श्रीमान् राजा खड्गसिंहजू देव साहब अधिपति खनियाधाना-राज्य—

'सुकवि-सरोज' ने हिंदी-साहित्य की एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है.. ...। आपका यह कार्य सर्वथा सराहनीय है।

मनोहर वर्णन, पुस्तक बड़ी ही शिक्षाप्रद है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पढ़कर इससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ।)

४——पद्य-प्रभाकर (प्रथम भाग)——समय-समय पर मासिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ग्रंथकार के सामयिक उपदेश-प्रद पद्यों का संग्रह। मूल्य केवल ।)

५——रामायण के कुछ उपदेश——रामायण के कुछ विशेष उपदेशप्रद स्थलों का कविता में वर्णन। मूल्य केवल =)

६——शिव-तांडव-स्तोत्र——संस्कृत से सरल, सरस हिंदी-भाषा के छंदों में अनुवाद। अंत में शिक्षाष्टक भी है। मूल्य केवल -) एक आना।

ग्रंथकार के
शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले अन्य ग्रंथ

७——बुंदेल-वैभव——अथवा 'बुंदेलखंड के हिंदी-कवियों का सांगोपांग इतिहास' लगभग २००० पृष्ठों और चार भागों में समाप्य। अनेक चित्रों, टिप्पणियों, कवियो के प्रामाणिक जीवन-चरित्रो और नई ज्ञातव्य बातों-सहित प्रायः १००० कवियों के संबंध में वर्णन किया गया है। ग्रंथ श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहदेव बहादुर ओरछा-नरेश को समर्पित किया गया है। रायबहादुर माननीय श्रीपं० श्यामविहारीजी मिश्र एम्० ए० प्रधान मंत्री ओरछा-राज्य तथा सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के प्राक्कथन तथा श्रीपं० विंध्येश्वरीप्रसादजी पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी० F. R. E. S, M. R. A. S. दीवान ओरछा-राज्य के दो शब्दों-सहित।

'प्रथम भाग' प्रेस में जा चुका है और शीघ्र ही बड़ी ही सज-धज से प्रकाशित होनेवाला है। बढ़िया पेपर और सुंदर छपाई के अतिरिक्त कितने ही तिरंगे और एकरंगे चित्रों को देने की व्यवस्था की गई है। ग्रंथकार के १०-१५ वर्ष के कठिन परिश्रम का सच्चा प्रतिबिंब इसमें प्रतिबिंबित है। पृष्ठ संख्या प्रायः ७००, फिर भी मूल्य लागत-मात्र ४) चार रुपया। आज ही ग्राहक बनिए।

इसके अतिरिक्त ग्रंथकार के

'शंकर-विभूति', 'तुलसी-केशव', 'दुर्योधन-दमन', 'अश्वमेध यज्ञ', 'हमारे महापुरुष' (तीन भाग)-नामक ग्रंथ भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

आठ आना प्रवेश-शुल्क भेजकर अभी से स्थायी ग्राहक बननेवाले महानुभावों को सभी ग्रंथ पौने मूल्य में प्राप्त हो सकेंगे। शीघ्र ही ग्राहक बनकर मातृभाषा के प्रचार में हमारा हाथ बँटाने की कृपा कीजिए—

व्यवस्थापक—

'बुंदेल-वैभव' ग्रंथ-माला

टीकमगढ़ (बुंदेलखंड)

बुंदेल-वैभव

अथवा

(बुंदेलखंड के हिंदी-कवियों का सांगोपांग इतिहास)

पर

प्राप्त हुई अनेकों सम्मतियों में से कुछ सम्मतियाँ

रायबहादुर, श्रीपं० श्यामबिहारीजी मिश्र एम्० ए० प्रधान मंत्री ओरछा-राज्य, सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग—

बुंदेलखंड के हिंदी-कवियों की आलोचनात्मक जीवनियाँ तथा उनके ग्रंथों का हाल एवं उनसे विस्तृत उद्धरण बड़ी कुशलता-पूर्वक दिए हैं। एक प्रकार से इसे हिंदी-साहित्य के एक विशेष चमत्कारी भाग का इतिहास मानना चाहिए . । कवियों के जीवन-चरित्र एवं कवित्व-शक्ति की विवेचना करने में द्विवेदीजी ने अच्छा श्रम किया तथा पूर्ण सफलता पाई है; ऐसे ही कविताओं के उदाहरण चुनने में आपने अपनी काव्य-पटुता का ख़ासा परिचय दिया है । निदान यह ग्रंथ रत्न संग्रह करने योग्य बन पड़ा है और इसके पढ़ जाने से कोई मनुष्य हिंदी-साहित्य का ज्ञाता माना जा सकेगा ।

श्रीमान् राजा खलकसिंहजू देव खनियाधाना-नरेश—

प्रस्तुत पुस्तक श्रीद्विवेदीजी की अमर कीर्ति के रूप में रहेगी और हमारी मातृ-भाषा के साहित्य-भंडार का यह एक अमूल्य रत्न होगा। हम बुंदेलखंड-निवासियों को श्रीद्विवेदीजी का कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने हमारे प्यारे देश के छिपे हुए हीरों को प्रकाश में लाकर इस देश की अभूतपूर्व सेवा की है। अधिक क्या कहें इस महान् कार्य के लिये हम श्रीद्विवेदीजी की सेवा में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

श्रीपं० विंध्येश्वरीप्रसादजी पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी० F. R. E. S, M. R. A. S, दीवान ओरछा-राज्य—

'बुंदेल-वैभव'-नामक संगृहीत ग्रंथ को बहुत परिश्रम से निर्माण कर हिंदी-भाषा की और विशेषकर बुंदेलखंड की ऐसी चिरस्थायी सेवा की है, जो सर्वथा सराहनीय है........। मुझे पूर्ण आशा है कि यद्यपि यह ग्रंथ अपने ढंग का प्रथम ही है, पर आगे चलकर इसका और भी विस्तार होगा, क्योंकि अभी बुंदेलखंड में हस्त-लिखित बहुत-सी पुस्तकें विद्यमान हैं और ग्राम्य गीत और गाथाओं का भंडार भी यहाँ पर बहुत है...। मुझे पूर्ण आशा है कि द्विवेदीजी इस महान् कार्य में सफलता प्राप्त करेंगे और अन्यान्य प्रकार से मातृभाषा की सेवा भविष्य में भी करते रहेंगे।

साहित्यालंकार कवींद्र बा० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त 'रसिकेंद्र' कालपी—

(वसंततिलका)

रत्न-प्रसू धरणि के चुन काव्य रत्न—
सानंद 'शंकर' सजे जिसमें सयत्न ;
पाए भला न फिर गौरव क्यों अनंत—
'बुंदेल-वैभव' सु-ग्रंथ प्रकाशवंत ।

श्रीपं० सुरेंद्रनारायणजी तिवारी बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सिविल एंड सेशन जज ओरछा-राज्य, सभापति श्रीवीरेंद्र-केशव-साहित्य-परिषद् ओरछा-राज्य, टीकमगढ़—

हिंदी-संसार में यह पुस्तक आपकी चिरस्मारक रहेगी और वह आपका इसके लिये कम आभारी न रहेगा।

राजगुरु श्रीपं० बालकृष्णदेवजी साहित्य-रत्न, ज्योतिर्भूषण, उप-सभापति 'परिषद्'—

इससे हिंदी-साहित्य तथा इतिहास का बड़ा उपकार हुआ है।

श्रीपं० जयकृष्णदेवजी बी० ए० एकाउंटेंट्स और ट्रेजरी ऑफ़िसर ओरछा-राज्य, प्रधान मंत्री 'परिषद्'—

इससे पूर्व प्रकाशित ग्रंथों में बुंदेलखंडांतर्गत कवियों की इतनी विशाल काय नामावलि का सोदाहरण उल्लेख मिलना असंभव है। यह आपकी निरंतर खोज का प्रतिफल है। पुस्तक परीक्षोपयोगी भी है।

श्री० बा० गुरुचरणलालजी बी० ए० डाइरेक्टर ऑफ् एजूकेशन ओरछा-राज्य, टीकमगढ़—

यह ग्रंथ आपकी असाधारण साहित्यज्ञता और प्रशंसनीय विद्या-व्यसन का परिणाम है। मुझे विश्वास है कि समस्त हिंदी-संसार इसे सम्मानित करेगा......। मेरी यह कामना है कि यह विशाल पुस्तक हिंदी की समस्त संस्थाओं और विद्वानों के पुस्तकालयों में विद्यमान रहे...।

श्रीपं० वासुदेवप्रसादजी शुक्ल बी० ए०, साहित्यरत्न, पटना—

ग्रंथ वास्तव में 'बुंदेल-साहित्य-संसार' का सूर्य एवं ग्रंथकर्ता के चिंतन, मनन तथा अन्वेषण का ज्वलंतउदाहरण है।

श्रीपं० ठाकुरदासजी जैन बी० ए०, मंत्री वीर दि० जैन-पाठशाला, पपौरा—

यह महान् ग्रंथ हिंदी-संसार की एक चिरस्थायिनी, अमूल्य और रक्षणीय संपत्ति होगी और इसमें अनेक नवीन ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ज्ञातव्य विषयों का सद्भाव सामान्यतः समस्त हिंदी-संसार और विशेषकर विद्वानों, हिंदी-प्रचारकों तथा परीक्षक संस्थाओं द्वारा सम्मानित होगा।

श्रीपं० सच्चिदानंदजी उपाध्याय 'आशुतोष' विशारद—

वास्तव में 'बुंदेल-वैभव' अप्रतिम एवं असाधारण प्रतिभा-पूर्ण रत्नों का एक सुचारु समुच्चय है......। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यह प्रशंसनीय प्रयास हिंदी-साहित्य-संसार में द्विवेदीजी की कीर्ति को चिरस्थायिनी बना देगा।

'श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रंथ-माला' के

स्थायी ग्राहकों के लिये

नियम

---

(१) प्रत्येक व्यक्ति ।।) आठ आना प्रवेश-शुल्क भेजकर इस 'ग्रंथ-माला' का स्थायी ग्राहक बन सकता है।

(२) स्थायी ग्राहकों को 'ग्रंथ-माला' की पूर्व प्रकाशित तथा भविष्य में प्रकाशित होनेवाली प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य में मिल सकेगी।

(३) पूर्व पुस्तकों को लेने न लेने का अधिकार ग्राहकों को होगा।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहकों के पास भेजी जायगी। सूचना-पत्र भेजने के पंद्रह दिन पश्चात् पुस्तक वी० पी० द्वारा ग्राहकों की सेवा में भेजी जायगी। जिन महानुभावों को किसी कारण-वश यदि पुस्तक न लेना हो, तो इसी समय के भीतर सूचना देने की कृपा करें, अन्यथा वी० पी० वापस आने पर उनका नाम स्थायी ग्राहक-श्रेणी से काट दिया जायगा। हाँ, यदि वी० पी० न छुड़ाने का कोई यथेष्ट कारण बतलाया और वी० पी० व्यय (दोनो ओर का) देना स्वीकार किया, तो उनका नाम फिर ग्राहक-श्रेणी में लिख लिया जायगा।

'ग्रंथ-माला' का उद्देश्य

सत्साहित्य और जातीय इतिहास द्वारा मातृभाषा और जाति की सेवा करना इस 'ग्रंथ-माला' का एकमा उद्देश्य है।

'ग्रंथ-माला' की विशेषताएँ

---

(१) प्रचार की सुविधा के लिये 'माला' की सभी पुस्तकों का मूल्य लागत-मात्र ही रक्खा जायगा।

(२) छपाई की सफाई आदि बातों की ओर पूर्ण रूप से ध्यान रक्खा जायगा।

(३) इतना कम मूल्य होते हुए भी भरपूर प्रचार की ओर ध्यान रखते हुए, १०० या इससे अधिक पुस्तकें एक साथ लेनेवाले महाशयों को २५) सैकड़ा कमीशन भी दिया जायगा।

व्यवस्थापक—

श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रंथ-माला

टीकमगढ़ (बुंदेलखंड

Tikam न होगा
की कीर्ति